स्केच : कैथे कोलवित्स

आवरण का चित्र : विद्रोह का आरम्भ
कैथे कोलवित्स का स्केच

11

शहीदे-आजम की शहादत की बरसी (23 मार्च) के अवसर पर

दो विशेष लेख

•

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक जो
शहादत के तिरसठ वर्षों बाद छप सकी

•

एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ
साक्ष्य : भगतसिंह की जेल नोटबुक

'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के प्रकाशन की डेढ़ सौवीं वर्षगांठ के अवसर पर

दुनिया के मजदूरों के पूंजीवाद-विरोधी विश्व-ऐतिहासिक महासमर का रणघोष, विश्व सर्वहारा क्रान्ति की मार्गदर्शक पुस्तक: 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र'

घोषणापत्र में निरूपित सिद्धान्त अमर हैं! 54

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट

सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का बेहद महत्वपूर्ण दस्तावेज जो समाजवाद की समस्याओं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बारे में शिक्षित करता है। 39

संस्कृति चिन्तन

'सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स' में संकलित अंतोनियो ग्राम्शी का प्रसिद्ध निबंध

बुद्धिजीवी 29

शशि प्रकाश की पच्चीस कविताएं

दो लम्बी कविता-श्रृंखलाओं की चुनी हुई कड़ियां

- हृदय में कहीं एक मुक्तिदायिनी सिम्फनी बजी...
- अंधेरे से छीननी हैं अपनी स्मृतियां, अपनी कल्पनाएं 21

इस अंक में

आपकी बात.....4

अपनी बात

पूंजीवाद की पूंजीवादी समालोचना के निहितार्थ.....7

पुस्तक चर्चा

शहीदे-आजम की शहादत की बरसी (23 मार्च) के अवसर पर

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक जो शहादत के तिरसठ वर्षों बाद छप सकी — *आलोक रंजन*.....11

एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य : भगतसिंह की जेल नोटबुक — *एल. वी. मित्रोखिन*.....14

शशि प्रकाश की पच्चीस कविताएं.....21

संस्कृति चिन्तन

बुद्धिजीवी — *अंतोनियो ग्राम्शी*.....29

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट.....39

'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के प्रकाशन की डेढ़ सौवीं वर्षगांठ के अवसर पर

दुनिया के मजदूरों के पूंजीवाद विरोधी विश्व ऐतिहासिक महासमर का रणघोष, विश्व सर्वहारा क्रान्ति की मार्गदर्शक पुस्तक: 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र'.....54

पेरिस कम्यून (18 मार्च) की वर्षगांठ और अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) के अवसर पर

कैसे पहुंची पेरिस कम्यून की चिंगारी चियापास की पहाड़ियों में.....59

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (चौदहवीं किस्त)

समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध कायम करो.....61

बहस के लिए

मदर टेरेसा : मिथक और यथार्थ.....70

भाजपा गठबंधन का सत्तारोहण : पूंजीवादी राजनीति अर्थनीति का एक नया मोड़बिन्दु.....74

भाजपा गठबंधन का "राष्ट्रीय एजेण्डा".....76

फासीवाद का मुख्य लक्ष्य मजदूरों के क्रान्तिकारी हरावल को अर्थात सर्वहारा के कम्युनिस्ट हिस्सों और प्रमुख दस्तों को नष्ट करना है। परराष्ट्र नीति के क्षेत्र में उग्र साम्राज्यवादी आक्रमण के साथ-साथ सामाजिक लफ्फाजी, भ्रष्टाचार और सक्रिय श्वेत आतंक फासीवाद के लाक्षणिक अंग हैं। बुर्जुआ वर्ग के भारी संकटकालों में फासीवाद, पूंजीवाद विरोधी शब्दावली का सहारा लेता है, लेकिन राज्यसत्ता में जमकर बैठ जाने के बाद वह अपनी पूंजीवाद विरोधी मुहावरेबाजी ताक पर रख देता है और बड़ी पूंजी की आतंकवादी तानाशाही के रूप में प्रकट होता है।

• रजनी पाम दत्त

(फासीवाद और सामाजिक क्रान्ति)

दायित्वबोध

वर्ष 5 अंक 3-4; मार्च-जून 1998

प्रधान सम्पादक : **विश्वनाथ मिश्र**
सहायक सम्पादक : **अरविन्द सिंह**
संयुक्त सम्पादक : **ओमप्रकाश सिन्हा**
सत्यम वर्मा
आवरण : **रामबाबू**

सम्पादकीय कार्यालय :
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010 फोन : 393896

एक प्रति : 15 रुपये
वार्षिक : 90 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये

•

सम्पादन एवं संचालन
पूर्णत: अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

कम्पोजिंग : **कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010**

स्वत्वाधिकारी विश्वनाथ मिश्र द्वारा एम. डब्ल्यू. 6 221, बंगीगंज, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित

आपकी बात

◆ दायित्वबोध का नवम्बर '97 -फरवरी '98 का अंक मिला। स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के तमाशों के बीच आपका सम्पादकीय रोशनी की तरह है जो इतिहास और परम्परा से जुड़ता हुआ वर्तमान के सवालों का सामना करता है। यदि भाकपा-माले शुरू से ही वामपंथी दुस्साहसवाद के भटकाव का शिकार रही है तो पार्टी-निर्माण और पार्टी गठन की प्रक्रिया की नये सिरे से पहल करने के लिए क्रान्तिकारी शक्तियां आखिर कौन से वक्त का इंतजार करेंगी। इस काम को आगे बढ़ाने में अधिकाधिक प्रसार वाले अखिल भारतीय स्तर पर एक क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की भूमिका की ओर आपका ध्यान जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शिविर की फूट-दर-फूट भी एक बड़ा और चिन्तनीय पहलू है। मुझे यह भी लगता है कि भारतीय समाज में जाति की जड़ वास्तविकता का आकलन करने में वामपंथी आंदोलन चूक करता रहा। आखिर इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि दलित समस्या के प्रति मार्क्सवादी नजरिया क्या होना चाहिए अथवा दलित पक्षधरता गैरमार्क्सवादी या मार्क्सवाद विरोधी चिन्तन है?

जॉन रोयलोव्स का गैरसरकारी स्वयंसेवी संगठनों और दाता एजेंसियों के छद्म को उजागर करने वाला आलेख हिन्दी जनता के बड़े हिस्से तक पहुंचाने का आपका प्रयास मुझे सार्थक लगा। मैं इसका और भी प्रचार-प्रसार चाहता हूं।

हमारे लिए यह जानने योग्य और अनुकरणीय होगा कि ब्रेख्त "लोक नाटक" और लोक भाषा के निरन्तर पक्षधर बने रहे। वे डंके की चोट पर सामाजिक और राजनीतिक चेतना को लेखन की पहली शर्त मानते हैं जबकि ऐसा लेखन कला का विरोधी भी नहीं होता। परसाई यदि महत्वपूर्ण हैं तो अपने लेखन में सामाजिक और राजनीतिक चेतना के कारण ही, जहां दूसरे व्यंगकार नहीं पहुंच पाते। दुख के बयान के साथ ही उसके कारणों की जांच-पड़ताल करना सामाजिक और राजनीतिक चेतना के अभाव में सम्भव ही नहीं है। ब्रेख्त इसीलिए हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं। वे भूखों की रोटी और जनता के पसीने की गंध जानते हैं और उन्हें शिनाख्त है आने वाले युद्ध की।

- सुधीर विद्यार्थी

संपादक 'मंदर्श', "चंदनगंध', निकट बड़ा पावर हाउस, बीसलपुर, पीलीभीत-262 201

◆ 'दायित्वबोध' के अंक ललक के साथ मैं देखता रहा हूं। जन-जागरण का जो अभियान आप लोगों ने छेड़ा है, मैं उसमें आपके साथ हूं।

नवम्बर '97-फरवरी '98 अंक तो आंख खोलने वाला है। ब्रेख्त की जन्मशताब्दी वर्ष का एक प्रसंग, अभी कुछ दिनों पहले अपनी दिल्ली यात्रा के दौरान, 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव जी के घर 21 फरवरी को आयोजित अनौपचारिक गोष्ठी के दौरान खुला, जिसमें केदारनाथ सिंह, विजयमोहन सिंह, रवीन्द्र त्रिपाठी, कुलदीप, उपेन्द्र कुमार ही नहीं, जर्मन रेडियो के हिन्दी संपादक उज्ज्वल भट्टाचार्य भी थे। उज्ज्वल ने ब्रेख्त के कुछ प्रसंग बताये थे। ब्रेख्त की जन्मशताब्दी पर अपनी कुछ योजनाएं भी। इसी पृष्ठभूमि में अभी आपकी पत्रिका में मोहन थपलियाल का ब्रेख्त पर लेख 'दुख के कारणों की तलाश का कवि' एवं उनके द्वारा कवि की 28 कविताओं का अनुवाद कवि की जन्मशती पर मुझे बहुत बड़ा काम लगा। आपकी पत्रिका की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। आप मेरी ओर से थपलियाल जी को इस महत् उपलब्धि के लिए बधाई दें।

आपकी पत्रिका के इस अंक पर मैं विस्तार से 'हंस' के आगामी अंकों में टिप्पणी करूंगा।

- भारत भारद्वाज

1, B/C, गांधी नगर, जम्मू-180 004

◆ नवम्बर'97 फरवरी'98 अंक प्राप्त हुआ। समाज पर कुप्रभाव डालने वाली बातों के सभी अंगों को बेनकाब करने का जो अभियान आपने चलाया है और उसे मुस्तैदी के साथ जारी रखने का निश्चय किया है, उसके लिए आप बधाई के पात्र हैं।

कुसंस्कृति तथा शोषकों के बढ़ते प्रभाव के कारण परिवर्तनकारी दिलो-दिमाग पर जमी निराशा की धूल साफ कर आशा जगाने और मार्ग दिखाने के लिए जरूरी ऊर्जा स्रोत की भूमिका पत्रिका निभाती है। स्थिति का सिर्फ विश्लेषण नहीं करती, विकल्प भी सामने रखती है। ऐतिहासिक दस्तावेजों के अलावा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक विषयों पर लेख तथा टिप्पणियां भी पठनीय और संग्रहणीय हैं।

साम्राज्यवादियों की एजेंट—गैरसरकारी स्वयंसेवी संगठनों की नेटवर्किंग और अरबों रुपये के पूंजीनिवेश का मकसद, कार्यशैली तथा अन्य बातें उजागर करने के साथ ही आई.एम.एफ, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन आदि मंचों की स्थापना के कारण, कार्यशैली, गतिविधियों आदि की जानकारी बेहद जरूरी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के बारे में भी विस्तार से जानकारी मिले।

विकल्प की बात करते हुए पार्टी निर्माण और गठन की जरूरत महसूस की गई है। आज क्रान्तिकारी शिविर में व्याप्त शून्यता को देखते हुए पार्टी की जरूरत तो है ही। इसके लिए जरूरी है कि बिखरी हुई धाराओं को एकत्रित करने का अभियान चलाया जाये। यह बात बेहद

अफसोसजनक है कि क्रान्तिकारी शिविर में मतभेदों को शत्रुता में बदलने की प्रक्रिया जोरों पर है। कुछ धाराओं पर अराजकतावाद हावी है तो कुछ पर संसदवाद। ऐसी स्थिति में यह जरूरी है कि इन धाराओं की आलोचना करते समय वह सकारात्मक तथा संवाद व बहस को आगे बढ़ाने वाली हो इसका विशेष ध्यान रखा जाये।

- वि.रा. साथीदार, नागपुर

◆ 'दायित्वबोध' का नवंबर '97-फरवरी '98 अंक बहुत अच्छा लगा। सम्पादकीय से आपके छद्म वामपंथ से भिन्न, एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण का पता चलता है तथा एक विकल्प के निर्माण के प्रति गहरी बेचैनी और क्रियाशीलता का भी। वास्तव में भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन में जितनी गंभीर गलतियों, भटकावों, कमजोरियों का अम्बार लग चुका है उससे मुक्त होकर एक सही क्रान्तिकारी दिशा पकड़ने के लिए, एक व्यापक आलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा व्यापक संवादधर्मिता का माहौल बनाना आज समय की सबसे बड़ी जरूरत है। आशा करता हूं, 'दायित्वबोध' इस दायित्व को पूरा करने के लिए, पूरी शक्ति के साथ अविराम संघर्ष चलायेगा।

- सुधांशु कुमार मालवीय, 28, अमरनाथ झा मार्ग, इलाहाबाद- 211 002

◆ 'दायित्वबोध' का नवंबर '97-फरवरी '98 अंक इस अर्थ में ज्यादा महत्व का है कि इसमें माओ त्से-तुङ के जन्मदिन (26 दिसम्बर) तथा बर्तोल्त ब्रेख्त के जन्मशताब्दी वर्ष (10 फरवरी '98-99) के अवसर पर उनकी क्रान्तिकारी कविताओं को प्रकाशित किया गया है। ब्रेख्त पर मोहन थपलियाल के लेख के अलावा, हॉब्सबॉम की पुस्तक की समीक्षा, जोन रोयलोव्स का लेख तथा अन्य सामायिक लेख व टिप्पणियां पठनीय हैं। आप लगातार बेहतर अंक निकाल रहे हैं, इसके लिए मेरी ओर से बधाई लें।

- रामनिहाल गुंजन, नया शीतल टोला, आरा, बिहार-802 301

◆ 'दायित्वबोध' पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इसमें बहुत कुछ ऐसी जीवन्त, ज्वलित तथा सार्थक वैचारिक सामग्री है जो अनेक बहसों को बहुत ही ठोस पृष्ठभूमि प्रदान कर उन्हें सही दिशा देती है। और यह तब जबकि वर्तमान परिस्थिति में तमाम राष्ट्रों में राजनीतिक व आर्थिक संकट गहराता जा रहा है, एवं साम्राज्यवादी शक्तियां महाशक्ति बनने की होड़ में तमाम तीसरी दुनिया सहित हमारे देश में भी अपना राक्षसी पंजा फैलाती जा रही हैं। तब इस व्यवस्था के संकट के काल को क्रान्तिकारी काल में रूपान्तरित करने के लिए इस प्रकार की सार्थक, गम्भीर व वैचारिक समझ को पुख्ता करने वाली पत्रिकाओं की अत्यन्त आवश्यकता हो जाती है। पत्रिका न सिर्फ हमारे बोध को विकसित करती है बल्कि संवेदनात्मक धरातल पर भी स्पर्श करती है।

यह पत्रिका मार्क्सवादी-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा को विकसित करने व इसके व्यावहारिक प्रयोग के लिए बेहतर मददगार सिद्ध होगी तथा सर्वहारा वर्ग में नई चेतना व नया जोश भरकर जनता में क्रान्तिकारी ज्वाला पैदा करने में चिंगारी का काम करेगी। यह पत्रिका क्रान्तिकारियों के लिए बेहद जरूरी है।

पत्रिका के सभी लेख बहुत महत्वपूर्ण हैं। 'अपनी बात' में आपने तेलंगाना व नक्सलबाड़ी की मशाल को फिर से जलाने की बात कही है वह गौरतलब तथा गंभीर चर्चा का विषय है।

वास्तव में आज हमें लाल झंडे की शान को ऊंचा रखने के लिए हर किस्म के संशोधनवाद के साथ स्पष्ट विभाजक रेखा खींचते हुए व उनके विरुद्ध वैचारिक संघर्ष चलाते हुए एक सच्ची व सही कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण व पार्टी गठन की प्रक्रिया को नये सिरे से मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा के आधार पर शुरू करना होगा। आपकी यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। माओ की कविताएं व ब्रेख्त की अट्ठाइस कविताएं बहुत अच्छी लगीं जो राजनीतिक समझ और व्यावहारिकता को और परिपक्वता प्रदान करती हैं।

मैं नियमित रूप से 'दायित्वबोध' पढ़ना चाहता हूं तथा पत्रिका के प्रसार में भी आपका सहयोग करना चाहता हूं।

- गोवर्धन सिंह, ग्राम-चुटिया, पो. गोदरमाना, थाना-रंका, गढ़वा (बिहार)

◆ 'दायित्वबोध' नवंबर '97-फरवरी '98 में 'भारतीय अर्थव्यवस्था ढलान पर फिसलती हुई, 'सब्सिडी पर श्वेतपत्र', 'आर्थिक विकास के नाम पर आंकड़ों की बाजीगरी', 'भूमंडलीकरण की असलियत' 'भारत में गरीबी दूर करने के लिए विश्वबैंक की सीख', 'सबको प्राथमिक शिक्षा और बाल कल्याण योजनाओं पर सरकार की ढांगी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए लेख बहुत अच्छे हैं।

हम लोग तीन साल से जेल की कोठरियों में बंद हैं, कई प्रकार की कठिनाइयों को झेलते हुए जेल काट रहे हैं। जेलों में रहने वाले क्रान्तिकारियों पर कई प्रकार की कठिनाइयां आती रहती हैं, न कोई मिलने वाला, न कोई देखने वाला। हम लोग व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर जनता के, क्रान्ति के हित में त्याग दे रहे हैं। अभी हम लोग जेल में हैं, फिर भी क्रान्तिकारी लक्ष्य को नहीं भूलेंगे। जनता के हित के लिए जेल काटना कोई बड़ी बात नहीं। कितनी भी कठिनाइयां आयें, आखिरी दम तक क्रान्तिकारी लक्ष्य को दिल में लेकर जेल काट लेंगे।

पत्रिका में 'क्रान्ति का विज्ञान', 'विचारों की सान पर', 'पाश की चुनी हुई कविताएं', 'शहीद आजम की जेल नोटबुक' 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' जैसी किताबों का नाम देखने को मिला। हम यहां के सभी राजनीतिक बंदियों की ओर से आपसे तथा इन विचारों से जुड़े सभी साथियों से अपील करते हैं कि हमें ये पुस्तकें तथा अन्य क्रान्तिकारी साहित्य जितना हो सके भेजें। अगर कीमत देना जरूरी है तो हम उपवास करके पैसे जुटायेंगे, पर साहित्य हमें जरूर भेजिए।

- मोतीलाल धुर्वे, जयपाल सिंह, प्रभाकर, रमेश, उपजेल, बालाघाट, म.प्र.

◆ नवंबर '97-फरवरी '98 अंक का सम्पादकीय देश के विकल्पाकांक्षी वर्तमान का सटीक संकेत है। मदर टेरेसा और उनकी उत्तराधिकारी सिस्टर निर्मला के बहाने अमेरिका जैसे साम्राज्यवादी देशों की रणनीति उजागर हुई है। माओ त्से-तुङ की कविताओं का सन्दर्भ देकर आपने इस अंक और इन कविताओं का महत्व बढ़ा दिया है। बर्तोल्त ब्रेख्त जैसे कवि की कविताओं के कारण यह अंक और भी महत्वपूर्ण हो गया है। उन पर लेख उनके जीवन, परिवेश और रचनात्मक यात्रा को समझने में सहायक हुआ है। ब्रेख्त ने शायद ऐसी ही कविताओं के लिए कहा है कि इन्हें देखकर अच्छे लोगों की आंखें खुशी से चमक उठती हैं और बुरे लोगों की दहशत से।

बेशक हर अंक की तरह यह अंक किसी भी सजग पाठक की संग्रहणीय सम्पत्ति है।

- रामेश्वर द्विवेदी, शिलांग

◆ नवंबर '97-फरवरी '98 अंक का गेट-अप बहुत अच्छा लगा।

- सूर्यदेव उपाध्याय
लेनिन लाइब्रेरी, उल्हासनगर-4, महाराष्ट्र

◆ मुझे 'दायित्वबोध' के जुलाई-अक्टूबर '97 का अंक काठमाण्डू से आये हुए एक मित्र के हाथ से मिला, लेकिन आधा घंटा देखने के बाद लौटाना पड़ गया। मैं इस पत्रिका को नियमित तो पाना ही चाहता हूं, इसके शुरू से अब तक के सारे अंक पाना चाहता हूं।

आपसे विशेष निवेदन है कि विराटनगर (नेपाल का दूसरा बड़ा शहर) के बाजार और व्यावसायिक क्षेत्र में भी पत्रिका की बिक्री/वितरण का प्रबंध करें। जिज्ञासु पाठकों का फायदा होगा।

- वी. के. डम्बर
जोगबनी, जि. अररिया (बिहार)

◆ 'दायित्वबोध' जुलाई-अक्टूबर '97 का अंक हमें अभी मिला। हम कई लोगों ने इसे पढ़ा और इसके लेखों पर खूब बहस भी चली। 'एक ऐतिहासिक विश्वासघात और उसके बाद की अंधकारमय अर्द्धशताब्दी' शीर्षक सम्पादकीय में आजादी के 50 वर्षों की सच्चाई को जीवन्त आंकड़ों

के साथ बहुत अच्छे ढंग से रखा गया है। 'माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य' तथा अन्य लेख भी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

– डा. अमित कुमार

ग्राम-बकुवा, पो. जिला-रोहतास (बिहार)

✦ नवम्बर '97 फरवरी '98 अंक में बहस के लिए उठाया गया मुद्दा—'गैर सरकारी स्वयंसेवी संगठनों और दाता एजेंसियों का असली चरित्र' काफी अच्छा लगा। सार्थक तथा उपयोगी बहस के लिए आपको तथा आपके सहयोगियों को बहुत बहुत धन्यवाद।

जनता के बीच से उभर रहे जनान्दोलनों को पैसे के बल पर तोड़ने का काम ये स्वयंसेवी संगठन कर रहे हैं। हम व्यवस्था परिवर्तन की बात करते हैं तो वे कहते हैं कि यह राजनीति है। हम सरकार व प्रशासन पर दोषारोपण करते हैं, विकास के नाम पर लूट और भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं तो वे फण्ड लेकर निर्माण, रचना और विकास की बात करते हैं। ये स्वयंसेवी संगठन स्वयंसेवी की नहीं धनसेवी हैं। विशुद्ध रूप से ठेकेदार हैं। सरकारी संस्थाओं से कम भ्रष्टाचार इन संस्थाओं में नहीं है। लेकिन ये समाजसेवा की चादर ओढ़े हुए हैं। 'कम्युनिटी डेवलपमेंट' के नाम पर 'फेमिली डेवलपमेंट' करते हैं। ऐयाशी भी कम नहीं। दिल्ली में सरकारी कार्यालय दाता एजेंसियों के कार्यालयों के सामने फीके हैं।

ज्ञात हो कि आज अमेरिका को भारत के बारे में सबकुछ पता है। भारत की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, मानचित्र, गली, नाली, पहाड़, जंगल, गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी का पूरा खाका विदेशी संस्थाओं के पास है। ये लोग चित्र लेते हैं, सर्वेक्षण करते हैं, आंकड़े जुटाते हैं। उपरोक्त विस्तृत जानकारियां भले ही देश के सरकारी कार्यालयों में न हो, परन्तु विदेश की सम्बन्धित संस्थाओं को जरूर पता है। (दो वर्ष पूर्व पुरूलिया में हथियार गिराये जाने की घटना को क्या इससे जोड़ा जा सकता है?)

ये स्वयंसेवी संस्थाएं मुख्य रूप से दो भागों में बंटी हैं। एक ग्रुप विश्व बैंक का समर्थक है, तो दूसरा विश्वबैंक का विरोधी। आखिर फण्ड लेने के लिए किसी के हाथ का खिलौना तो बनना ही पड़ता है। बिहार में विश्व बैंक समर्थक संस्थाएं पंचायती राज अधिनियम का प्रचार-प्रसार करती है तो विश्व बैंक विरोधी ग्रुप अधिनियम की खामियों को प्रचारित करता है।

– रामदेव विश्वबंधु, जिला संयोजक, छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी, गिरिडीह-815 301

✦ जुलाई-अक्टूबर '97 अंक में विश्वनाथ मिश्र का लेख 'मार्क्सवाद के विरोध में नव दक्षिणपंथी लोकरंजकतावाद के नये-नये मिथक' निश्चय ही वर्तमान परिवेश में विचारधारात्मक स्तर पर नये सवालों को उठाता है और जनपक्षधर बुद्धिजीवियों को सचेत करता है। विश्वनाथ मिश्र ने उच्च शिक्षा से सम्बन्धित रस्तोगी कमेटी की रिपोर्ट का पूर्णतः पोस्टमार्टम कर डाला है। बधाई।

– डा. उपेन्द्र प्रसाद, राजनीतिविज्ञान विभाग, बीआरडी पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बरहज, देवरिया

दायित्वबोध यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ● संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, **गोरखपुर** ● जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ● विजय इन्फार्मेशन सेंटर, कचहरी बस स्टैण्ड, **गोरखपुर** ● राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, **लखनऊ** ● जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम पांच से साढ़े सात) ● ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, **लखनऊ** ● विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, इंदिरानगर, लखनऊ ● डी.सी. वर्मा, बी-118, आजादनगर, कैम्पबेल रोड, **लखनऊ** ● इण्डियन बुक डिपो, अमीनाबाद, **लखनऊ** ● विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, **बड़हलगंज, गोरखपुर** ● शहीद पुस्तकालय, द्वारा, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर, मऊ** ● **मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊ** ● प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय, **पंतनगर** ● देवेन्द्र प्रताप, हर्ष निकेतन, चीना लाज कम्पाउण्ड, धूप कोठी, मल्लीताल, **नैनीताल** ● डी. के. सचान, द्वारा कृपाल सिंह, 95, वी.पी. कालोनी, सिविल लाईंस, **रामपुर** ● ललित सती, भारतीय जीवन बीमा निगम, **रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर** ● रामधीरज, स्वराज्य स्टेशनर्स, प्रयाग चुंगी, मोतीलाल नेहरू मार्ग, **इलाहाबाद** ● करेंट बुक डिपो, 18/53, माल रोड, (फूलबाग के सामने), **कानपुर** ● प्रतिभा प्रकाशन, (पेप्सी होटल के नीचे), स्टेशन रोड, **बलिया** ● राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** ● नेशनल न्यूज एजेन्सी, पल्टन बाजार, **देहरादून** ● श्री मुचकुंद, प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, लंका, **वाराणसी** ● सर्वोदय बुक स्टाल, प्लेटफार्म नं. 5, कैण्ट रेलवे स्टेशन, **वाराणसी**

बिहार ● संतोष शर्मा, क्वा.नं. एल/61 के, बरौनी, **बेगूसराय** ● समकालीन प्रकाशन, पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** ● राजकमल प्रकाशन, साईंस कालेज के सामने, अशोक राजपथ, **पटना** ● पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ● जिज्ञासा प्रकाशन, झेलम अपार्टमेंट, राजेंद्रनगर, पटना ● मेगजीन कार्नर, नाला रोड, दिनकर चौक, पटना ● अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव, द्वारा, शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, पो. **मेंहसी, पूर्वी चम्पारण** ● मैत्रेयी साहित्य संगम, (सर्व आफिस के सामने), लालबाग कं.डी.एस., **दरभंगा** ● विजय कुमार आर्य, सचिव 'मजदूर संगठन समिति', गुरारू चीनी मिल्स, गुरारू, पो. **गुरारू**, जि. **गया** ● वी. प्रशान्त, कन्हौली (बी.एम.पी. -6 से पूरब), **मुजफ्फरपुर** ● दीपशिखा पत्रिका मण्डप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, **मुजफ्फरपुर** ● रामपुकार सिंह, ग्रा.पो.भदई, **मुजफ्फरपुर** ● विद्यानन्द सिंह, वार्ड न. 4, **सुपौल** ● श्री भुवन वेणु, 'प्रतीक्षा', मधुबनी, चुनापुर रोड, **पूर्णिया**

दिल्ली ● शिवरतन, सी 2/27, न्यूकोण्डली, जे.जे. कालोनी ● बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, सफदर हाशमी मार्ग, मण्डी हाउस ● गीता बुक सेण्टर, शापिंग काम्प्लेक्स, जे.एन.यू. जवाहर बुक सेण्टर, न्यू कैम्पस, जे.एन.यू. ● पी.पी.एच. बुक स्टाल, न्यू कैम्पस, जे.एन.यू. ● हेम बुक सेंटर, न्यू कैम्पस, जे.एन.यू. ● बी.पी. मौर्य बुक स्टाल, निकट पूर्वांचल हास्टल, जे.एन.यू. ● पुस्तक मण्डप, दिल्ली विश्वविद्यालय कोऑपरेटिव स्टोर्स लि. ● पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मरीना होटल बिल्डिंग, कनाट प्लेस ● पीपुल ट्री, 8, रीगल बिल्डिंग, कनाट प्लेस ● एतकाद अहमद, डिपार्टमेण्ट आफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिल्लिया इस्लामिया ● **अखिल** भारतीय नेपाली एकता समाज, आर. के. पुरम

महाराष्ट्र ● परिदृश्य प्रकाशन, क, दादी संतुक लेन, धोबी तालाब, मरीन लाइन्स, **मुम्बई** ● संतीश कालसकर, पीपुल्स बुक हाउस, मेहर हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई** ● शैलेश वाकड़े, विजयालक्ष्मी नगर, टीचर्स कालोनी, बल्लारपुर, **चन्द्रपुर** ● सूर्यदेव उपाध्याय, लेनिन लाइब्रेरी, उल्हास नगर, जि.-**ठाणे**

गुजरात ● डा. हरिश राय, 403, अक्षय अपार्टमण्ट, ओल्ड पादरा रोड, **बड़ौदा**

हिमाचल प्रदेश ● एम.आर. हरनोट, हिमाचल पर्यटन विकास निगम, रिट्ज एनेक्सी, **शिमला**

हरियाणा ● नरभिंदर सिंह, द्वारा, डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा.-पो. संतनगर, जि. **सिरसा** ● राजीव रंजन, द्वारा पाश पुस्तकालय, पुलिस लाइन, **करनाल** ● सुरेश जांगिड़, अक्षर धाम, मुकीर्ति प्रिंटर्स, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, **कैथल**

राजस्थान ● हंसा प्रकाशन, 316, खंटेटों का रास्ता, किशन पोल बाजार, **जयपुर** ● संजय श्रीवास्तव, 221, उत्तरी सुन्दरवास, गंगा फ्लोर मिल, **उदयपुर**

उड़ीसा ● गाला बुक्स, 61-62, बस स्टैण्ड, **अस्का**, जिला-गंजम

असम ● शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया** ● दिनकर कुमार, चाणक्य पथ, जी एस रोड, दिसपुर, **गुवाहाटी**

प. बंगाल ● श्याम अविनाश, पी. एन. घोष स्ट्रीट, **पुरूलिया** ● राकेश गारखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** ● बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ● न्यू हाराइज़न बुक ट्रस्ट, 57/1, पटुआटोला लेन, **कलकत्ता** ● जनार्दन थापा, लुकमान बाजार, पो.आ. करन, जि. **जलपाईगुड़ी** ● ओमप्रकाश पाण्डेय, प्राध्यापक, 35/डी, सेंट्रल कालोनी, पो. भक्तिनगर, **न्यू जलपाईगुड़ी**

आन्ध्र प्रदेश ● गोविन्द अक्षय, 'सारस्वत सदन', 13/6/411/2, रामसिंहपुरा, कारवान, **हैदराबाद**

मध्यप्रदेश ● जयप्रकाश जायसवाल, 'पितृछाया,' अमृत सागर कालोनी, एम.आई.जी. 96-97 **रतलाम** ● चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, **जगदलपुर, बस्तर** ● 'विकल्प' सोम्कृतिक मोर्चा, 1835, सिलवर ओक कम्पाउंड, नेपियर टाउन, **जबलपुर**

नेपाल ● पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री वितरण केन्द्र, डिल्ली बाजार, उकालो, **काठमाण्डू** ● जलजला पुस्तक सदन, धमथोंजी चौक, **नेपालगंज, बांके** ● विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, **बुटवल, लुम्बिनी** ● विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्युठान, **राप्ती अंचल** ● गुरुप्रसाद, विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवन पथ, बुटवल-8, **रूपनदेई** ● श्री मंगल नेपाली, मंगल मेडिकल हाल, **सुर्खेत**, बीरेन्द्रनगर, भेरी अंकल, जिल्ला **सुर्खेत, मध्य पश्चिमांचल क्षेत्र** ● न्यू कोशी पुस्तक भण्डार, ट्राफिक चौक, **विराटनगर-14, जिला मोरंग**

●

पूंजीवाद की पूंजीवादी समालोचना के निहितार्थ

विश्व स्तर पर समाजवाद की धारा की पराजय के बाद तमाम बुर्जुआ विचारक और समाज-वैज्ञानिक लगातार इसतरह के दावे करते रहे हैं कि पूंजीवाद ही मानवता की यात्रा की अन्तिम मंजिल है और (पूंजीवादी) जनतंत्र ही समाज-व्यवस्था का एक आदर्श और व्यावहारिक मॉडल है। यह दावा किया जा रहा है कि पूंजीवाद और जनतंत्र ही स्वतंत्रता और समृद्धि के वे जुड़वां आधार-स्तम्भ हैं, जिन्हें अंततोगत्वा पूरी पृथ्वी पर स्थापित होना है।

लेकिन रूस, पूर्वी यूरोप और तीसरी दुनिया के देशों से लेकर पश्चिमी जगत की वर्तमान सच्चाइयां तो इन दावों को रोज-ब-रोज झुठला रही हैं, अब पूंजीवाद के हृदय-स्थल से ही इस दावे के विरोध में आवाजें फूटने लगी हैं। इस स्थापना पर न केवल शंका प्रकट की जा रही है, बल्कि इसे सिरे से ही गलत बताया जा रहा है कि पूंजीवाद ही एक सच्चे जनतांत्रिक समाज का उचित आधार हो सकता है। बल्कि यहां तक कहा जा रहा है कि खुले बाजार की नीतियों के दौर के पूंजीवाद का तालमेल सबसे सटीक ढंग से एक निरंकुशतंत्र के साथ ही बैठ सकता है। ऐसा कहने वालों में न केवल पश्चिम के कुछ शीर्षस्थ बुद्धिजीवी शामिल हैं, बल्कि कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अग्रणी अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के प्रबंधन से जुड़े रहे हैं या बाजार के "खेल" के धुरंधर बड़े खिलाड़ी रहे हैं।

खुले बाजार की अर्थव्यवस्था में अपनी तमाम कामयाबियों के बावजूद, इन "संदेहवादियों" का मानना है कि प्रचलित विश्वासों के विपरीत आज का पूंजीवाद वास्तव में जनतांत्रिक मूल्यों और संस्थाओं की बुनियाद को कमजोर कर रहा है।

हंगेरियन मूल के वित्तीय महाप्रभु और स्वयंभू लोकहितैषी **जॉर्ज सोरेस** का कहना है कि "खुले समाज (ओपेन सोसाइटी)" के लिए आज खतरा कम्युनिज्म से नहीं बल्कि पूंजीवाद से है। उन्होंने हेगेल के इस पर्यवेक्षण का हवाला दिया है कि अक्सर सभ्यताएं "अपने खुद के शुरुआती सिद्धान्तों विकृत घनीभूतीकरण या तीव्रीकरण के चलते" तबाह होती रही हैं। सोरेस का मानना है कि जो प्रतियोगिता खुले बाजार की अन्तर्निहित गतिमानता का मुख्य कारक रही है, उसी के अभाव के चलते आज पूंजीवाद अपनी सबसे बुरी अतियों का शिकार हो रहा है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री और यूरोपीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष **जॉक अत्ताली** के स्वरों में खतरे की यह घण्टी और अधिक प्रचण्ड रूप में बजती सुनाई देती है। वे घोषणा करते हैं कि "जबतक पश्चिमी विश्व और इसका स्वयंभू नेता संयुक्त राज्य अमेरिका बाजार अर्थव्यवस्था और जनतंत्र की कमियों को स्वीकार करना शुरू नहीं कर देते, पश्चिमी सभ्यता धीरे धीरे विघटित होती रहेगी और अन्ततोगत्वा खुद को ही नष्ट कर लेगी।"

...खुले बाजार की नीतियों के दौर के पूंजीवाद का तालमेल सबसे सटीक ढंग से एक निरंकुशतंत्र के साथ ही बैठ सकता है। ऐसा कहने वालों में न केवल पश्चिम के कुछ शीर्षस्थ बुद्धिजीवी हैं, बल्कि कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के प्रबंधन से जुड़े रहे हैं या बाजार के "खेल" के धुरंधर बड़े खिलाड़ी रहे हैं।

खुले बाजार और जनतंत्र के बीच के कुछ अन्तर्निहित अन्तरविरोधों को बताते हुए अत्ताली कहते हैं कि जनतंत्र व्यक्तियों के अधिकारों और बहुमत के शासन को प्रतिष्ठापित करता है जबकि बाजार व्यक्ति को "गौण, उपेक्षणीय और विनिमय योग्य" मानता है। निगम जनतांत्रिक संस्था होने का दिखावा नहीं करते और वे 'सिर्फ अपने शेयरधारकों के प्रति ही जवाबदेह होते हैं।'

अत्ताली के अनुसार, खुले बाजार और जनतंत्र के बीच का दूसरा प्रमुख अन्तरविरोध यह है कि जनतंत्र सभी नागरिकों के लिए बराबर अधिकारों और अवसरों की गारण्टी (?) देता है, जबकि पूंजीवाद की यह मूल प्रकृति है कि वह असमानता को बढ़ाता है और जिनके पास पहले से ही धन मौजूद है, उन्हीं के हाथों में धन के संकेन्द्रण को बढ़ाता है।

अत्ताली के शब्दों में, तीसरा अन्तर्गविरोध यह है कि जनतंत्र सर्वाधिक स्थानीय और विकेन्द्रित रूप में ही सर्वाधिक प्रभावी होता है, जबकि पूंजीवाद की अपरिहार्य प्रवृत्ति केन्द्रीकरण, भूमण्डलीकरण और इजारेदारी की ओर अग्रसर होने की होती है।

अन्त में अत्ताली का कहना है कि जनतांत्रिक संस्थाएं किसी भी समाज में तभी क्रियाशील हो सकती हैं जब व्यक्ति खुद को एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदारियों और आम हितों की जिम्मेदारियों से लैस नागरिक के रूप में देखें, लेकिन पूंजीवाद नागरिकता की उपेक्षा या अवहेलना करते हुए व्यक्ति को सिर्फ उपभोक्ता के रूप में देखता है जिसे वह पूर्णतः अपने उत्पादों और सेवाओं पर निर्भर बना देना चाहता है।

प्रतिभारी शक्ति के रूप में सशक्त जनतांत्रिक संस्थाओं के अभाव में, अत्ताली एक तरह के बाजार अधिनायकत्व के उद्भव की भविष्यवाणी करते हैं।

भूमण्डलीकरण के दौर के पूंजीवाद का तीसरा प्रबल आलोचक भी पूंजीवादी शिविर के ही अग्रणी बौद्धिक कतारों

में से आता है। ये हैं **मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी** (एम. आई.टी.) के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री **लेस्टर थरो**। स्पष्टतम शब्दों में थरो लिखते हैं : ''पूंजीवाद की पूर्ण संगति दास प्रथा के साथ बैठती है.... जनतंत्र दास प्रथा के लिए संगत नहीं है।'' हालांकि दास प्रथा अब मौजूद नहीं है, लेकिन जनतंत्र-विरोधी निरंकुश सरकारों के साथ पूंजीवाद की संगति के प्रचुर उदाहरण मौजूद हैं–सिंगापुर, सऊदी अरब और दक्षिण कोरिया से लेकर रंगभेद के दिनों के दक्षिण अफ्रीका तक।

लेस्टर थरो इस ''परेशान कर देने वाली'' सच्चाई को स्वीकार करते हैं कि फासिस्ट राज्य-तंत्र पूंजीवाद के सर्वाधिक अनुकूल है जिसमें राज्यसत्ता बाजार की अतियों की प्रतिसंतुलनकारी शक्ति के रूप में काम करने के बजाय उन लोगों के सेवक की भूमिका निभाती है जो राज्यसत्ता पर काबिज होते हैं। इन अर्थों में जनतांत्रिक सिद्धान्त एवं प्रक्रियाएं पूंजीवाद की निर्द्वंद्व क्रियाशीलता में बाधक होती है। थरो के अनुसार पूंजीवाद न केवल समुदाय या सामूहिक जीवन की आवश्यकता से इनकार करता है बल्कि प्रभावी ढंग से इसे नष्ट करता है जैसाकि आज दुनिया भर के अनगिन नगरों में दिखाई दे रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की घुसपैठ ने इनकी स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं के कमजोर तन्तुओं को छिन्न-भिन्न कर दिया है। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सिर्फ अपने शेयर धारकों के प्रति जवाबदेह हैं। ये अपने कर्मचारियों को 'स्पेयर पार्ट्स' समझती हैं, नागरिकों को महज उपभोक्ता के रूप में देखती हैं और समुदाय इनके लिए महज बाजार हैं जिनसे अधिकतम सम्भव लाभ निचोड़ा जा सकता हो।

पश्चिमी टिप्पणीकार **मार्क सॉमर** कहते हैं कि भूमण्डलीकरण के दौर के पूंजीवाद का मार्गदर्शक सिद्धान्त निजीकरण है विशेषाधिकार प्राप्त अभिजनों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र को तिलांजलि देकर निजी सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सेवाओं की समान्तर व्यवस्था को अंगीकार करना, जो सार्वजनिक क्षेत्र से उन्नत होती है और जनतांत्रिक प्रशासन के प्रति जवाबदेह नहीं होती। अमेरिका के भूतपूर्व श्रममंत्री **राबर्ट रीच** इस रुझान के बारे में कहते हैं कि ''अपनी व्यक्तिगत समृद्धि के लिए भूमण्डलीय आर्थिक एवं बौद्धिक अभिजन उन समुदायों और राष्ट्रों का स्थान लेते जा रहे हैं, जिनसे उनका प्रादुर्भाव हुआ है।''

लेस्टर थरो स्वचालन (ऑटोमेशन) की वर्तमान रुझान के बारे में बताते हैं कि इसकी अंतिम परिणति ठहराव के रूप में – सामाजिक और आर्थिक पक्षाघात (लकवा) के रूप में ही होगी।

●

पूंजीवादी शिविर के केन्द्रीय भाग से फूटने वाले आलोचना के ये स्वर उसी विश्व पूंजीवादी तंत्र के भविष्य की बेहद निराशाजनक तस्वीर पेश करते हैं जो अभी कल तक समाजवाद को पराभूत करने और दिग्विजय के उद्धत दावे करता रहा है और असाध्य ढांचागत संकट, मंदी की लंबी दुश्चक्रीय निराशा और दमघोंटू ठहराव के बावजूद आज भी बहुतेरे बुर्जुआ कलमनवीस यह कहते ही रहते हैं कि पूंजीवाद ही मानव समाज की अन्तिम नियति है, यही ध्रुवसत्य है।

पूंजीवादी शिविर के केन्द्रीय भाग से फूटने वाले आलोचना के ये स्वर उसी विश्व पूंजीवादी तंत्र के भविष्य की बेहद निराशाजनक तस्वीर पेश करते हैं जो अभी कल तक समाजवाद को पराभूत करने और दिग्विजय के उद्धत दावे करता रहा है।

तो क्या जार्ज सोरेस, जॉक अत्ताली, लेस्टर थरो और रॉबर्ट रीच को अचानक ''दिव्य ज्ञान'' की प्राप्ति हुई है और उन्होंने पूंजीवादी विश्व के अंधकारमय भविष्य को भांपकर इसके किसी क्रान्तिकारी विकल्प के बारे में सोचना शुरू कर दिया है?–नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। टिप्पणीकार मार्क सॉमर पूंजीवादी शिविर के आशावाद के अंतिम धागे को थामे हुए सही ही फरमाते हैं कि 'शायद इन्हीं आलोचनाओं के बीच से उभरकर कुछ ऐसे विकल्प सामने आयें कि जनतंत्र को (यानी पूंजीवादी जनतंत्र को), बचाया जा सके, समुदाय के विघटन को रोका जा सके और व्यक्ति के अधिकारों की हिफाजत की जा सके।'

सोरेस, अत्ताली, थरो और रीच समाजवाद के आग्रही नहीं हैं और न ही पूंजीवाद के अपराधों के समाजवादी आलोचक हैं। उनकी हार्दिक कामना है कि पूंजीवाद अपना मानवीय चेहरा किसी भी तरह से बचाये रखे, पूंजीवादी जनवाद के रहे-सहे मूल्यों-संस्थाओं का क्षरण-विघटन न हो और इनके जर्जर ढांचे का स्थान किसी किस्म का निरंकुश सर्वसत्तावादी या फासीवादी तंत्र न ले ले। अब यह एक दीगर बात है कि पूंजी की गति और आंतरिक तर्क पूंजीवाद की सिद्धान्तकारों और पूंजीपतियों की इच्छा से निर्धारित नहीं होता। पूंजी स्वयं पूंजीपति वर्ग को भी अपना गुलाम बना लेती है। यह भूमण्डलीकरण के दौर के साम्राज्यवादी युग की अभिलाक्षणिक विशिष्टता है कि पूंजीवादी जनवाद का ढांचा ढह और बिखर रहा है। कमजोर पूंजीवादी देशों में – विश्व पूंजीवाद के अंधेरे कोनों में यह प्रक्रिया तेज और स्पष्ट है। पर सच यह है कि पश्चिम के नन्दन कानन भी इससे सुरक्षित नहीं हैं। ''कल्याणकारी राज्य'' के कीन्सियाई नुस्खे का दौर अब निर्णायक तौर पर समाप्त हो रहा है। कीन्स ने समाजवाद की बाढ़ को रोकने के लिए और फासीवादी उभार के खतरे से सबक लेकर अपना नुस्खा आंशिक तौर पर समाजवाद से ही उधार लिया था। अब पराजित समाजवाद इस उधारी नुस्खे का ब्याज ले रहा है– इतना तगड़ा कि अब इसके अमल की गुंजाइश ही समाप्त होती जा रही है। पूंजीवादी दायरे के भीतर निजीकरण एकमात्र विकल्प है और इसकी तार्किक परिणति के तौर पर वह सब कुछ होना ही है, जिसको लेकर उपरोक्त बुर्जुआ फिलिस्टाइन आत्माएं विधवा विलाप कर रही हैं।

दरअसल यह भूमण्डलीकृत विश्व पूंजीवाद की आर्थिक दुश्चक्रीय निराशा ही है जो राजनीतिक-सामाजिक स्तर पर पूंजीवादी जनवाद के निश्शेष होते जाने की प्रक्रिया के रूप में दिखाई दे रही है तो बौद्धिक स्तर पर फ्रांसिस

फुकोयामा से लेकर उत्तर आधुनिकतावादी चिन्तकों तक के कण्ठ से तथा सोरेस, अत्ताली, थरो, रीच आदि जैसों की निराश आत्मस्वीकृतियों में अभिव्यक्ति पा रही है।

सोरेस और अत्तालीआदि ने पूंजीवाद की कार्यप्रणाली को अंदर से, इसके संचालन-केन्द्रों में बैठकर देखा है और अधिक चिन्तनशील पूंजीपति और पूंजीवादी सिद्धान्तकार होने के नाते इन्होंने तमाम ऊपरी आवरणों को भेदकर उस सारभूत यथार्थ के एक पहलू को स्पष्ट रूप में देखा है जिसे देखने के लिए जनता के पक्ष के बुद्धिजीवी या क्रान्तिकारी नेतृत्व को मार्क्सवादी विज्ञान की दरकार होती है। पर सोरेस आदि की वर्गीय दृष्टि की इतिहासबद्ध सीमा यह है कि वे पूंजीवाद की घोर मानवद्रोही, अन्तकारी अपरिहार्य गति को तो देख पाते हैं पर समाजवाद को एक व्यावहारिक विकल्प या तार्किक परिणति के रूप में नहीं देख पाते। अपनी निराशाभरी चीख-पुकार से वे अपने बिरादरों को आगाह करना चाहते हैं। बदहवासी में भी उनकी कामना यही है कि कोई राह निकल आये कि पूंजीवाद फासीवाद की आत्मघाती राह न पकड़े, जिसका नतीजा अतीत में वे विश्वयुद्ध के रूप में भी देख चुके हैं और सर्वहारा समाजवादी क्रान्तियों के रूप में भी भुगत चुके हैं। अब यह एक दीगर बात है कि आज इनकी चीख-पुकार कुछ वैसी है जैसे ब्रेक फेल हो जाने के बाद ढलान पर लुढ़कती गाड़ी के मुसाफिरों और ड्राइवर-खलासी की चीख-पुकार और निष्फल कोशिशें।

ये लोग भी वास्तव में बुर्जुआ जनतंत्र के 'वॉचडॉग्स' ही हैं। हां, अनिष्ट की आशंका से ये लोग जो श्वान-रुदन कर रहे हैं, वह विश्व-पूंजीवादी अट्टालिका के स्वामियों के साथ ही उत्पीड़ित जन-समुदाय के प्रबुद्ध-जागरूक हिस्सों के कानों तक भी पहुंच जा रहा है।

पूंजीवाद के आर्थिक और राजनीतिक तंत्र की तरह इसका बौद्धिक तंत्र भी एकाश्मी नहीं होता। वह विभिन्न अन्तरविरोधों से युक्त होता है जो अन्दरूनी सच्चाइयों के सामने लाते रहते हैं। प्रचारक बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा जिससमय पूंजीवाद के अजर-अमर होने का चारण-गान करता रहता है, ठीक उसीसमय सिद्धान्तकार, नीति-निर्धारक और सचेतक बुद्धिजीवियों का दूसरा हिस्सा इसकी अन्दरूनी कमजोरियों की चर्चा करने के लिए बाध्य होता है। याद करें, भारतीय आजादी की पचासवीं वर्षगांठ पर किस तरह संसद के विशेष सत्र में बुर्जुआ दलों के तमाम सांसद वास्तविकता को उजागर करने वाले बयान दे रहे थे और गत लोकसभा चुनाव के नतीजों की घोषणा के दौरान दूरदर्शन पर बुर्जुआ विश्लेषक, टिप्पणीकार और स्वयं मुख्य चुनाव आयुक्त यह स्वीकार कर रहे थे कि विगत पचास वर्षों के दौरान भारत की संसदीय व्यवस्था कमजोर हुई है और यह कि मौजूदा व्यवस्था में निष्पक्ष चुनाव लगभग असम्भव है।

वैसे पूंजीवादी शिविर के भीतर से पूंजीवाद की आलोचना और भविष्य के प्रति चिन्ता का स्वर फूटना कोई नई बात नहीं है। प्रथम साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध की विभीषिका के तुरत बाद ही **स्पेंग्लर** की कृति **'डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट'** प्रकाशित हुई थी, जिसमें पश्चिमी दुनिया के अंधकारमय भविष्य की भविष्यवाणी के साथ ही साम्राज्यवाद के युग की बुर्जुआ बौद्धिक रिक्तता, निराशा और अवसाद को प्रातिनिधिक अभिव्यक्ति मिली। पुनः जब महामंदी का दौर आया तो दूसरे महायुद्ध की उस पूर्वसंध्या में **टॉयन्बी** ने भी पश्चिम के बुर्जुआ विश्व के प्रति ऐसी ही निराशा प्रगट करते हुए एक तरह के नये धर्म-दर्शन की शरण में पनाह लेने की कोशिश की। यह फासीवाद के उभार का दौर था। इसी समय **गोर्की** ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना **'व्यक्तित्व का विघटन'** लिखी थी जिसमें उन्होंने बुर्जुआ समाज के व्यक्तित्व के अपरिहार्य विघटन की त्रासदी को घटित होते देखा था और कहा था कि यह महज अपनी जड़ता की शक्ति के सहारे ही जीवित है और यदि ''यह साबुत बचा हुआ है, तो फिर भी भीतर ही भीतर सड़ रहा है, अपने उत्पादित विष से विषाक्त हो रहा है...।''

''कल्याणकारी राज्य'' के कीन्सियाई नुस्खे का दौर अब निर्णायक तौर पर समाप्त हो रहा है। कीन्स ने अपना नुस्खा आंशिक तौर पर समाजवाद से ही उधार लिया था। अब पराजित समाजवाद इस उधारी नुस्खे का ब्याज ले रहा है— इतना तगड़ा कि अब इसके अमल की गुंजाइश ही समाप्त होती जा रही है।

बीसवीं सदी के अंत में व्यक्तित्व का विघटन की यही प्रक्रिया निर्णायक रूप से एक त्रासद महानाटक के अन्तिम अंक के दृश्यों के मंचन के समान घटित हो रही है। गोर्की ने तीस के दशक में जिस मंदी और दुश्चक्रीय निराशा को देखा था, वह आवर्ती चक्रीय क्रम मे आने वाला संकट था। आज की दीर्घकालिक मंदी का संकट असाध्य ढांचागत संकट है और पहले की सभी मंदियों से भिन्न है। बीस और तीस के दशक में यूरोप के एक हिस्से में बुर्जुआ जनवादी ढांचा टूट गया था और फासीवाद का उभार आया था। आज सार्वभौमिक रूप से बुर्जुआ जनवाद क्षरित-विघटित हो रहा है और बुर्जुआ अधिनायकत्व नग्न-निरंकुश रूप में सामने आता जा रहा है। तीस के दशक में ही खोजा गया 'कल्याणकारी राज्य' का कीन्सियाई नुस्खा अन्तिम तौर से अप्रासंगिक सिद्ध होता प्रतीत होता रहा है। एक बार फिर उन्नीसवीं सदी की तरह पूंजी और श्रम की शक्तियां आमने-सामने खड़ी हैं, पर यह उन्नीसवीं सदी का युवा, बर्बर किन्तु शक्ति एवं सम्भावना से सम्पन्न पूंजीवाद नहीं है। यह वह पूंजीवाद है, जिसमें विश्व स्तर पर कुल पूंजी-निर्माण का लगभग 70 फीसदी हिस्सा मैन्युफैक्चरिंग में नहीं बल्कि वित्तीय क्षेत्र की सट्टेबाजी में होता है। पूंजीवादी जनवाद का जन्म उद्योगों से हुआ था। वित्तीय तंत्र की सट्टेबाजी का यह प्रसार और एकछत्र प्रभुत्व तो निरंकुश सर्वसत्तावाद को ही मजबूत बनायेगा। सोरेस, अत्ताली, थरो और उनके भाई-बिरादर चाहे जितनी भी चिन्ता प्रकट करें, पूंजीवादी जनतंत्र के ताने-बाने को बिखरना ही है। फर्क सिर्फ यह है कि यह पूरे मानव-समाज के ताने-बाने का बिखरना नहीं है। बल्कि पूंजीवादी जनतांत्रिक व्यवस्था के विघटन और सामाजिक ढांचे के पुनर्गठन में ही मानव-समाज का भविष्य है। जो सोरेस जैसों की निराशा और भय का कारण है, वही आज सभी उत्पादक मेहनतकश वर्गों की बहुसंख्यक

आबादी की आशा का स्रोत है।

यह भी अनायास नहीं है कि **रैण्ड कारपोरेशन** का जो 'थिंकटैंक' – **फ्रांसिस फुकोयामा** समाजवाद की पराजय को उदारवादी पूंजीवादी जनतंत्र की स्थायी विजय के रूप में देखता है, उसका भी नजरिया पश्चिमी दुनिया के भविष्य के प्रति निराशापूर्ण ही है और उसके कण्ठ से स्पेंग्लर की प्रतिध्वनि फूटती प्रतीत होती है। यह भी अनायास नहीं है कि **उत्तर आधुनिकतावादी** विचार-सरणि प्रबोधन-काल के आदर्शों को नकारती हुई **नीत्शे** के ऊपर प्रशंसा-पुष्प बरसाती है, जिसके दर्शन में फासीवाद के वैचारिक उत्स मौजूद थे।

पूंजीवादी पापों की आत्मस्वीकृति करने वाले धनकुबेरों में सोरेस पहले नहीं हैं। उन्नीसवीं सदी के पूंजीपति उन्मत्त धनपिशाच थे, पर वे शोषण-उत्पीड़न व लूट-मार को प्रकृति का अपरिहार्य नियम समझकर उसमें आस्था रखते थे। वे हतवीर्य व अस्थिर नहीं थे। बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध उससे भी भिन्न था और हमारा आज का समय बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध से भी भिन्न है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के हतवीर्य पूंजीपति को पूंजीवदी लूट-मार के नियमों और शक्ति में स्वयं उतनी गहरी आस्था नहीं रह गयी थी और ''जनकल्याण'' के कार्यों के जरिये मानो वह क्षमायाची मुद्रा में था। उसे अपने फासीवादी पाप पर आत्मग्लानि और शर्म थी। आज का पूंजीपति ''जनकल्याण'' के प्रायश्चित या पाखण्ड में न तो आस्था रखता है, न तो उसकी इतनी शक्ति है। पर निजीकरण के नये दौर की खुली पूंजीवादी लूटमार में उसकी आस्था वैसी नहीं है, जैसी कि उन्नीसवीं सदी के पूंजीपति वर्ग की थी, जो इसे प्राकृतिक नियम के समान शाश्वत मानता था। आज का पूंजीपति वर्ग पूर्णत: हतवीर्य और अनास्थाशील है। इसलिए पूंजीवादी जनवाद के भविष्य के प्रति इसकी चिन्ता निराशोन्मत्त है और यह वास्तविक है।

यहां इस सच्चाई को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि सोरेस, थरो आदि जनतंत्र को पूंजीवादी ढांचे से स्वतंत्र-स्वायत्त, शाश्वत-विविक्त मानते हुए उसके स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता प्रगट करते हैं। इसलिए इस स्थापना को भी दुहरा देना उचित ही है कि जनतंत्र वर्ग-निरपेक्ष या आर्थिक-सामाजिक संरचना से निरपेक्ष नहीं होता। वह या तो पूंजीवादी जनतंत्र होता है या समाजवादी जनतंत्र। पूंजीवादी जनतंत्र भी सारत: पूंजीवादी अधिनायकत्व ही होता है जबकि समाजवादी जनतंत्र सर्वहारा अधिनायकत्व। पूंजीवादी जनतंत्र के जिस ''जनकल्याणकारी राज्य'' और सार्वजनिक क्षेत्र की सेवाओं की सोरेस आदि ने विरुदावली गाई है, वह सभी के लिए बराबर नहीं होता, बल्कि गरीबों के लिए सिर्फ रियायतों के कुछ टुकड़े फेंकता है। जो सीमित जनवादी अधिकार बुर्जुआ जनवादी राज्य देता है, वे एक हद तक पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली की जरूरत रहे हैं और एक हद तक जनता के संघर्षों की देन। साथ ही, उनका एक अहम उद्देश्य बुर्जुआ वर्ग के अधिनायकत्व की नग्नता पर पर्दा डालना भी होता है। अब इस पर्दे का उघड़ना बुर्जुआ वर्ग की चाहत नहीं, बल्कि व्यवस्था की मजबूरी है और इस असलियत का सामने आना दूरगामी तौर पर व्यापक अवाम के हित में है जबकि सोरेस आदि इसके लिए चिन्तित हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे जनता के जनतांत्रिक अधिकारों के अपहरण के लिए नहीं, बल्कि पूंजीवादी जनतंत्र के भविष्य के लिए चिन्तित हैं।

पूंजीवादी जनतंत्र के ताने-बाने को बिखरना ही है। पर यह पूरे मानव-समाज के ताने-बाने का बिखरना नहीं है। बल्कि पूंजीवादी जनतांत्रिक व्यवस्था के विघटन और सामाजिक ढांचे के पुनर्गठन में ही मानव-समाज का भविष्य है।

सोरेस, अत्तााली, थरो, रीच की तमाम चिन्ताओं के बावजूद, न तो भूमण्डलीकृत पूंजीवाद की रीति-नीति को बदलना मुमकिन है, न इसके तौर-तरीकों के रहते पूंजीवादी जनवाद के क्षरण-विघटन को रोकना संभव है। जिस जनतंत्र को ये बुद्धिजीवी आदर्श मानकर उसके लिए चिंतित हैं, और जिस 'ओपेने सोसाइटी' की शान में कसीदे पढ़ते हुए ये लोग उसपर मंडराते खतरे के लिए चिंतित हैं, वह वास्तव में बुर्जुआ अधिनायकत्व के खंजर-बघनखों को ढंकने वाला रामनामी दुपट्टा ही था जो अब वक्त की मार से तार-तार हो चला है।

बहरहाल, सोरेस, अत्तााली, थरो और रीच की चिन्ताओं और आलोचनाओं से हमें कम से कम इतना तो पता ही चलता है कि विश्व पूंजीवाद के अंतस्तल में निराशा का अंधेरा कितना गहरा है। ●

दायित्वबोध के शुभचिन्तकों से एक अपील

मित्रो,

इस कठिन अंधेरे के दौर में, क्रान्तिकारी प्रबोधन की मुहिम के अंग के रूप में दायित्वबोध को हम तमाम कठिनाइयों के बावजूद जारी रखे हैं। ऐसी पत्रिकाओं के समक्ष लगातार उपस्थित रहने वाले आर्थिक संकट से आप वाकिफ ही होंगे। इसी कारणवश हमें बार-बार संयुक्तांक भी निकालने पड़ रहे हैं।

इस स्थिति से उबरने के लिए हमें आपके सक्रिय सहयोग और समर्थन की जरूरत है।

आप क्या कर सकते हैं –

- अपना सदस्यता शुल्क शीघ्र भेजें तथा नये सदस्य बनाएं
- पत्रिका का एक स्थायी कोष बनाने के लिए अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजें
- यदि आप इसके वितरक हैं, तो बिक्री की धनराशि शीघ्र भेजें
- इसके लिए विज्ञापन जुटाएं

दायित्वबोध के जुलाई-अक्टूबर '98 अंक के कुछ प्रमुख आकर्षण

- वेयेर्त-हाइने-फ्रेलिगराथ की कविताएं
- लोर्का की कविताएं
- बर्तोल्त ब्रेख्त और उनका थिएटर
- ब्रेख्त की छोटी कहानियां
- उत्तर आधुनिकता पर एजाज अहमद का लेख
- माओकालीन चीन में मार्क्सवाद पर जॉर्ज थॉमसन का लेख
- महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज
- 'राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त' के दो अध्याय
- स्वयंसेवी संस्थाओं के चरित्र पर सामग्री
- भूमण्डलीकरण और सामाजिक विज्ञान
- राजनीतिक-आर्थिक टिप्पणियां

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक जो शहादत के तिरसठ वर्षों बाद छप सकी

○ आलोक रंजन

रूसी विद्वान **मित्रोखिन** वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1981 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'Lenin and India'** में पहली बार, एक अलग अध्याय में, **भगतसिंह** की दुर्लभ जेल नोट बुक से विस्तृत हवाले देते हुए उनके द्वारा अंतिम दिनों में किये गये क्रान्तिकारी और मार्क्सवादी साहित्य के गहन अध्ययन पर प्रकाश डाला था और उन योजक-सूत्रों को संयोजित करने की कोशिश की थी, जो भगतसिंह के चिन्तन के संघटक अवयव थे। (*'दायित्वबोध' के इस अंक में हम उक्त पुस्तक के उसी अध्याय को आगे स्वतंत्र लेख के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं - संपादक*)

भगतसिंह और उनके साथियों ने 1928 में **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन'** की स्थापना के समय ही समाजवाद को लक्ष्य और सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया था, पर कमोबेश 1929 के मध्य तक समाजवाद और मार्क्सवाद के प्रति उनका लगाव भावात्मक ही था, बुद्धिसंगत नहीं। भगतसिंह के सहयोगी क्रान्तिकारी **शिववर्मा** सहित अनेक इतिहासकारों ने इस बात का उल्लेख किया है कि 1929 में गिरफ्तारी के बाद एच.एस.आर.ए. के युवा क्रान्तिकारियों के एक धड़े ने, और विशेषकर भगतसिंह ने जेल में बड़ी मुश्किलों से जुटाकर, क्रान्तिकारी साहित्य और मार्क्सवाद का गहन अध्ययन और उसपर विचार-विमर्श किया। इसके परिणामस्वरूप वे अराजकतावादी और मध्यवर्गीय दुस्साहसवाद को छोड़कर तेजी से सर्वहारा क्रान्ति के मार्क्सवादी सिद्धान्तों को अपनाने की दिशा में आगे बढ़े। वैयक्तिक शौर्य एवं बलिदान से जनता को जगाने और आतंकवादी रणनीति के द्वारा उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष का रास्ता छोड़कर उन्होंने अपने अतीत की आलोचना व समाहार किया तथा इस बात पर बल दिया कि क्रान्ति की मुख्य शक्ति मजदूर और किसान हैं, साम्राज्यवाद को केवल सर्वहारा क्रान्ति द्वारा ही शिकस्त दी जा सकती है, मुख्यत: पेशेवर क्रान्तिकारियों पर आधारित सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के मार्गदर्शन में व्यापक मेहनतकश जनता व मध्यवर्ग के जनसंगठन खड़ा करके जनांदोलन का मार्ग अपनाया जाना चाहिए और यह कि, इसके बाद ही सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता पलटकर सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना की जा सकती है। एच.एस.आर.ए. के सिद्धान्तकारों में भगतसिंह सर्वोपरि थे और उनकी पूरी विचार-यात्रा को 1929 से मार्च 1931 तक (यानी फांसी चढ़ने तक) के उनके दस्तावेजों, लेखों, पत्रों और वक्तव्यों में देखा जा सकता है। भगतसिंह के सर्वोन्नत विचार फरवरी 1931 के दो भाग के उस मसविदा दस्तावेज में देखने को मिलते हैं जो 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' नाम से 'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज (सं.-जगमोहन सिंह, चमनलाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली) में संकलित है।

भगतसिंह की जेल नोट-बुक मिलने के बाद भगतसिंह के चिन्तक व्यक्तित्व की व्यापकता और गहराई पर और अधिक स्पष्ट रोशनी पड़ी है, उनकी विकास की प्रक्रिया समझने में मदद मिली है और यह सच्चाई और अधिक पुष्ट हुई है कि भगतसिंह ने अपने अंतिम दिनों में, सुव्यवस्थित एवं गहन अध्ययन के बाद बुद्धिसंगत ढंग से मार्क्सवाद को अपना मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाया था। एकबारगी तो यह बात अविश्वसनीय-सी लगती है कि क्रान्तिकारी जीवन और जेल की बीहड़ कठिनाइयों में भगतसिंह ने ब्रिटिश सेंसरशिप की तमाम दिक्कतों के बावजूद पुस्तकें जुटाकर इतना गहन और व्यापक अध्ययन कर डाला। महज 23 वर्षों की छोटी-सी उम्र में चिन्तन का जो धरातल उन्होंने हासिल कर लिया था, वह उनके युगद्रष्टा युगपुरुष होने का ही प्रमाण था। ऐसे महान चिन्तक ही इतिहास की दिशा बदलने और गति तेज करने का माद्दा रखते हैं। भगतसिंह की शहादत भारतीय जनता को आज भी क्षितिज पर अनवरत जलती मशाल की तरह प्रेरणा देती है, पर यह भी सच है कि उनकी फांसी ने इतिहास की दिशा बदल दी। यह सोचना गलत नहीं है कि भगतसिंह को 23 वर्ष की अल्पायु में यदि फांसी नहीं हुई होती तो राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का इतिहास और भारतीय सर्वहारा क्रान्ति का इतिहास शायद कुछ और ही ढंग से लिखा जाता।

बहरहाल, इतिहास की उतनी ही दुखद विडम्बना यह भी है कि आज भी इस देश के शिक्षित लोगों का एक बड़ा हिस्सा भगतसिंह को एक महान वीर तो मानता है, पर यह नहीं जानता कि 23 वर्ष का वह युवा एक महान चिन्तक भी था। राजनीतिक आज़ादी मिलने के पचास वर्षों बाद भी सम्पूर्ण गांधी वाङमय, नेहरू वाङमय से लेकर सभी राष्ट्रपतियों के अनुष्ठानिक भाषणों के विशद्ग्रंथ तक प्रकाशित होते रहे पर किसी भी सरकार ने भगतसिंह और उनके साथियों के सभी दस्तावेजों को अभिलेखागार, पत्र-पत्रिकाओं और व्यक्तिगत संग्रहों से निकालकर छापने की सुध नहीं ली।

छिटपुट पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों **अजय कुमार घोष, शिव वर्मा, सोहन सिंह जोश, जितेन्द्र नाथ सान्याल** आदि भगतसिंह के समकालीन क्रान्तिकारियों की विभिन्न पुस्तकों-लेखों, भगतसिंह के अनुज की पुत्री वीरेन्द्र सिन्धु की पुस्तकों तथा **गोपाल ठाकुर, जी. देवल, मन्मथनाथ गुप्त, विपन चन्द्र, हंसराज रहबर, कमलेश मोहन** आदि इतिहासकारों-लेखकों के विभिन्न लेखों एवं पुस्तकों से भगतसिंह के विचारक व्यक्तित्व पर रोशनी अवश्य पड़ती रही है, पर बहुसंख्यक शिक्षित आबादी भी इससे बहुत कम ही परिचित रही है। भगतसिंह के कुछ ऐतिहासिक बयानों-दस्तावेजों को सत्तर के दशक के पूर्वार्द्ध में दिल्ली से कुछ क्रान्तिकारी वामपंथी संस्कृतिकर्मियों की पहल पर प्रकाशित होने वाली **'मुक्ति'** पत्रिका ने प्रकाशित किया। इसके बाद कई पत्रिकाओं ने और क्रान्तिकारी ग्रुपों ने पुस्तिकाओं के रूप में भगतसिंह के चुने हुए कुछ लेखों को छापने का काम किया। भगतसिंह के साथी शिववर्मा ने उनके चुनिन्दा लेखों का संकलन अंग्रेजी और हिन्दी में प्रकाशित किया।

सबसे पहले **जगमोहन सिंह** (भगतसिंह की बहन के पुत्र) और **चमनलाल** ने भगतसिंह

और उनके साथियों के अधिकांश वक्तव्यों, लेखों, पत्रों और दस्तावेजों को एक जगह संकलित किया (हालांकि यह संकलन भी सम्पूर्ण नहीं है) जो 1986 में *राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली* से प्रकाशित हुआ।

इस तथ्य की चर्चा भगतसिंह के कई साथियों और इतिहासविदों ने की है कि जेल में उन्होंने चार और पुस्तकें लिखी थीं : **'आत्मकथा', 'समाजवाद का आदर्श', 'भारत में क्रान्तिकारी आंदोलन'** तथा **'मृत्यु के द्वार पर'**। दुर्भाग्यवश इनकी पाण्डुलिपियां आज उपलब्ध नहीं है और माना यही जाता है कि वे नष्ट हो चुकी हैं। हालांकि इनके गायब होने की कहानी भी रहस्यमय है और इसमें भी किसी साजिश से पूरीतरह इंकार नहीं किया जा सकता। बहरहाल, यह भारतीय इतिहास के सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण प्रसंगों में से एक है।

अब हम भगतसिंह की उस ऐतिहासिक जेल नोटबुक की चर्चा पर आते हैं जो पहली बार 1993 में **जयपुर** से **'इण्डियन बुक क्रानिकल'** से**'A Martyrs Notebook'** नाम से प्रकाशित हुई। इसका सम्पादन **भूपेन्द्र हूजा** ने किया था। इस डायरी के प्रारंभ में दी गई परिचयात्मक टिप्पणी के अनुसार, इसकी हस्तलिखित/डुप्लीकेटेड प्रतिलिपि एक पैकेट के रूप में पहली बार **जी.बी.कुमार हूजा** *(गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के तत्कालीन कुलपति)* को 1981 में गुरुकुल, इन्द्रप्रस्थ के दौरे के समय **स्वामी शक्तिवेश** से मिली थी।

पर इससे भी पहले यह डायरी 1977 में **एल.वी. मित्रोखिन** ने **फरीदाबाद** में रह रहे भगतसिंह के भाई कुलबीर सिंह के पास देखी थी और उसका विस्तृत अध्ययन करके एक लेख लिखा था, जो 1981 में अंग्रेजी में प्रकाशित उनकी पुस्तक **'Lenin & India'** में एक अध्याय के रूप में शामिल किया गया। पुन: 1990 में इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी **प्रगति प्रकाशन, मास्को** से **'लेनिन और भारत'** नाम से प्रकाशित हुआ।

अब तक इस डायरी के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी को हम यहां सिलसिलेवार प्रस्तुत कर रहे हैं।

1968 में भारतीय इतिहासकार **जी.देवल** ने **'पीपुल्स पाथ'** पत्रिका में भगतसिंह पर एक लेख लिखा था जिसमें 200 पन्नों की एक कापी का जिक्र किया गया है। उक्त कापी में पूंजीवाद, समाजवाद, राज्य की उत्पत्ति, मार्क्सवाद, कम्युनिज्म, धर्म, दर्शन, क्रान्तियों के इतिहास आदि पर विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन के दौरान भगतसिंह द्वारा जेल में लिये गये नोट्स हैं। यह नोटबुक भगतसिंह की फांसी के बाद उनके परिवार वालों को सौंप दी गई थी। देवल ने इसे फरीदाबाद में रह रहे भगतसिंह के छोटे भाई कुलबीर सिंह के पास देखा था और अध्ययन करके नोट्स लिये थे। अपने लेख में देवल ने इस बात पर जोर दिया कि यह डायरी प्रकाशित की जानी चाहिए, पर ऐसा हुआ नहीं।

उक्त डायरी की जानकारी होने पर 1977 में रूसी विद्वान मित्रोखिन भारत आये और कुलबीर सिंह के हवाले से उक्त डायरी के विस्तृत अध्ययन के बाद एक लेख लिखा (जो हम इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं - संपादक) जो उनकी पुस्तक **'Lenin & India'** का एक अध्याय बना।

हमें उपलब्ध जानकारी के अनुसार, 1979 के बाद इतिहास के कई शोधार्थियों ने 404 पृष्ठों की उक्त जेल नोटबुक की एक फोटो प्रतिलिपि तीन मूर्ति भवन स्थित **जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम व लायब्रेरी** में भी देखी-पढ़ी। पर इसपर अलग से कोई शोध निबंध कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ।

गुरुकुल कांगड़ी के तत्कालीन कुलपति **जी.बी. कुमार हूजा** 1981 में **गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ** (दिल्ली से 20 कि.मी. दक्षिण तुगलकाबाद रेलवे स्टेशन के निकट) के दौरे पर गये थे। वहां संस्था के तत्कालीन मुख्य अधिष्ठाता **स्वामी शक्तिवेश** ने गुरुकुल के 'हाल ऑफ फेम' के तहखाने में सुरक्षित इस ऐतिहासिक धरोहर की एक हस्तलिखित/डुप्लीकेटेड प्रतिलिपि दिखलाई, जिसे जी.बी. कुमार हूजा ने कुछ दिनों के लिए मांग लिया। बाद में स्वामी शक्तिवेश की हत्या हो गई और उक्त डायरी (प्रतिलिपि) हूजाजी के पास ही रह गई।

1989 में भगतसिंह की शहादत के दिन 23 मार्च को जयपुर में कुछ बुद्धिजीवियों ने **'हिन्दोस्तानी मंच'** का गठन किया। उसी की प्रारंभिक बैठकों में जी.बी.कुमार हूजा ने भगतसिंह की जेल डायरी की जानकारी दी और 'हिन्दोस्तानी मंच' ने इसे प्रकाशित करने का निश्चय किया।

'इण्डियन बुक क्रानिकल' पत्रिका (जयपुर) के सम्पादक **भूपेन्द्र हूजा** को इस परियोजना के सम्पादन की जिम्मेदारी दी गई और 'हिन्दोस्तानी मंच' के महासचिव **सरदार ओबेराय, प्रो. आर.पी.भटनागर** और **डा. आर. सी. भारतीय** ने उनके सहयोगी की भूमिका निभाई। दुर्भाग्यवश, अर्थाभाव के कारण यह योजना खटाई में पड़ गई।

इसी दौरान डा. आर.सी. भारतीय को उक्त जेल नोटबुक की एक और टाइप की हुई प्रतिलिपि प्राप्त हुई जो एक स्थानीय विद्वान **डा. प्रकाश चतुर्वेदी** मास्को अभिलेखागार से फोटो-प्रतिलिपि कराकर लाये थे। 'मास्को प्रति' और 'गुरुकुल प्रति' शब्दश: एक-दूसरे से मिल रहे थे।

1991 में भूपेन्द्र हूजा ने नोटबुक को किश्तों में अपनी पत्रिका 'इण्डियन बुक क्रानिकल' में प्रकाशित करना शुरू किया। भगतसिंह की जेल नोटबुक इस रूप में पहली बार व्यापक पाठक समुदाय तक पहुंची। डा. चमनलाल ने भी भूपेन्द्र हूजा को सूचित किया कि उक्त नोटबुक की एक प्रतिलिपि उन्होंने भी नेहरू म्यूजियम लायब्रेरी, नई दिल्ली में देखी थी।

इसतरह भूपेन्द्र हूजा व उनके सहयोगियों की नजर में उक्त जेल नोटबुक की आधिकारिकता और अधिक पुष्ट हुई। पहली बार 1994 में उक्त जेल नोटबुक 'इण्डियन बुक क्रानिकल' की ओर से ही भूपेन्द्र हूजा और जी.बी. कुमार हूजा (बलभद्र भारती) की भूमिकाओं के साथ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। उक्त दोनों भूमिकाओं से भी स्पष्ट है कि जी.बी.कुमार हूजा और भूपेन्द्र हूजा को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि उक्त डायरी की मूल प्रति भगतसिंह के भाई कुलबीर सिंह के पास फरीदाबाद में भी मौजूद है। उन्हें जी. देवल के उस लेख की भी संभवत: जानकारी नहीं थी जिन्होंने सबसे पहले 1968 में यह तथ्य उद्घाटित किया था, न ही उन्हें मित्रोखिन का वह लेख (1981) ही मिला था जो उक्त डायरी के विशद अध्ययन के बाद लिखा गया था।

बहरहाल, मित्रोखिन ने कुलबीर सिंह के पास उपलब्ध नोटबुक/डायरी से लिये गये हवालों पर जो पृष्ठ अंकित किये हैं, उन्हें देखने से स्पष्ट हो जाता है कि जी.बी. कुमार हूजा को प्राप्त 'गुरुकुल टेक्स्ट' उक्त मूल डायरी की ही डुप्लीकेट/हस्तलिखित प्रतिलिपि है।

ऐसा संभव है कि डा. प्रकाश चतुर्वेदी ने डायरी/नोटबुक की जो प्रतिलिपि मास्को अभिलेखागार में देखी थी, वह मित्रोखिन ही भारत से ले गये हों। या यह भी हो सकता है कि किसी और रूसी विद्वान ने भी डायरी का अध्ययन किया हो।

बहरहाल, इन तथ्यों से डायरी की आधिकारिकता ही और अधिक पुष्ट होती है।

'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' पुस्तक के सम्पादक-द्वय **जगमोहन सिंह** और **चमनलाल** ने भी पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका (23 मार्च '89) में लिखा है : *''भगतसिंह की जेल में लिखित 404 पृष्ठों की डायरी, जिसमें महत्वपूर्ण राजनीतिक व दार्शनिक नोट्स हैं, अब भी सामान्य पाठकों की पहुंच से बाहर है, हालांकि इसकी फोटो प्रति तीन मूर्ति स्थित जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल म्यूजियम व लायब्रेरी में सुरक्षित है। इस पर क्या कहा जा सकता है, पाठक स्वयं ही सोचें।''*

इस टिप्पणी से ऐसा लगता है कि जगमोहन सिंह और चमनलाल को भी यह तथ्य ज्ञात नहीं था कि भगतसिंह की मूल जेल नोटबुक उनके भाई कुलबीर सिंह के पास मौजूद है, जिसका अध्ययन 1968 में जी.देवल ने और 1977 में मित्रोखिन ने किया था। यह विशेष आश्चर्य की बात इसलिए भी है क्योंकि जगमोहन सिंह भी स्वयं भगतसिंह के परिवार के सदस्य हैं। वे भगतसिंह की बहन **बीबी अमर कौर** के पुत्र हैं। भगतसिंह के दूसरे भाई **कुलतार सिंह** की पुत्री **वीरेन्द्र सिंधू** ने भी भगतसिंह पर दो पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने भी इसका उल्लेख नहीं किया है कि भगतसिंह की जेल नोटबुक उनके परिवार के ही एक सदस्य के पास मौजूद है। यदि इन परिवार-जनों को भी यह तथ्य नहीं पता था तो इस बारे में हमें कुछ नहीं कहना। न ही इसकी अन्तर्कथा को जानने में हमारी कोई रुचि है।

यह सवाल हम यहां इसलिए उठा रहे हैं कि यह भारत में इतिहास की एक गंभीर समस्या है। आज़ाद भारत की कांग्रेसी सरकार ही नहीं, किसी भी पूंजीवादी संसदमार्गी दल से हम यह अपेक्षा नहीं रखते कि उनकी सरकारें भगतसिंह के विचारों को जनता तक पहुंचाने का काम करेंगी। उनका बस चलता तो वे भगतसिंह की स्मृति तक को दफ़्न कर देतीं। पर यह उनके बस के बाहर की बात है।

लेकिन शहीदे-आजम भगतसिंह के परिवार-जनों का उनकी वैचारिक विरासत के बारे में जो रुख रहा, उसके बारे में क्या कहा जाये? सीधा सवाल यह है कि कुलबीर सिंह के पास यदि भगतसिंह की जेल नोटबुक मौजूद थी, तो उन्होंने उसे भारतीय जनता तक पहुंचाने के लिए क्या कोशिश की? उन्होंने अखबारों में, इतिहासकारों को पत्र लिखकर इसे छपाने और जनता तक पहुंचाने की कोई कोशिश क्यों नहीं की? क्या इसे प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक नहीं मिलते? या जनता से स्रोत-संसाधन नहीं जुटते? हमारी जानकारी के अनुसार, शहीदे-आजम के परिवार के लोग स्वयं भी इतने विपन्न नहीं हैं। उन्हें यदि भगतसिंह के आदर्शों से प्यार होता और उनके विचारों को जन-जन तक पहुंचाने की चिन्ता होती तो वे उक्त डायरी स्वयं छपवा सकते थे। आश्चर्य तो तब होता है जब लगता है कि जेल नोटबुक के कुलबीर सिंह के पास उपलब्ध होने का तथ्य स्वयं जगमोहन सिंह या वीरेन्द्र सिंधू को ही नहीं पता था। क्या यह एक शर्मनाक विडम्बना नहीं है कि भगतसिंह की जेल नोटबुक पर आधारित पहला विस्तृत शोध-निबंध 1981 में एक रूसी विद्वान मित्रोखिन की पुस्तक में संकलित होकर सामने आया? वैसे इस काहिली और गैरजिम्मेदारी के लिए उन इतिहासकारों को भी माफ नहीं किया जा सकता जो इतिहास को केवल प्रोफेसरी का जरिया बनाये हुए हैं और इतिहास की बहुमूल्य विरासत को भी जनता तक पहुंचाने की जिन्हें रत्ती भर चिन्ता नहीं है। और भला क्यों हो? वे इतिहास पढ़ाने वाले मुदर्रिस हैं, इतिहास बनाने से उनका भला क्या सरोकार?

जहां तक भगतसिंह के परिवार के उन सदस्यों का सवाल है, जिन्होंने आजादी के इतने वर्षों बाद तक इतिहास की एक बहुमूल्य धरोहर को पारिवारिक सम्पत्ति की तरह दाबे रक्खा और उसे जनता तक पहुंचाने की कोई कोशिश नहीं की; वे भी अपनी इस करनी के चलते इतिहास में अपना नाम दर्ज करा चुके हैं। वैसे हमारे देश में यह कोई नई बात नहीं हैं। क्रान्तिकारी राजनीति और साहित्य में ऐसे कई उदाहरण हैं कि महान विभूतियों के रक्त-सम्बन्धी उत्तराधिकारी उनसे जुड़े होने के नाते इज्जत तो खूब पा रहे हैं पर उनके आदर्शों और सपनों से उन्हें कुछ भी नहीं लेना-देना। उनकी रुचि या तो सम्मान-प्रतिष्ठा-सुविधा में है या फिर रायल्टी की मोटी रकम में। भगतसिंह हों या राहुल सांकृत्यायन, उनका कृतित्व आज पूरे राष्ट्र की, पूरी जनता की या उनके वैचारिक उत्तराधिकारियों की धरोहर न बनकर परिवार-जनों की निजी सम्पत्ति बन गई है। क्रान्तिकारियों के तमाम बेटे-भतीजे-भांजे आज क्रान्तिकारियों के रक्त-सम्बन्धी होने के नाते स्वाभाविक तौर पर जनता से इज्जत पाते हैं और सीना फुलाते हैं। पर उन्हें इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं कि क्या उन क्रान्तिकारियों के सपने पूरे हुए? इसके विपरीत वे उसी सत्ता से सुविधाएं लेने और उन्हीं राजनीतिक दलों की राजनीति करने तक का काम करते हैं, जिन्होंने क्रान्तिकारियों के सपनों के साथ विश्वासघात किया। क्रान्तिकारियों के ऐसे वारिस भी क्या अपने महान पूर्वजों के आदर्शों का व्यापार नहीं कर रहे हैं?

बहरहाल, 1994 में भूपेन्द्र हूजा और उनके साथियों ने भगतसिंह की जेल नोटबुक का मूल अंग्रेजी संस्करण छापकर भारत की जनता और क्रान्तिकारी आंदोलन के लिए जो उपयोगी कार्य किया उसे कभी भी भुलाया नहीं सकता। यह और भी खुशी की बात है कि इसी वर्ष जेल नोटबुक का हिन्दी अनुवाद भी **परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ** से प्रकाशित होने वाला है।

आम जनता को इतिहास की बहुमूल्य धरोहर से परिचित कराने के महत्वपूर्ण कार्यभारों में से यह भी एक है कि भगतसिंह की जेल नोटबुक और उनके तथा उनके साथियों के सभी दस्तावेजों को सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित करके जन-जन तक पहुंचाया जाये।

भगतसिंह की जेल नोट-बुक स्कूली कापी की सामान्य साइज (17.50 से.मी.X21 से.मी) की पुस्तिका है। नोटबुक खोलते ही पहले पेज (टाइटिल पेज) पर अंग्रेजी में लिखा है: "**भगतसिंह के लिए/चार सौ चार (404) पृष्ठ...**" नीचे एक हस्ताक्षर है और 12.9.29 की तिथि दी गई है। स्पष्ट है कि यह प्रविष्टि जेल अधिकारियों द्वारा भगतसिंह को कापी देते समय की गई है। जेल मैनुअल/नियमावली के जानकार जानते होंगे कि जब भी कोई कैदी लिखने के लिए कापी मांगता है कि जेल अधिकारी को कापी के शुरू और अंत में ऐसा लिखना होता है और कैदी को भी प्राप्त करते समय वहां हस्ताक्षर करना होता है। भगतसिंह का हस्ताक्षर (अंग्रेजी में) टाइटिल पेज पर भी मौजूद है और 12.9.29 की तिथि के साथ कापी के अंत में भी। नोटबुक की जो डुप्लीकेटेड/ हस्तलिखित प्रतिलिपि जे. बी.कुमार हूजा को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में मिली, उसमें नीचे बांये कोने पर अंग्रेजी में यह भी लिखा हुआ था : **प्रतिलिपि शहीद भगतसिंह के भतीजे अभय कुमार सिंह द्वारा तैयार।**"

मूल नोटबुक के पृष्ठ भगतसिंह की छोटे अक्षरों वाली लिखाई से भरे हुए हैं। ज्यादा नोट्स अंग्रेजी में लिये गये हैं, लेकिन कहीं-कहीं उर्दू का भी इस्तेमाल किया गया है। ●

A MARTYR'S NOTEBOOK

Edited &Presented by
Bhupendra Hooja
Published by
Indian Book Chronicle, Jaipur
1994 **Rs. 220/-**

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक

हिन्दी में शीघ्र प्रकाश्य

अनुवाद व सम्पादन : **विश्वनाथ मिश्र**

इतिहासविदों के कुछ महत्वपूर्ण लेखों के साथ

परिकल्पना प्रकाशन
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ

मूल्य :
पेपरबैक–रु. 100, सजिल्द–रु. 225

एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य : भगतसिंह की जेल नोटबुक

○ एल. वी. मित्रोखिन

रूसी इतिहासकार **मित्रोखिन** का यह लेख भगतसिंह की दुर्लभ जेल नोटबुक के अध्ययन पर आधारित पहला शोध-निबन्ध है। यह 1981 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'Lenin and India' में एक अध्याय के रूप में शामिल किया गया था। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी 1990 में प्रकाशित हो चुका है। पर इतिहासकारों और सुधी पाठकों का ध्यान अभी तक इस लेख की ओर बहुत कम गया है। शहीदेआजम की जेल नोटबुक के इस गंभीर अध्ययन को हम यहां पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। इस लेख को **इसी अंक में प्रकाशित आलोक रंजन** के लेख के साथ पढ़ा जाना चाहिए। - सं.

●

अक्टूबर, 1967 में एक वयोवृद्ध भारतीय क्रान्तिकारी **विजय कुमार सिन्हा** से मेरी भेंट हुई। 1929 में अंग्रेज सरकार ने उन्हें उस मुकदमे में सजा दिलवायी थी, जो इतिहास में लाहौर षड्यंत्र केस के नाम से जाना जाता है। उन दिनों की घटनाओं को याद करते हुए श्री सिन्हा ने महान भारतीय क्रान्तिकारी **भगतसिंह** के बारे में बताया, जो फांसी के तख्ते पर चढ़ने से कुछ घंटे पहले लेनिन की जीवनी पढ़ते रहे थे।

कैसा अनुपम इच्छा-बल था उस वीर का! उन अकथनीय परिस्थितियों में, फांसी से पहले एक पुस्तक पढ़ना! परन्तु लेनिन के व्यक्तित्व का प्रभाव इतना प्रबल था कि सुदूर औपनिवेशिक भारत में मृत्युदण्ड प्राप्त कैदी उनके जीवन का वर्णन करने वाली पंक्तियों को यों पढ़ते थे, मानो जीवनदायी स्रोत से घूंट भर रहे हों।

...सुबह का वक्त था। इस दिन भगतसिंह तेईस वर्ष, पांच महीने और छब्बीस दिन के हुए थे। लाहौर का एक अखबार देखते हुए भगतसिंह की नजर हाल ही में छपी लेनिन की जीवनी के बारे में एक लेख पर पड़ी।

लेनिन पर एक किताब.... वह हर हालत में उसे पढ़ना चाहते थे। भगतसिंह जानते थे कि औपनिवेशिक "न्यायालय" अपना फैसला सुना चुका है और उन्हें फांसी मिलकर रहेगी। ये ऐसे क्षण होते हैं, जब आदमी की सबसे बड़ी इच्छा होती है कि अपने प्रियजनों के अन्तिम दर्शन पा ले।

'युगदृष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' पुस्तक में भगतसिंह की भतीजी **वीरेन्द्र संधु** ने उनके अन्तिम दिनों का वर्णन इस प्रकार किया है। वह लिखती हैं : "भगतसिंह के लिए लेनिन से अधिक करीबी और कौन था? वह अपने मृत्यु से पहले उनसे मिलने को उत्सुक थे और उनके लिए लेनिन की जीवनी पढ़ने का अर्थ लेनिन से मिलना था।"

एक विलक्षण क्रान्तिकारी और भारत के राष्ट्रीय नायक भगतसिंह का जीवन, जिन्हें ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने 1931 में फांसी दे दी, एक वीर का जीवन था। भारत के अलावा उनके बारे में सोवियत संघ और दूसरे देशों में भी पुस्तकें लिखी गयी हैं।[1] मेरी 'लेनिन के बारे में भारत' में एक पूरा अध्याय 'वह पुस्तक, जो भगतसिंह ने पढ़ी' इस वीर के जेल के जीवन को समर्पित है।[2]

और अब दस साल बाद मुझे नये दस्तावेजों के होने का पता चला, जो भगतसिंह के भाई कुलबीर सिंह ने कृपापूर्वक मुझे दिखाये। उनका सारा परिवार अपने रिश्तेदार से, जिसे नेहरू ने भारतीय लोगों के स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक कहा था, सम्बन्धित सभी दस्तावेज जमा करता और संभालकर रखता है। इन दस्तावेजों से इस बात पर नया प्रकाश पड़ता है कि किस प्रकार भगतसिंह एक आतंकवादी से विकसित होते हुए एक आस्थावान मार्क्सवादी बने। इनसे उनके साथियों पर भगतसिंह के प्रभाव तथा उनके विचारधारात्मक विकास में भगतसिंह की भूमिका का पता चलता है।

ये दस्तावेज हैं भगतसिंह की जेल डायरी, उन्होंने जो पुस्तकें पढ़ीं, उनके सारांश और उद्धरण। इनके अस्तित्व का ज्ञान भारतीय पत्र-पत्रिकाओं से हुआ। 1968 में भारतीय इतिहासकार जी. देवल ने 'पीपुल्स पाथ' पत्रिका के लिए 'शहीद भगतसिंह' लेख लिखा, जिसमें उन्होंने 200 पृष्ठों की एक कापी का जिक्र किया और बताया कि उसमें अनेक विषयों पर भगतसिंह के नोट हैं, जिनसे उनकी रुचि की व्यापकता का पता चलता है। कापी में पूंजीवाद, समाजवाद, राज्य की उत्पत्ति, कम्युनिज्म, धर्म, समाजविज्ञान, भारत, फ्रांस की क्रान्ति, मार्क्सवाद, सरकार के रूपों, परिवार और अंतरराष्ट्रीयतावाद पर नोट हैं। देवल ने ये नोट पढ़े और इस बात पर जोर दिया कि इन्हें प्रकाशित किया जाना चाहिए, हालांकि उनकी यह इच्छा अभी तक साकार नहीं हो पायी है।

यह कापी, जिसके बारे में श्री देवल ने लिखा, क्रान्तिकारी के दूसरे कागजात के साथ जेल अधिकारियों ने 23 मार्च, 1931 को भगतसिंह को फांसी देने के बाद उनके परिवारवालों को सौंप दी और अब फरीदाबाद में रह रहे उनके भाई कुलबीर सिंह के पास है।

इन दस्तावेजों की प्रामाणिकता को न केवल इस तथ्य से पुष्टि होती है कि वे क्रान्तिकारी के परिवार में सुरक्षित रखे गये हैं; कापी के पृष्ठ भगतसिंह की छोटे अक्षरों की लिखाई से भरे हुए हैं, वह अंग्रेजी में लिखते थे, कहीं-कहीं उर्दू का भी इस्तेमाल उन्होंने किया। पृष्ठ 68 पर तिथि अंकित है : 12.7.1930 और हस्ताक्षर हैं : 'भगतसिंह'।

1. अ. व. राइकोव, 'भगतसिंह और उनकी विचारधारात्मक धरोहर', 'नरोदी आज़ीइ ई आफ्रीकी' ('एशिया और अफ्रीका के जनगण'), अंक 1, 1971 (रूसी में)।

2. ल.व. मित्रोखिन, 'लेनिन के बारे में भारत', 'नाऊका' ('विज्ञान') प्रकाशन, मास्को, 1971, पृ. 124-130 (रूसी में)।

ये दस्तावेज युवा क्रान्तिकारी के समृद्ध आत्मिक जीवन पर, आत्म शिक्षा के लिए उनके घोर परिश्रम तथा जेल में कैद के दौरान उनकी विचारधारात्मक खोज पर प्रकाश डालते हैं। इन कागजों को सरसरी तौर पर देखने पर भी यह पता चलता है कि इनका लेखक प्रखर बुद्धि का धनी व्यक्ति था, जो सोचने के आदतन ढंग को त्यागने में सफल रहा और जिसने प्रगतिशील पश्चिमी चिन्तकों के विचारों को आत्मसात किया। इन नोटों में मार्क्सवाद में भगतसिंह की रुचि ही शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उनके दृष्टिकोणों के इस पहलू को ही भारत और दूसरे देशों के बुर्जुआ इतिहासकार छिपाने का यत्न करते हैं। अमेरिकी इतिहासकारों जी.डी. ओवरस्ट्रीट और एम. विंडमिलर का दावा है कि "ज्यादातर इस सम्बन्ध के आधार पर ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भगतसिंह को पार्टी का हीरो दिखाने की कोशिश की है।"[3]

भगतसिंह के नोट, जो उन्होंने संक्षिप्त, सारगर्भित शीर्षकों के साथ लिखे, उनकी व्यक्तिगत भावनाओं को भी प्रतिबिम्बित करते हैं। वह आजादी के लिए तड़प रहे थे, इसीलिए उन्होंने बायरन, व्हिट्मैन और वर्ड्सवर्थ की स्वतंत्रता के विषय पर पंक्तियां अपनी कापी में उतारीं। उन्होंने इब्सन के नाटक, दोस्तोयेव्स्की का 'अपराध और दंड' और ह्यूगो का 'पददलित' उपन्यास पढ़े। रूसी क्रान्तिकारी वेरा फिग्नर तथा रूसी विद्वान और क्रान्तिकारी न. मोरोजोव की रचनाओं से जेल जीवन की कठिनाइयों के जो उद्धरण उतारे, वे उनकी मनोभावनाओं के अनुरूप थे। उमर खय्याम की पंक्तियां भी थीं, जो यह दिखाती हैं कि किस प्रकार भगतसिंह ने जीवन और मृत्यु के प्रश्नों पर मनन किया, जबकि वे औपनिवेशिक अदालत के फैसले की प्रतीक्षा कर रहे थे। भगतसिंह ने अपने को मुकदमे के लिए तैयार करने के उद्देश्य से कानून का भी अध्ययन किया।

जेल में पुस्तकें भगतसिंह की चिंता का प्रमुख विषय थीं। जुलाई, 1930 में उन्होंने अपने मित्र जयदेव गुप्ता को लिखा : "कृपया लाहौर के द्वारकादास पुस्तकालय के लाइब्रेरियन से पूछना कि बोर्स्टल जेल में कैदियों को किताबें भेजी गयी हैं या नहीं। उन्हें किताबों की बहुत तंगी है। उन्होंने सुखदेव के भाई जयदेव के हाथ सूची भेजी थी, मगर किताबें उन्हें नहीं मिलीं। अगर सूची खो गयी है, तो जरा लाला फिरोज चंद से विनती करना कि उसके बदले अपनी पसन्द से कुछ रोचक पुस्तकें भेज दें। इस इतवार को उन्हें किताबें मिल जानी चाहिए थीं। कृपया विनती करना कि किताबें जरूर भेज दें।"

16 सितम्बर, 1930 को उन्होंने दुखी मन से अपने भाई कुलबीर सिंह को लिखा कि फैसला सुनाये जाने तक उनसे मिलने कोई नहीं आ सकता : "इसलिए मेरी विनती है कि तुम खान साहब के दफ्तर जाना और वहां से मेरी किताबें और दूसरी जो चीजें मैंने वहां छोड़ी हैं, ले लेना। मुझे लाइब्रेरी की पुस्तकों की बड़ी चिन्ता है। फिलहाल मेरे लिए कोई किताबें लाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मेरे पास अभी कुछ हैं। अच्छा हो, अगर तुम लाइब्रेरी से उन किताबों की सूची मांग लो, जो मैंने वहां से निकलवायी थीं।"

क्रान्तिकारी जे. सान्याल ने, जो कुछ समय तक भगतसिंह के साथ जेल में रहे थे, इस बात पर जोर दिया है कि वह बड़े ध्यान से पढ़ने के लिए पुस्तकें चुनते थे, डिकंस, सिंक्लेयर, वाइल्ड और गोर्की उन्हें अधिक पसन्द थे।[4]

जेल में उन्होंने जिस राजनीतिक और वैज्ञानिक साहित्य की मांग की, उससे उनकी रुचियों का पता चलता है। जुलाई, 1930 में उन्होंने 'दूसरे इण्टरनेशनल का पतन' और "वामपंथी" कम्युनिज्म' ("वामपंथी' कम्युनिज्म —एक बचकाना मर्ज'—प्रत्यक्षत: ये दोनों पुस्तकें लेनिन की थीं), प. क्रोपोत्किन की 'परस्पर सहायता' तथा मार्क्स की 'फ्रांस में गृहयुद्ध' रचनाएं मंगवायीं।

भगतसिंह के कुछ नोट उनकी जीवनी का आदर्शवाक्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिकी समाजवादी यूजीन वी. डेब्स का निम्न कथन : "जब तक निम्न वर्ग है, मैं उसमें हूं। जब तक कोई अपराधी तत्व है, मैं उसमें हूं। जब तक कोई जेल में है, मैं स्वतंत्र नहीं हूं" (भगतसिंह की डायरी का पृष्ठ 21। आगे उनकी डायरी की पंक्तियों के बाद उसका पृष्ठ इंगित किया है)। पृ. 29 पर उन्होंने लिखा : "निरर्थक घृणा की खातिर नहीं, सम्मान, यश और आत्मश्लाघा की खातिर नहीं, बल्कि अपने ध्येय की कीर्ति की खातिर तुमने ऐसा कुछ किया है, जो कभी भुलाया नहीं जायेगा।"

स्वतंत्रता के लिए संघर्ष और दूसरों के लिए आत्मबलिदान के विचार हम उनकी डायरी के हर पृष्ठ पर पाते हैं। पृ. 23 पर भगतसिंह ने टॉमस जैफरसन[5] के ये प्रसिद्ध शब्द लिखे : "आजादी के पेड़ को समय-समय पर देशभक्तों और तानाशाहों के खून से ताजा किया जाना चाहिए। यह कुदरती खाद है।" इतिहास, दर्शन और अर्थशास्त्र के विभिन्न विद्वानों की पुस्तकों से जो उद्धरण भगतसिंह ने अपनी डायरी में उतारे, वे अत्यन्त रोचक हैं। कहना न होगा कि जेल के हालात में वह कोई सुव्यवस्थित अध्ययन नहीं कर सकते थे, उनके लिए तो बाहर से किताबें पाना तक मुश्किल था। उनके नोट पढ़ते हुए एक बात की ओर ध्यान जाता है : उन्होंने ठेठ भारतीय समस्याओं की ओर कहीं कम ध्यान दिया। केवल कुछेक बार ही लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल और मदन मोहन मालवीय जैसे स्वतंत्रता सेनानियों का उल्लेख किया। एक ब्रिटिश लेखक की पुस्तक में से उन्होंने महात्मा गांधी का केवल एक उद्धरण उतारा। वर्षों तक अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण की विधियों का विश्लेषण और औपनिवेशिक राज्यतंत्र के निरंकुश उपायों का भंडाफोड़ भारतीय देशभक्तों के अध्ययन का परम्परागत विषय रहा था। भगतसिंह ने केवल दो-तीन बार इसका जिक्र किया है, शायद यह मानते हुए कि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, कि औपनिवेशिक दासता से उनके देश को मुक्त कराने की आवश्यकता सबके लिए स्पष्ट और प्रमाणित बात हो गयी है। उस समय उनका ध्यान समाज के विकास की आम समस्याओं में अधिक था, सो वह भारतीय चिन्तकों की अपेक्षा पश्चिमी चिन्तकों की ओर अधिक उन्मुख हुए। जहां उनके पूर्ववर्ती—राष्ट्रीय क्रान्तिकारी—भारत को ही विश्व के अन्तरविरोधों का केन्द्र मानते थे, वहीं भगतसिंह संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी पूर्वाग्रहों से पूरी तरह ऊपर उठ गये थे और यह मानते थे कि भारत की समस्याएं विश्व के विकास की परिधि में ही हल की जा सकती हैं।

जिन लेखकों के उद्धरण भगतसिंह ने अपनी डायरी में उतारे, उनके प्रति उनके रुख में पूरी सुसंगति है। शुरू में वह 18वीं सदी की अमेरिकी और फ्रांसिसी क्रान्तियों तथा विचारकों के प्रति भारतीय क्रान्तिकारियों का परम्परागत लगाव दर्शाते हैं। उन्होंने रूसो[6], टॉमस पेन[7], टॉमस जैफरसन और पैट्रिक हेनरी[8] के स्वतंत्रता तथा मानव के

3. M. Windmiller and G.D. Overstreet, Communism in India, Berkley, 1959, p. 240

4. J. Sanyal, Sardar Bhagat Singh, Lahore, 1930, p. 104

सान्याल की पुस्तक पर औपनिवेशिक अधिकारियों ने प्रतिबंध लगा दिया था। उल्लेखनीय है कि भगतसिंह और उनके साथियों के बारे में पुस्तकों, कविताओं और उनकी रक्षा की अपीलों का निषिद्ध साहित्य की सूची में विशेष स्थान था। अमरीकी शोधकर्ता एन. जेरल्ड बैरियर की पुस्तक में सोलह ऐसे प्रकाशन गिनाये गये हैं (देखें : N. Gerald Barrier, Banned Controversial Literature and Political Control in British India, 1907-1947, pp. 224-225)

5. टॉमस जैफरसन (1743-1828)—अमरीकी राजनेता, 1801-1809 में संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति।

जन्मसिद्ध अधिकारों पर विचार नोट किये। पृ. 16 पर उन्होंने पैट्रिक हैनरी का निम्न भावपूर्ण कथन नोट किया : ''क्या जिन्दगी इतनी प्यारी और चैन इतना मीठा है कि बेड़ियों और दासता की कीमत पर उन्हें खरीदा जाये। क्षमा करो, सर्वशक्तिमान प्रभु! मैं नहीं जानता कि वे क्या रास्ता अपनायेंगे, मुझे तो बस : 'स्वतंत्रता या मौत' दो।''

तानाशाही की भर्त्सना करने के लिए भगतसिंह दर्शन की रचनाओं का ही नहीं, ललित साहित्य का भी सहारा लेते हैं। मार्क ट्वेन के निम्न शब्द उन्होंने अपनी डायरी में उतारे : ''हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि लोगों की गर्दनें उड़ायी जाती हैं, लेकिन हमें यह देखना नहीं सिखाया गया है कि जिन्दगी भर लम्बी वह मौत कितनी भयानक है, जो गरीबी और तानाशाही पूरी आबादी पर लादती है।''

पूंजीवादी विकास के नियमों को समझने के भगतसिंह के प्रयासों को प्रदर्शित करती भी बहुत सारी सामग्री है। उन्होंने इस विषय को गम्भीरता से लिया और सांख्यिक सामग्रियों का अध्ययन किया। ज्वलंत सामाजिक अन्तरविरोधों को दिखाते आंकड़ों की ओर उन्होंने सबसे पहले ध्यान दिया। विभिन्न लेखकों से जो उद्धरण उन्होंने लिये, वे संक्षिप्त, किन्तु प्रभावोत्पादक हैं। उदाहरण के लिए, वह लिखते हैं कि ब्रिटेन की आबादी का नौवां हिस्सा वहां के आधे उत्पाद को हथियाता है और इस उत्पाद का केवल सातवां हिस्सा दो तिहाई आबादी के हिस्से में आता है; कि अमेरिका की आबादी का एक प्रतिशत से कम अंश वह धनिक वर्ग है, जिसके पास 67 अरब डालर तक की सम्पत्ति है, जबकि 70 प्रतिशत आबादी सर्वहाराओं की है, जो राष्ट्रीय उत्पाद के केवल चार प्रतिशत पर दावा कर सकती है।

बहुत से उद्धरण यह दिखाते हैं कि श्रमिकों के प्रति उनके मन में गहरी सद्भावना थी और पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति उनका रुख आलोचनात्मक था। उदाहरणत: , फूरिये का एक उद्धरण उन्होंने नोट किया और उसका शीर्षक रखा : 'सबके खिलाफ अकेला' : ''वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एक बेहूदा कार्यतंत्र है, जिसमें समग्र के अंश एक दूसरे के विपरीत हैं और समग्र के खिलाफ काम करते हैं। हम देखते हैं कि समाज में प्रत्येक वर्ग अपने स्वार्थ के कारण दूसरे वर्गों का अहित चाहता है, हर तरह से व्यक्तिगत हित को जन कल्याण के खिलाफ रखता है'' (और आगे यह लिखते हैं कि डाक्टर का स्वार्थ यह है कि समाज में ज्यादा से ज्यादा रोग हों, वकील ज्यादा से ज्यादा मुकदमे चाहता है, वास्तुकार और बढ़ई चाहते हैं कि मकान जलें, इत्यादि)। इसी भावना में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जापानी विद्यार्थियों के समक्ष उस भाषण का उद्धरण है, जिसमें ठाकुर ने जापान में पैसे के पीछे दौड़ को ''मानवजाति के लिए भयानक खतरा'' बताया, जो ''शक्ति के आदर्श को परिष्कार के ऊपर रखती है''।

ये सभी उद्धरण दिखाते हैं कि भगतसिंह पूंजीवाद को अस्वीकार करते हैं। इसीलिए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला : ''सवाल यह नहीं है कि वर्तमान सभ्यता को बदला जाना चाहिए या नहीं, बल्कि यह कि उसे कैसे बदला जायेगा।''

भगतसिंह ने पूंजीवाद की आलोचना सामाजिक और राजकीय, दोनों व्यवस्थाओं के प्रसंग में की। पृ. 46 पर लेनिन का नाम पहली बार आया है। यहां भगतसिंह ने अमेरिकी समाजवादी मारिस हिलक्वीट की पुस्तक 'मार्क्स से लेनिन तक' से बुर्जुआ लोकतंत्र के सीमित स्वरूप पर उद्धरण लिया : ''पूंजीवाद में लोकतंत्र एक सार्विक अमूल लोकतंत्र नहीं था, बल्कि विशिष्ट बुर्जुआ लोकतंत्र, या जैसा कि लेनिन ने इसे कहा था, बुर्जुआ वर्ग के लिए लोकतंत्र।'' आगे वह लिखते हैं : ''लोकतंत्र सिद्धांततः राजनीतिक और कानूनी समानता की व्यवस्था है, किन्तु ठोस और व्यावहारिक रूप में यह झूठ है, क्योंकि जब तक आर्थिक सत्ता में भारी असमानता है, तब तक कोई समानता नहीं हो सकती, न राजनीति में और न ही कानून के सामने।... पूंजीवादी शासन में लोकतंत्र की सारी मशीनरी शासक अल्पमत को श्रमिक बहुमत की यातनाओं के जरिये सत्ता में बनाये रखने के लिए काम करती है।''

भगतसिंह ने बुर्जुआ व्यवस्था की विचारधारात्मक संरचना की ओर भी ध्यान दिया और इस सिलसिले में बुर्जुआ समाज में धर्म की भूमिका में रुचि ली। अपने लिए वह धर्म का प्रश्न हल कर चुके थे, इस समय तक वह एक पक्के निरीश्वरवादी बन चुके थे। लेकिन उन्होंने भारतीय समाज में धर्म की भूमिका और स्थान को तथा अपने साथियों, राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों की विचारधारा पर इसके प्रभाव को समझना चाहा।

'धर्म—स्थापित व्यवस्था का समर्थक : 'दासता' शीर्षक से उन्होंने अमेरिका के प्रेसबिटेरियन चर्च की महासभा (1835) के प्रस्ताव का यह उद्धरण नोट किया कि ''दासता को बाइबिल के पुराने और नये धर्मग्रंथों में मान्यता प्राप्त है और ईश्वर की सत्ता उसकी निन्दा नहीं करती।'' भगतसिंह आगे लिखते हैं कि उसी वर्ष चार्ल्सटन बैपटिस्ट एसोसियेशन ने ''अपने दासों के समय का उपयोग करने के मालिकों के अधिकार'' की पुष्टि की। इस सिलसिले में भगतसिंह ने इस बात पर जोर दिया कि धर्म ने ''पूंजीवाद का समर्थन'' किया है।

धर्म की उत्पत्ति के कारणों और उसके मर्म को समझने की चेष्टा में वह मार्क्स की ओर उन्मुख हुए। पृ. 40 पर हम मार्क्स की रचना 'हेगल के न्याय-दर्शन की समालोचना का प्रयास' से 'धर्म के बारे में मार्क्स के विचार' शीर्षक का एक उद्धरण पाते हैं :''...मनुष्य धर्म की रचना करता है, धर्म मनुष्य की रचना नहीं करता।... मनुष्य का अर्थ है मनुष्य का संसार, राज्य, समाज। यह राज्य, यह समाज धर्म को, एक विकृत विश्वदृष्टिकोण को जन्म देते हैं, क्योंकि वे स्वयं एक विकृत संसार हैं। धर्म इस संसार का सामान्य सिद्धान्त, उसका सार-संग्रह, सुबोध रूप में उसका तर्क है।... धर्म के विरुद्ध संघर्ष परोक्ष रूप से उस संसार के विरुद्ध संघर्ष है, जिसका आध्यात्मिक संतोष धर्म है।.. धर्म जनता के लिए अफीम है।'' उल्लेखनीय है कि पृ. 192 पर भगतसिंह ने अन्तिम वाक्य दोहराया है।

सो, अपने नोटों में भगतसिंह ने पूंजीवाद के उन्मूलन के पक्ष में ठोस तर्क पेश किये। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों की भांति वह भी यही मानते थे कि भावी समाज केवल समाजवादी समाज ही हो सकता है। उनके नोटों में भावी समाज का कोई विस्तृत विवरण तो नहीं है, किन्तु कुछ विचार यह दिखाते हैं कि वह समाजवाद की धारणा का वैज्ञानिक अर्थ लगाते थे। उन्होंने भावी समाज के दक्षिण-पंथी सामाजिक-जनवादियों के आदर्श को अस्वीकार किया तथा पूंजीवाद के स्थान पर समाजवाद लाने की समस्या के प्रति सामाजिक-सुधारवादी रुख को भी। उन्होंने पश्चिम के दक्षिणपंथी समाजवादियों की भर्त्सना की और आर. मैकडानल्ड को ''ब्रिटिश लेबर पार्टी का साम्राज्यवादी नेता'' कहा (पृ. 13)। पृ. 52 पर दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं द्वारा मजदूर वर्ग के ध्येय से की गई गद्दारी के बारे में हिलक्वीट की पुस्तक से एक उद्धरण है।

जेल में वह पूरी तरह पूंजीवादी व्यवस्था का तख्ता पलटने तथा सारी मानवजाति के हित में अर्थव्यवस्था और सारी प्राकृतिक संपदा पर नियंत्रण स्थापित करने की ओर लक्षित विश्व समाजवादी क्रान्ति के विचार में तल्लीन रहे। पृ. 190 पर उन्होंने लिखा : ''समाजवादी व्यवस्था : प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।'' भगतसिंह समाजवाद में संक्रमण को सर्वहारा के संघर्ष के

6. ज्यां-जॉक रूसो (1712-1778)ख्रफ्रांसीसी दार्शनिक और प्रबोधक।

7. टॉमस पेन (1737.1809)ख्रअमरीकी और ब्रिटिश सामाजिक एवं राजनीतिक नेता, प्रबोधकों के क्रांतिकारी पक्ष के प्रतिनिधि

8. पैट्रिक हेनरी (1736-1799)ख्रअमरीकी राजनीतिज्ञ और वक्ता।

साथ जोड़ते थे, जो भावी समाज में शासक वर्ग बनेगा। पृ. 69 पर 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' का एक उद्धरण है : "... मजदूर वर्ग की क्रान्ति का पहला कदम सर्वहारा वर्ग को उठाकर शासक वर्ग के आसन पर बैठाना और जनवाद के लिए होने वाली लड़ाई को जीतना है।

"सर्वहारा वर्ग अपना राजनीतिक प्रभुत्व पूंजीपति वर्ग से धीरे-धीरे कर सारी पूंजी छीनने के लिए, उत्पादन के सारे औजारों को राज्य, अर्थात शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग, के हाथों में केन्द्रीकृत करने के लिए तथा समग्र उत्पादक शक्तियों में यथाशीघ्र वृद्धि के लिए इस्तेमाल करेगा।"[9]

भगतसिंह ने यह भी इंगित किया कि यदि सर्वहारा का पथप्रदर्शन उसका हरावल दस्ता, उसकी पार्टी, जो सर्वहारा क्रान्ति का अनिवार्य उपकरण है, न कर रही हो, तो कोई क्रान्ति नहीं हो सकती। उन्होंने सर्वहारा गीत 'इन्टरनेशनल' के शब्द अपनी डायरी में उतारे।

यह तर्कसंगत ही था कि भगतसिंह क्रान्ति के आरम्भ के नाते सशस्त्र विद्रोह के प्रश्न पर पहुंचे। ऐसा विद्रोह भारतीय क्रान्तिकारियों की अनेक पीढ़ियों का लक्ष्य रहा था, परन्तु वे इसे ला पाने में सफल नहीं रहे थे। यही कारण है कि भगतसिंह ने इस विषय पर मार्क्सवादी रचनाओं में खास दिलचस्पी ली। उन्होंने एंगेल्स की रचना 'जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति' से लम्बे उद्धरण उतारे, हालांकि ऐसा उन्होंने मूल रचना से नहीं, बल्कि एक अन्य पुस्तक से किया था और इसीलिए वह इस भ्रम में रहे कि वह मार्क्स को उद्धृत कर रहे हैं : "पहली चीज-विद्रोह से तब तक खिलवाड़ न करें, जब तक आप उस खेल के परिणामों का सामना करने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं होते। विद्रोह तो एक ऐसा कलन है, जिसके परिमाण सर्वथा अनिश्चित होते हैं, जिनका मूल्य रोज बदल सकता है। मुकाबले में खड़ी शक्तियों को संगठन, अनुशासन तथा परम्परागत प्रतिष्ठा के सारे लाभ उपलब्ध होते हैं। यदि विद्रोह अपने दुश्मनों के खिलाफ और बड़ी ताकत मैदान में नहीं उतारेगे, तो वे हार जायेंगे और बरबाद हो जायेंगे। दूसरी चीज—एक बार विद्रोह शुरू होने पर अधिकतम दृढ़संकल्प के साथ काम करने तथा प्रहार करने की जरूरत होती है। प्रतिरक्षा की स्थिति प्रत्येक सशस्त्र विद्रोह की मौत हुआ करती है; अपने शत्रु से मुकाबला होने से पहले ही मैदान हाथ से निकल जाता है।"[10]

इस उद्धरण में प्रत्येक शब्द विद्रोह के प्रश्न पर भगतसिंह के साथियों के सतही रुख के खिलाफ तथा कुछ हद तक क्रान्तिकारी गतिविधियों के आरम्भ में स्वयं भगतसिंह के दृष्टिकोण के खिलाफ चेतावनी देता है।

काफी लम्बे समय तक भारतीय क्रान्तिकारियों ने न तो भावी स्वतंत्र भारत में सत्ता के स्वरूप पर और न ही उसकी सरकार की सामाजिक-आर्थिक नीति के प्रश्न पर विचार किया। वे यह सोचते थे कि स्वतंत्रता ही एक "रामबाण" होगी। मार्क्सवादी साहित्य से प्रभावित होकर भगतसिंह ने इन सभी प्रश्नों में गहरी दिलचस्पी ली। उनके कुछ नोट यह दिखाते हैं कि उन्होंने सर्वहारा अधिनायकत्व के विचार को स्वीकार कर लिया था। शुरू में उन्होंने एंगेल्स का यह कथन नोट किया कि विजयी सर्वहारा को वर्ग शत्रु को कुचलने के लिए अधिनायकत्व की जरूरत है और इसलिए एक "स्वतंत्र लोक राज्य" की बात करना बेतुका है (पृ. 62)। इसके आगे उन्होंने लेनिन की परिभाषा जोड़ी: "अधिनायकत्व प्रत्यक्ष रूप से हिंसा पर आधारित और किसी भी कानून से न बंधी हुई सत्ता है।

"सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी अधिनायकत्व सर्वहारा वर्ग द्वारा बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध हिंसा द्वारा हासिल की जाने वाली और बरकरार रखी जाने वाली सत्ता है, किसी भी कानून से न बंधी हुई सत्ता है।"[11]

भगतसिंह के नोटों में सर्वहारा अधिनायकत्व के सार पर संशोधनवादी रुखों की आलोचना हम पाते हैं। उन्होंने लेनिन की रचना 'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की' से लम्बे उद्धरण उतारे और लेनिन के इस विचार पर खास ध्यान दिया कि बुर्जुआ निन्दक "शुद्ध लोकतंत्र" के नारे का सहारा लेकर सोवियत सरकार पर अत्याचार का आरोप लगाते हैं : "परन्तु अब चूंकि श्रमिक तथा शोषित वर्गों ने साम्राज्यवादी युद्ध के कारण विदेशों के अपने भाइयों से कटे रहकर भी इतिहास में पहली बार स्वयं **अपनी** सोवियतों की स्थापना कर ली है, उन **जन समूहों** को राजनीतिक निर्माण के काम में जुटा दिया है, जिनका बुर्जुआ वर्ग उत्पीड़न करता था, जिन्हें वह कुचलता था और जिन्हें मतिमूढ़ बनाता था, अब चूंकि उन्होंने **स्वयं एक नये**, सर्वहारा राज्य का निर्माण करना आरम्भ कर दिया है, भीषण संघर्ष की ज्वाला के बीच, गृहयुद्ध की ज्वाला के बीच **शोषकों से मुक्त** राज्य के बुनियादी सिद्धान्तों की **रूपरेखा तैयार** करनी शुरू कर दी है—इसलिए सारे लुच्चे बुर्जुआ जन, खून चूसने वालों का पूरा गिरोह 'मनमानेपन' का शोर मचाने लगा है और काउत्स्की भी उन्हीं के स्वर को प्रतिध्वनित कर रहे हैं!"[12]

सर्वहारा अधिनायकत्व को नये समाज के निर्माण का उपकरण मानते हुए भगतसिंह ने ऐसे समाज की स्थापना के पथों की ओर बहुत ध्यान दिया। इस सिलसिले में वह सोवियत रूस के अनुभव और वहां कुछ समय पहले हुए क्रान्तिकारी पुनर्गठन की ओर निरन्तर उन्मुख होने लगे। डायरी के पृ. 36 पर पहली बार "बोल्शेविक रूस" का जिक्र आया है। इसके आगे हाशियों पर विभिन्न लेखकों द्वारा रूस पर लिखी गयी पुस्तकों की सूची है : रेने फुलोप-मिलर की 'बोल्शेविज्म का चेहरा और दिमाग', एम. ओ'हारा की 'रशिया', लैंसलो लोटोन की 'रूसी क्रान्ति', एंटन कार्लग्रीन की 'बोल्शेविक रूस' और 'मार्क्स, लेनिन तथा क्रान्ति का विज्ञान' (पृ. 191)। इस सूची में रूस पर वे सभी पुस्तकें नहीं हैं, जिनमें भगतसिंह ने जेल में दिलचस्पी दिखायी थी। जे. सान्याल के अनुसार भगतसिंह ने जॉन रीड की 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी', गोर्की की 'मां' और स. स्तेप्न्याक क्राव्चींस्की की 'रूसी लोकतंत्र का जन्म' भी पढ़ी थीं।[13]

जे. सान्याल आगे लिखते हैं : "हालांकि समाजवाद उनका विशेष विषय था, तथापि उन्होंने 19वीं सदी के आरम्भ में रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन की उत्पत्ति से लेकर 1917 की अक्टूबर क्रान्ति तक उसके इतिहास का गहराई से अध्ययन किया। यह माना जाता है कि भारत में बहुत कम लोग ऐसे थे, जिनके इस विषय पर ज्ञान की तुलना भगतसिंह के ज्ञान की जा सकती। बोल्शेविक शासन में रूस में हो रहे आर्थिक प्रयोग में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी।"[14]

भगतसिंह यह समझते थे कि समाजवादी क्रान्ति के सम्मुख विराट सृजनात्मक कार्यभार हैं

9. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र', 1847-1848 (का. मार्क्स, फ्रे. एंगेल्स, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, हिंदी संस्करण, मास्को, प्रगति प्रकाशन, खंड 1, भाग 1, 1978, पृ. 152-153)।

10. फ्रे. एंगेल्स, 'जर्मनी में क्रांन्ति तथा प्रतिक्रान्ति', 1851-1852 (का. मार्क्स, फ्रे. एंगेल्स, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, खंड 1, भाग 2, 1978, पृ. 103)।

11. व्ला. इ. लेनिन, 'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्सकी', 1918 (व्ला. इ. लेनिन, संकलित रचनाएं, दस खंडों में, खंड 8, 1984, पृ. 88)।

12. व्ला. इ. लेनिन, 'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की', 1918 (व्ला. इ. लेनिन, संकलित रचनाएं, दस खंडों में, खंड 8, 1984, पृ. 137)।

13. J. Sanyal, Sardar Bhagat Singh, Lahore, 1930, p.104

14. पूर्वोक्त, पृ. 103. वीरेन्द्र सिंधू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि भगतसिंह रूसी क्रान्ति को, उसने जो रास्ते तय किये थे और जो नतीजे हासिल किये थे, उनको समझ पाने के लिए रात दिन प्रयास करते रहे।

जो इसे बुर्जुआ क्रान्ति से अलग करते हैं। निम्न उद्धरण में इस भेद पर जोर दिया गया है : "बुर्जुआ क्रान्ति आम तौर पर सत्ता पाने के साथ समाप्त हो जाती है। सर्वहारा क्रान्ति के लिए सत्ता पाना एक शुरुआत ही है; सत्ता पा लेने पर उसका उपयोग पुरानी अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करने और नयी अर्थव्यवस्था गठित करने के लिए किया जाता है।" (पृ. 120)

क्रान्ति के मार्क्सवादी सिद्धान्त का स्वयं ही स्वतंत्र रूप में अध्ययन करते हुए भगतसिंह ने उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व पहचाने। उन्होंने पुरानी राजकीय मशीनरी को तोड़ने और नयी मशीनरी बनाने की आवश्यकता पर लेनिन के विचार नोट किये और यह इंगित किया कि आंतरिक कार्यों के अलावा समाजवादी क्रान्ति के सामने अन्तरराष्ट्रीय कार्यभार भी होते हैं, क्योंकि विश्व क्रान्ति के बिना किसी एक देश में कम्युनिस्ट शासन खतरे से मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय पूंजीवादी हस्तक्षेप का खतरा उसके सिर पर सदा मंडराता रहेगा (पृ. 120)।

भारतीय क्रान्तिकारी हरावल के, जिसका जनसाधारण के साथ पहले कोई सम्पर्क नहीं रहा, प्रतिनिधि के नाते भगतसिंह द्वारा लेनिन के इस विचार को स्वीकार किया जाना एक बहुत बड़ी बात थी कि जनता पर पार्टी का प्रभाव बहुत महत्वपूर्ण है। पृ. 121 पर उनके नोट लेनिन के इस विचार को प्रतिबिम्बित करते हैं कि सर्वहारा को आबादी के बड़े भाग को अपने पक्ष में लाना होता है और साथ ही वर्ग-सहयोग की वकालत करने वाले बुर्जुआ और टुटपुंजिया तत्वों के श्रमिकों पर प्रभाव को मिटाना होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि जेल में थोड़े समय में ही भगतसिंह ने मार्क्सवादी शिक्षा के प्रमुख सिद्धान्तों को समझ लिया और आत्मसात कर लिया। उनके जीवन का ऐसे क्षण में त्रासद अन्त हो गया, जबकि वह मार्क्सवाद के ज्ञान का उपयोग करने के लिए तैयार हो गये थे।

परन्तु जेल में उन्होंने जो भगीरथ परिश्रम किया, वह निरर्थक नहीं था। भगतसिंह ने स्वयं जो कुछ जाना-समझा, उसे उन्होंने अपने मित्रों और साथियों तक पहुंचाने की कोशिश की, यह समझते हुए कि भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के विकास के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्त कितना महत्वपूर्ण है। यह कोई संयोग की बात नहीं कि अपने एक पत्र में उन्होंने अपने को एक स्वतंत्रता सेनानी नहीं, समाजवादी विचारों का प्रचारक कहा।[15]

जेल में भगतसिंह ने अपने क्रान्तिकारी साथियों के साथ ही नहीं, बल्कि गदर पार्टी के बहुत से सदस्यों के साथ भी सम्पर्क स्थापित किये, जो प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों से जेल में बन्द थे। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की समस्याओं पर उन्होंने गदर पार्टी वालों से लम्बी बातें कीं। जी. देवल ने गदर पार्टी के सदस्यों के साथ भगतसिंह के सम्बन्धों के बारे में एक लेख लिखा है।[16] जेल में वह गदर पार्टी के एक नेता सोहन सिंह भाकना से मिले, जो कालान्तर में भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक प्रमुख नेता बने।[17]

भगतसिंह अपने साथियों को सलाह देते थे कि वे मार्क्सवाद का अध्ययन करें। उदाहरण के लिए, उन्होंने मार्क्स की 'पूंजी' के अध्ययन की आवश्यकता पर जोर दिया। जयदेव प्रसाद गुप्त को 24 जुलाई, 1930 को लिखे पत्र में उन्होंने अपने लिए किताबें मंगवायी थीं और कहा था कि अपने साथियों के लिए किताबों की सूची पहले भेज चुके हैं और विनती की थी कि उनका यह अनुरोध जल्दी पूरा किया जाये, क्योंकि उन्हें किताबों की सख्त तंगी है।[18]

इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि जो साथी सौभाग्यवश जेल जाने से बच गये, उनके साथ भी भगतसिंह ने सम्पर्क बनाये रखे। अपनी काल कोठरी से भी वह 1929 में लाहौर में हुई यूथ लीग की कांग्रेस को एक महत्वपूर्ण संदेश भेजने में सफल रहे। अपनी क्रान्तिकारी पुस्तिकाओं की, जिनमें 'बम का दर्शन' भी था, पांडुलिपियां उन्होंने जेल से बाहर भिजवा दीं। फांसी पर चढ़ने से कुछ दिन पहले ही उन्होंने युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम अपनी घोषणा लिखी और बाहर भिजवायी, जिसे उनकी अन्तिम इच्छा और वसीयतनामा कहा जा सकता है।[19] *

जेल में उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं : 'आत्मकथा', 'समाजवाद का आदर्श' और 'भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन'। दुर्भाग्यवश, इन पुस्तकों की पांडुलिपियां नहीं बची रहीं, हालांकि उनके व्यक्तिगत और राजनीतिक पत्र बचे रहे। इन पत्रों से भगतसिंह के इस आत्म-मूल्यांकन की पुष्टि होती है कि वह समाजवादी विचारों का प्रचारक हैं और इस बात की भी कि उन्होंने अपने साथियों की मार्क्सवादी रुख अपनाने में मदद करने की कोशिश की।

सुखदेव को, जिन्हें भगतसिंह के साथ ही फांसी दी गयी, उनका एक पत्र प्रकाशित हुआ है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि भगतसिंह इस सच्चाई को समझने लगे थे कि भारत में व्याप्त परिस्थितियों में समाजवाद एक तर्कसंगत रास्ता है। इससे यह भी पता चलता है कि भगतसिंह भारत के सामाजिक जीवन पर अपने प्रभाव को समझते थे।

उन्होंने लिखा कि अपने साथियों के साथ उन्होंने (राजनीतिक) वातावरण को काफी बदला और वे अपने समय की पैदाइश थे। मार्क्स का हवाला देते हुए, जिन्होंने, भगतसिंह के शब्दों में, औद्योगिक क्रान्ति से जन्मी विचारधारा को निरूपित किया, उन्होंने लिखा कि उन्होंने और उनके साथियों ने भारत में समाजवादी और कम्युनिस्ट विचारों की रचना नहीं की है, वे तो काल और परिस्थितियों के प्रभाव का परिणाम हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने यथाशक्ति इन विचारों का प्रचार करने में मदद की है।[20]

भगतसिंह अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक मार्क्सवादी विचारों का प्रचार करते रहे। 'बम का दर्शन' पुस्तिका में उन्होंने वर्गरहित समाज और सर्वहारा अधिनायकत्व का समर्थन किया।[21] फांसी की सजा सुनायी जा चुकने के बाद पंजाब के गवर्नर को भेजे एक पत्र में भगतसिंह ने लिखा कि भारत में मेहनतकश जनसाधारण और उनके उत्पीड़कों के बीच लम्बा संघर्ष चल रहा है, कि यह संघर्ष दुगने उत्साह, साहस और अटूट संकल्प के साथ तब तक चलता रहेगा, जब तक कि एक समाजवादी गणतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती, वर्तमान व्यवस्था का स्थान एक नयी व्यवस्था नहीं ले लेती, जिसका उद्देश्य जन कल्याण होगा और जिसमें हर तरह के शोषण

15. N. K. Singh, The impact of the Marxist ideas on Indian Revolutionary Movement after the October Revolution, Mitteilgen des Institus fur Orientforschung, BD. XVII, H. 2, 1971, S. 248.

16. G. Deol, The Ghadarites and Shaheed Bhagat singh, Peoples Path, March 1968.

17. S.S. Josh, Baba Sohan Singh Bhakna, New Delhi, 1970, PP. 61&62.

18. Pepples Path, June 1968, P. 17.

19. N. K. Singh, The Impact of the Marxist Ideas on Indian Revolutionary Movement after the October Revolution, p.247.

* (ये सभी अधिकांश महत्वपूर्ण दस्तावेज अब राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से 1926 में प्रकाशित पुस्तक 'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' में संकलित होकर छप चुके हैं जिसका संपादन जगमोहन सिंह और चमनलाल ने किया है। - सं.)

20. पूर्वोक्त पृ. 71.

21. B. Hardas, Armed Struggle for Freedom, Poona, 1958, PP. 383-389.

(भगतसिंह और उनके साथियों के वैचारिक विकास पर शिववर्मा का लेख 'क्रान्तिकारी आंदोलन का वैचारिक विकास' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जो मित्रोखिन की पुस्तक के बाद में प्रकाशित हुआ था। सं.)

का अंत हो जायेगा और मानवजाति सच्ची और विश्वव्यापी शान्ति के युग में पदार्पण करेगी। (इस पत्र की एक नकल मुझे भगतसिंह के साथी विजय कुमार सिन्हा ने दी।)

भारत की स्वतंत्रता के अदम्य सेनानी भगतसिंह ने अपना तन-मन देश की आजादी के संघर्ष की समस्याओं में तथा राष्ट्रीय क्रान्तिकारी संगठनों को सुदृढ़ करने में लगाया। व्यक्तिगत आतंक की नीति से उन्होंने पूरी तरह इन्कार कर दिया। उन्होंने सारी पेचीदगियों, अप्रत्याशित मोड़ों और उतार चढ़ावों के साथ राजनीतिक संघर्ष के महत्व को स्वीकार किया और वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि उनके जो साथी जेल जाने से बच गये हैं, वे ठीक ऐसे संघर्ष में जुटें। 2 फरवरी, 1931 के अपने पत्र में साथियों को यह सलाह देते हुए उन्होंने लेनिन के अनुभव को ध्यान में रखा। इससे पता चलता है कि उन्होंने तत्कालीन भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए लाक्षणिक बहुत से "वामपंथी" दृष्टिकोणों से छुटकारा पा लिया था। उन्हें इस बात का कायल करने के लिए कि संघर्ष की कुछ मंजिलों में शत्रु के साथ बातचीत की जा सकती है, उन्होंने लिखा कि समझौता अपने आप में कोई बुरी बात नहीं है और अपना उद्देश्य पाने में आरम्भ में उसका उपयोग किया जा सकता है। 1905-1907 में दूमा के प्रति लेनिन की नीति का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा कि "समझौता" एक ऐसा हथियार है, जिसका राजनीतिक संघर्ष में इस्तेमाल किया जाना चाहिए, ताकि राष्ट्र को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके और वह अपने को आगे के संघर्ष के लिए तैयार कर सके। भगतसिंह ने क्रान्तिकारियों का आह्वान किया कि वे अपने अन्तिम लक्ष्य को कभी न भूलें।

मई, 1931 में यह पत्र भारतीय प्रेस में छप गया था। इसे प्रकाशित करने वालों में इलाहाबाद का साप्ताहिक 'अभ्युदय' और पंजाब का 'केसरी' था।[22] इस तरह भारतीय जनता इससे अवगत हो पायी और इसने वह प्रयोजन पूरा किया, जिसके लिए लेखक ने इसे लिखा था।

भगतसिंह की अप्रकाशित रचनाओं में वह भूमिका ध्यान देने योग्य है, जो उन्होंने गदर पार्टी के लाला राम शरण की यूटोपियाई रचना 'स्वप्नलोक' के लिए 15 जनवरी, 1931 को लिखी थी। यह पुस्तक तो नहीं छपी, लेकिन इसकी भूमिका भगतसिंह के परिवारवालों ने संभालकर रखी हुई है।[23] इस भूमिका की अंतर्वस्तु पुस्तक के विषय से कहीं अधिक व्यापक है : भगतसिंह ने घनीभूत रूप में अपने विचार व्यक्त करने के लिए तथा अपने साथियों को सलाह देने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया।

भूमिका इस कथन से आरम्भ होती है कि भारत के राजनीतिक आन्दोलन का कोई सुस्पष्ट आदर्श नहीं है और इस दृष्टि से क्रान्तिकारी आन्दोलन भी कोई अपवाद नहीं है। केवल गदर पार्टी ने ही अपना आदर्श स्पष्टत: निरूपित किया था : शासन के गणतंत्रीय रूप का समर्थन किया था। भगतसिंह ने लिखा कि यह साफ-साफ समझना चाहिए कि क्रान्ति का अर्थ उथल-पुथल या खूनी युद्ध मात्र नहीं है। क्रान्ति का आशय अनिवार्यत: एक ऐसे कार्यक्रम को लागू करना है, जो नये तथा अधिक अच्छे आधार पर समाज का पुनर्गठन करे। उन्होंने कहा कि न केवल वामपंथी कांग्रेसी, बल्कि राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रतिनिधि भी "क्रान्तिकारी" कहलाने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि संघर्ष के उग्र उपायों को मानना ही इसके लिए पर्याप्त नहीं है।

लाला राम शरण की पुस्तक की चर्चा करते हुए भगतसिंह ने लिखा कि लेखक उस दर्शन के विवेचन से शुरू करता है, जिसे वह बंगाल और पंजाब के सारे क्रान्तिकारी आन्दोलन का आधार मानता है। उन्होंने कहा कि वह लेखक से सहमत नहीं है, क्योंकि लेखक संसार की प्रयोजनपरक और अधिभूतवादी व्याख्या करता है, जबकि वह स्वयं भौतिकवादी हैं। उन्होंने ईश्वर में विश्वास और रहस्यवाद के लिए लेखक की आलोचना की, अलग-अलग धर्मों में सामंजस्य बिठाने के लेखक के प्रयासों को अस्वीकार किया और इस प्रश्न पर अपना रुख मार्क्स के शब्दों में व्यक्त किया : "धर्म जनता के लिए अफीम है।"

लेखक द्वारा चित्रित भावी समाज का विश्लेषण करते हुए भगतसिंह ने सामाजिक प्रगति में यूटोपियाई सिद्धान्तों की उपयोगी भूमिका को स्वीकार किया : "सेंट-सिमों, फूरिये और राबर्ट ओवेन और उनके सिद्धान्तों के बिना मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद निरूपित नहीं हो सकता था।" उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भावी समाज कम्युनिस्ट समाज होगा, जिसके निर्माण के लिए वह और उनके साथी प्रयत्नशील हैं। एकाधिक बार वह सोवियत रूस के इतिहास की ओर उन्मुख हुए, शारीरिक और बौद्धिक श्रम के लिए पारिश्रमिक तथा जन शिक्षा के क्षेत्र में उसकी नीति का उदाहरण दिया। भावी समाज में युद्धों के उन्मूलन की भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने लिखा कि सोवियत रूस को सर्वहारा अधिनायकत्व का देश होने के कारण पूंजीवादी समाज से अपनी रक्षा के लिए फौज रखनी पड़ रही है।

भगतसिंह की जेल की डायरी और दूसरी सामग्रियां, जिन पर यहां गौर किया गया है, इस युवा क्रान्तिकारी के दृष्टिकोण का विकास दिखाती है। साथ ही वे इस लिहाज से भी अमूल्य हैं कि इनमें हमें भगतसिंह की विचारधारात्मक खोजों का पता चलता है, हम देखते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों का मार्क्सवाद की ओर रुझान था और वे लेनिन तथा अक्टूबर क्रान्ति के विचारों से प्रभावित हुए थे।

भगतसिंह तत्कालीन मध्यवर्गीय नौजवानों की, जो कांग्रेस के बुर्जुआ नेताओं से निराश थे, भावनाओं का मूर्त रूप हैं। इन नौजवानों को भगतसिंह ने यह दिखाया कि उन्हें कौन सा रास्ता पकड़ना चाहिए। जब इस क्रान्तिकारी को फांसी दे दी गयी, तो उनके उदाहरण का अनुसरण करते हुए क्रान्तिकारी दलों ने जेल में ही मार्क्सवाद के अध्ययन के लिए पाठ्यक्रमों का प्रबन्ध किया।

सोवियत संघ में हो रहे क्रान्तिकारी कायाकल्प तथा पार्टी कर्मियों को शिक्षित करने की उसकी विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रणाली से भगतसिंह बहुत आकर्षित हुए। वह अक्टूबर क्रान्ति के अनुभव का प्रत्यक्ष अध्ययन करना चाहते थे और उन्होंने अपने साथियों से ऐसे योग्य उम्मीदवार चुनने को भी कहा, जिन्हें इस उद्देश्य से मास्को भेजा जा सके।

सुविख्यात स्वतंत्रता सेनानी बाबा पृथ्वी सिंह आजाद ने 'लेनिन की धरती में' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है :

"उन दिनों भगतसिंह जेल में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन कर रहे थे और उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि को एक नया, अधिक परिपक्व आयाम प्राप्त हो रहा था। वह भारत की स्वतंत्रता तथा जनसाधारण की शोषण से मुक्ति की समस्या पर अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार कर रहे थे। वह भली भांति जानते थे कि उन्हें फांसी होगी। परन्तु शहीद होने से पहले वह आश्वस्त हो जाना चाहते थे कि भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन उस नयी अवस्था में पदार्पण कर ले, जिसकी कल्पना उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों और सोवियत क्रान्ति के अध्ययन के आधार पर की थी।"

आगे वह लिखते हैं : "चन्द्रशेखर और धन्वन्तरि ने मुझसे कहा : सरदार भगतसिंह जेल में मार्क्स और लेनिन के कम्युनिस्ट दर्शन का गहरा अध्ययन करते रहे थे और अपने साथियों

22. M. N. Gupta, History of the Indion Revolutionary Movement, Bombay-New Delhi, 1972, p.132.

[23] इस भूमिका का सारांश 'लिंक' ने 24 अगस्त, 1969 के अंक में छापा था। (यह लेख भी 'भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज' पुस्तक में 'ड्रीमलैण्ड की भूमिका' नाम से संकलित है)

को भी इसकी प्रेरणा देते रहे थे।... उन्होंने ही तुमसे मिलने और तुम्हें इण्डियन सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी का सदस्य बनाकर सोवियत संघ में अध्ययन के लिए भेजने को कहा था।"[24]

गिरफ्तारी से पहले भगतसिंह खुद भी सोवियत संघ जाकर समाजवाद के देश को अपनी आंखों से देखना चाहते थे। 'सोवियत संघ में नव मानव' पुस्तक में विजय कुमार सिन्हा लिखते हैं:

"उन दिनों ही शौकत उस्मानी, जो कुछ दूसरे लोगों के साथ तीसरे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की छठी कांग्रेस में भाग लेने के लिए चोरी छिपे मास्को जा रहे थे, कानपुर में मुझसे मिले और अपने साथ चलने को कहा।... मैंने भगतसिंह से बात की : हमें लगा कि यह उचित समय नहीं है। हमने तय किया कि हम दोनों कुछ समय बाद मास्को जायेंगे।"[25] दुर्भाग्यवश, यह योजना कभी साकार नहीं हो पायी।

कुलबीर सिंह ने, जिनकी कृपा से मैं उनके बड़े भाई भगतसिंह की जेल डायरी का अध्ययन कर और उसकी नकल उतार सका, उनके जीवन तथा कार्यकलाप पर अद्वितीय सामग्री जमा की है, जिसका बारीकी से अध्ययन किया जाना चाहिए। उनके विचार में भगतसिंह जेल में कूट भाषा में भी एक डायरी रखते थे, जो अभी तक नहीं मिल पायी है।

भगतसिंह के दूसरे भाई, कुलतार सिंह भी बड़े सौहार्द से मुझसे मिले। उनकी सुपुत्री वीरेन्द्र सिंधू ने उपरोक्त पुस्तक लिखी है। इसमें वह बताती हैं कि जुलाई, 1929 में दिल्ली में मुकदमे की सुनवाई में भगतसिंह ने कहा था : हम उस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर जोर देते हैं, जिस पर हम पहुंचे हैं।... जिस तरह फांसी के तख्ते और साइबेरिया की खानों के डर से रूस में क्रान्ति की ज्वाला नहीं बुझी, उसी तरह सरकार के आदेश और "असाधारण" कानून भारत में स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला नहीं बुझा सकते।

21 जनवरी, 1930 को लेनिन की पुण्य तिथि पर भगतसिंह और उनके साथी लाल रूमाल गले में बांधकर अदालत में आये। कटघरे में पहुंचते ही उन्होंने नारे लगाये : "समाजवादी क्रान्ति जिन्दाबाद", "कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल जिन्दाबाद", "लेनिन का नाम अमर है", "जनता जिन्दाबाद", "साम्राज्यवाद मुर्दाबाद"।

इसके बाद भगतसिंह ने वह तार पढ़ा, जो उन्होंने और उनके साथियों ने तीसरे इण्टरनेशनल को भेजने के लिए अदालत को दिया था। इसमें कहा गया था : लेनिन दिवस पर हम उन सब लोगों का हार्दिक अभिवादन करते हैं, जो महान लेनिन के विचारों को आगे ले जाने के लिए प्रयत्नशील हैं। रूस जो महान प्रयोग कर रहा है, उसमें सफलता की कामना हम करते हैं। हम अन्तरराष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन की आवाज में आवाज मिलाते हैं। सर्वहारा की जीत होकर रहेगी, पूंजीवाद की हार होगी। साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।

भारत में एक ऐसे व्यक्ति से भी मेरी मुलाकात हुई, जो भगतसिंह को फांसी दिये जाने से कुछ घंटे पहले ही उनसे मिले थे। यह थे प्राणनाथ मेहता, भगतसिंह के मित्र और वकील। उन्होंने मुझे बताया :

"उन दिनों मैं डायरी रखता था (अपने काम के लिए भी मुझे इसकी जरूरत होती थी)। बदकिस्मती से 1947 में पार्टिशन के वक्त मुझे लाहौर छोड़ना पड़ा, मेरे कागजात वहीं रह गये, कुछ पता नहीं उनका क्या हुआ।

"बहरहाल डायरियां तो खो गयी हैं, मगर उन दिनों की घटनाओं ने मेरे दिमाग पर इतनी गहरी छाप छोड़ी है कि उसे न वक्त मिटा सका है, न कोई दूसरी घटनाएं।...

"23 मार्च, 1931 को मुझे वह किताब मिल गयी, जो भगतसिंह ने मंगवायी थी। मैं उससे मिलने गया। जेल के गेट पर मुझे बताया गया कि भगतसिंह और उसके दोस्तों ने किसी से भी मिलने से इन्कार कर दिया है। वजह यह थी कि जेल के अधिकारियों ने करीबी रिश्तेदारों को छोड़कर और किसी से मिलने पर पाबंदी लगा दी थी। इसके विरोध में भगतसिंह और उसके साथियों ने कहा कि वे किसी से भी नहीं मिलेंगे।

"कुछ करना चाहिए था। मैं जेल के अधिकारियों से मिलने गया। उनमें एक मि. पुरी नेक इन्सान निकला। उसने मुझे सलाह दी कि तीन कैदियों के वकील के नाते मैं अर्जी दूं कि मुझे उनकी आखिरी इच्छा लिखने के लिए उनसे मिलना है। फिर उसने मुझे भगतसिंह की काल कोठरी में ही उससे मिलने की इजाजत दे दी। थोड़ी देर बाद राजगुरू और सुखदेव को भी वहां लाया गया।

"उस वक्त मुझे यह पता नहीं था कि लाहौर जेल के इन तीन कैदियों से यह मेरी आखिरी मुलाकात है, कि दो घंटे बाद इन्हें फांसी दे दी जायेगी।

"भगतसिंह ने मुझसे पूछा कि मैं किताब लाया हूं या नहीं। मैंने उसे किताब दी, तो वह बड़ा खुश हुआ। किताब लेते हुए बोला : 'आज रात को ही इसे खत्म कर दूंगा, इससे पहले कि वे...' उस बेचारे को क्या पता था कि वह किताब आखिर तक कभी नहीं पढ़ पायेगा।"

मैंने प्राणनाथ मेहता से पूछा कि उन्हें उस किताब का नाम याद है, जो वह भगतसिंह के लिए ले गये थे। उनका जवाब था : "सच पूछें, तो मुझे याद नहीं कि यह लेनिन के बारे में किताब थी, या लेनिन की। एक छोटी सी किताब थी।...अगले दिन जेल के संतरी ने मुझे बताया कि जब भगतसिंह को लिवाने आये थे, तो वह यह किताब पढ़ रहा था। बाद में भगतसिंह मेरे लिए जो चीजें छोड़ गये थे, उनके साथ मुझे वह किताब भी मिली।"

"शायद उसी संतरी ने," मेहता ने आगे कहा, "भगतसिंह के रिश्तेदारों को उनके अन्तिम क्षणों के बारे में बताया।"

वीरेन्द्र सिंधू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि भगतसिंह प्राणनाथ मेहता की लायी लेनिन की जीवनी पढ़ रहे थे, जब दरवाजा खुला। दहलीज पर अफसर खड़ा था।

" 'सरदार जी,' उसने कहा। 'फांसी लगाने का हुक्म आ गया है। तैयार हो जाइये।'

"भगतसिंह के दायें हाथ में किताब थी, उससे नजरें उठाये बिना ही उन्होंने बायां हाथ उठाकर कहा : 'ठहरिये। यहां एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है।'

"कुछ पंक्तियां और पढ़कर उन्होंने किताब एक तरफ रख दी और उठ खड़े हुए बोले : 'चलिए!' "

भगतसिंह के क्रान्तिकारी दल में से एक और कर्मठ क्रान्तिकारी निकला, जो आगे चलकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव बना। यह थे अजय कुमार घोष।

'भगतसिंह और उनके साथी' नामक पुस्तक में अजय घोष ने लिखा कि भगतसिंह भारत के राजनीतिक क्षितिज पर अल्पांश के लिए एक उल्का पिंड की तरह चमके और लुप्त होने से पहले वह लाखों लोगों के लिए एक नये भारत की आत्मा और आशाओं का प्रतीक बन गये, उन लोगों के लिए, जिन्हें मृत्यु का डर नहीं था, जो साम्राज्यवादी अंकुश को उतार फेंकने और अपने महान देश में एक स्वतंत्र राज्य का भवन खड़ा करने के लिए कृतसंकल्प थे।

भगतसिंह और उनके साथियों जैसे निडर क्रान्तिकारियों का बलिदान व्यर्थ नहीं था। उनके दल के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मुट्ठी भर नौजवान क्रान्ति नहीं ला सकते, कि बड़े धीरज और परिश्रम के साथ जनसाधारण के बीच काम करना चाहिए, लोगों को संघर्ष के लिए संगठित करना चाहिए, ठोस कार्यनीतियां तैयार करना, उन पर अमल करना तथा लोगों को सत्ता के अन्तिम संघर्ष की ओर ले जाना चाहिए।

(1981)

24. Baba Prithvi Singh Azad, In Lenin*s Land, New Delhi, 1978, pp. 29,32, 35.

25. Bejoy Kumar Sinha, the New Man in The Soviet Union Peoples Publishing House, New Delhi, 1971, p.2.

शशि प्रकाश की पच्चीस कविताएं

'दायित्वबोध' के पाठकों के लिए हम इस बार विशेष सामग्री के तौर पर शशि प्रकाश की पच्चीस कविताएं (रचना काल : 1996) दे रहे हैं। ये कविताएं दो लम्बी कविता-श्रृंखलाओं की चुनी हुई कड़ियां हैं। इनमें से दूसरी श्रृंखला अभी असमाप्त है।

1970 के दशक की वामधारा की कविताओं से परिचित पाठक शशि प्रकाश की कविताओं से भलीभांति परिचित होंगे। अब एक लम्बे अन्तराल बाद हम एक साथ उनकी पच्चीस कविताएं दे रहे हैं जिनकी आत्माओं-शरीरों पर '90 के दशक के देशकाल की गहरी छाप-छवियां अंकित हैं। ये कविताएं एक धरातल पर एक कवि के राजनीतिक व्यक्तित्व पर, और साथ ही, एक राजनीतिक कर्मी के कवि-व्यक्तित्व पर आज के समय के संघात का प्रतिफल हैं, तो दूसरे धरातल पर क्रान्तिकारी वामपंथी आंदोलन के वर्तमान कठिन संक्रमणकालीन दौर की चुनौतियों-प्रेरणाओं-दायित्वों के दबावों से भी इनकी निर्मिति कहीं गहरे में प्रभावित है। गहरे अर्थ-संदर्भों में ये कविताएं 'आज के समय की राजनीतिक कविताएं हैं', पर महज "राजनीतिक" कविताएं ही नहीं हैं। इनके अर्थ-संकेत कई स्तरों पर उत्सर्जित-फलित होते प्रतीत होते हैं और हिन्दी कविता के चालू रंग-ढंग, मिजाज और मुहावरों से अलग हटकर, ये कविताएं हमें कुछ घनीभूत चिन्ताओं-उत्प्रेरणों-सरोकारों की ओर ले जाती हैं और शायद बोध (सौन्दर्य-बोध सहित) के एक नये धरातल तक भी। — सम्पादक

कविता-श्रृंखला—एक

हृदय में कहीं एक मुक्तिदायिनी सिम्फनी बजी...

(कौसानी और भवाली में कुछ कविताएं)

एक

एक तान छिड़ी
दो,
सिर्फ दो पक्षियों ने
सुर मिलाये।
इतने सारे — इत्ते सारे
बहुरंगी
फूल जो खिले
लयबद्ध
गति में
हिले
प्रकृति
सुबास सजी
हृदय में
कहीं एक
मुक्तिदायिनी
सिम्फनी बजी।

(कौसानी में एक सुबह बांसुरी की एक धुन सुनकर)

दो

आह्लाद
यूं
आया
हृदय के पास
ज्यों
प्रकृति
हो निमित्त मात्र।
इसतरह।
इसतरह हम चीजों से प्रभावित हो सकते हैं
तो
प्रभावित कर भी सकते हैं।
इसतरह
हमारा
आह्लादित होना
एक लम्बे समय बाद
बताता है
कि हम आह्लाद रच सकते हैं
कि इसके लिए

हम फिर-फिर
दुखों की घाटी में
उतर
सकते हैं।

तीन

स्तब्ध चांदनी में
रहस्यमय
स्वप्न-सी झलमलाती
दूरस्थ हिमर्माण्डत चोटियां
एकदम वास्तविक
जैसेकि
आज के समय में
हमारा लक्ष्य —
पाने के लिए एक पूरा विश्व
एक बार फिर।
एक बार फिर।

चार

विजित शिखर हैं
अविजित फिर भी
उन्नतशिर
उत्प्रेरण देते
आमंत्रण देते
फिर-फिर आरोहण को।
हम क्यों हारें?
नये-नये अभियानों की
योजना बनायें।

पांच

यदि दफ्न हो पातीं
थके-हारे, लौट चुके
सहयात्रियों की यादें
तो स्थान मैं चुनता उनके लिए
पिण्डारी और मिलम हिमनदों के पास कहीं।

छः

सब कुछ जानते हैं
देखा भी है कई बार
फिर भी
हर बार
उगना
चकित करना है
सुख से भरना है।

(कौसानी में एक सूर्योदय)

सात

न सारथी दिख रहा है
न सातों घोड़े
बस उनकी रासें
नजर आ रही हैं
खिंची हुई।
निकटस्थ शिखरों की रजत रेखा
ऊबड़-खाबड़
बीहड़ पथ दर्शाती है।
उत्तर के शिखर
अभी अंधकारमय दिख रहे हैं
कोहरे से ढंके हुए।
उन्हें श्वेत-धवल आभा देगा
सूरज
ऊपर चढ़ते हुए।
अदृश्य सारथी
अदृश्य घोड़े
पर रास और लगाम से
उनकी उपस्थिति
पता चलती है
और रथी सेनापति का आना
लाखों-करोड़ों
रश्मि-वाहिनियों के साथ।
यूं
जीवन जगता है
धीरे-धीरे
और फिर अचानक
तेज कौंध के साथ
पर अपने-आप नहीं।

(कौसानी में एक और सूर्योदय)

आठ

सबसे पहले
पूर्वी क्षितिज पर
बादल के एक छोटे से टुकड़े के
निचले किनारे पर
काली-नुकीली चोटी के ठीक ऊपर
एक
लाल
तलवार
चमकी।
कुछ देर बाद
कौंध फूटी अचानक।
शिखर आलोकित हुए
फिर घाटी में
उतर गया प्रकाश।
सहसा याद आया

यूं ही
हठात्
मानव जन ने किसतरह बनाया
स्वयं अपना इतिहास।

(कौसानी में एक और सूर्योदय)

नौ

तपिश अभी मैदानों में
बाकी होगी।
धूसर परिदृश्य।
वनस्पतियां झुलसी खड़ी होंगी।
खेत मुंह बाये
लोग उबल रहे होंगे।
मानसून की प्रतीक्षा होगी।
इन सांवली पर्वत-श्रृंखलाओं से आगे
उन्नत हिमशिखरों से
टकराकर लौटना है
सुआपंखी हरियाली बिछी घाटियों को
पारकर
आगे के पर्वतों पर पसरे चीड़वनों से
गुजरते हुए
मैदानों में उतरना है
गरजते-उमड़ते-घुमड़ते हुए।
वहां एक अधीर प्रतीक्षा है
अकुलाहट भरी तंद्रा में डूबी हुई।
इसलिए
चलना है यहीं से बरसते हुए।
यहां
बहुत अधिक रुकना
हिमनद बनना है।

दस

बैजनाथ-कत्यूर-गरुड़ की घाटियों में
मानव-श्रम
दूर-दूर तक फैली
फसलों की हरियाली से
फलों से लदे वृक्षों की बहुरंगी आभा से
प्रकृति को सजाता है।
शिखरों की ओर उठती हैं
अनगिन दृष्टियां
प्रश्नाकुल
अपनी सर्जना की समीक्षा के लिए आतुर।
हिमालय चुप रहता है।
श्रम-श्लथ जन जब सोते हैं
शिखर मुस्कुराते हैं
प्यार और प्रशंसा
छलकाते हुए।
दूध बरसता है।
घाटी की कटोरी में
जुगनू तैरते हैं।

ग्यारह

यह किसी झरने की
आवाज़ नहीं,
चीड़ के जंगलों से
हवा गुजर रही है।
तमाम वनस्पतियों के
हिस्से का पानी सोखकर
चीड़ के वृक्ष
हवा से खिलवाड़ कर रहे हैं
झरने का छल रच रहे हैं।
पर्वतों की मिट्टी को
अपनी जड़ों से बांधते हुए
खामोश-गुमसुम हैं
अपने में सिमटे हुए बांज के झुण्ड।
मोटे तनों वाले
गर्वीले-गंभीर ऊंचे देवदारु
अपनी हजार बांहें फैलाये
किसी गुह्य साधना में रत हैं
या कि आकाश से
गुफ्तगू कर रहे हैं।
बर्फ ढंकी चोटियां बुलाती हैं।
अभी हिमनदों के पास संचित है
अनंत जलराशि।
...सवाल चीज़ों को
एकदम नये सिरे से
व्यवस्थित करने का है।

बारह

मेघों ने
आकृतियां आंकीं
अलग-अलग।
आसमान को टेक लगाये
अविचल शिखरों को
छूकर
छू कर
सार्थकता पाई।
बरसी जीवन-धार
सहस सोते फूटे।
छीज चुके थे पर्वत जो
वृक्षहीन, निर्लज्ज
स्खलित हुए।
राह रुकी। फिर खुली।
भास हुई गतिमयता
और आहटें

जग की, जीवन की
भविष्य की
दूर बहुत होकर भी
पास
एकदम पास कहीं।

तेरह

चीड़ वनों में
लगी आग को
हिमनद नहीं बुझा पाये थे।
वे तटस्थ थे,
बंधे हुए थे।
नदियों ने भी
राह न छोड़ी,
आदी थीं
बंधकर बहने की।
बादल आये
दक्षिण से
पश्चिम से चलकर।
उन्नत शिखरों से
टकराये।
गरजे।
गरज-गरज घहराये।
बरसे।
आग बुझाई।
लौटे
विस्तृत मैदानों को
आतप से राहत पहुंचाने,
फसल उगाने।

चौदह

पतझड़ ने ही प्रतिरोध किया था
अलफ नंगे दिनों का।
दिल में कहीं
लोर्का गा रहा था।
बसंत के दिनों में
जब टूट रहे थे दिल
लोर्का की हत्या की जा चुकी थी।

पन्द्रह

'अगली बार
हमारा खेमा कहीं
सागर-तट पर गड़ना चाहिए' —
हमारा सबसे कमउम्र कामरेड
कहता है—'अब हमें
दूसरे छोर तक चलना चाहिए।'

हमारा सबसे कमउम्र कामरेड
उन्नत हिमशिखरों को निहारता
घाटी में खो-सी गई
सर्पिल राहों को टटोलता
सागर के अनन्त विस्तार
और रहस्यमय गहराइयों के बारे में
सोच रहा है
और अपनी पीढ़ी के प्रति
नया भरोसा पैदा कर रहा है।

जो ऊंचाइयां ही नहीं जीतेंगे
नापेंगे विस्तार भी
उतरेंगे तल तक
वे ही जीतेंगे
हारी हुई लड़ाइयां
वे ही चुकायेंगे
पूर्वजों की हार का बदला।

(जून-जुलाई 1996)

कविता श्रृंखला - दो

अंधेरे से छीननी हैं अपनी स्मृतियां, अपनी कल्पनाएं

एक

रात का अंधेरा सिर्फ काला नहीं होता
उसमें कई रंग घुले होते हैं।
उसका स्वाद
सिर्फ खारा नहीं होता
उसमें कई स्वाद मिले होते हैं।
रात जब ढलती है
ये रंग अलगाने लगते हैं
खुद को
अंधेरे से।
सबसे पहले
अवक्षेपित होता है गाढ़ा रक्त
मटमैली कायरता और
भूरी खाक-धूल के रंग वाली नाउम्मीदी से
खुद को और कविता और विचारों को
अलगाता हुआ।

कोई रासायनिक क्रिया
शोक को शक्ति में ढालने लगती है।
... ...
रात बहुत ऊपर चढ़ चुकी है,
शायद शिखर तक।
अब इसके उतरते प्रहरों के बारे में
सोचना है।

दो

शाम की सांवली छायाओं में
रंग घुलते हैं बहुतेरे।
दिन के सभी चित्रों पर
काला रंग पोतने के लिए
रात आ रही है।
फिर काले कैनवस पर
सिर्फ कुछ जुगनू ही होंगे
और गहरे सांवले नीले अंधेरे सने
आसमान पर
जो बिखरे उज्ज्वल दाने उकेरेगी रात
वे नदी की छाती पर भी चमकेंगे
थरथराते हुए।
किनारों से टकरायेगा काला जल
'चप-चप' करता हुआ।
पानी में तारे हंसेंगे
और हम सोई हुई बस्ती से बाहर
इस छोटी-सी उदास नदी के
सुनसान तट पर बैठे
प्रत्यूष की प्रतीक्षा करेंगे
कि रंगों की मृत्यु नहीं होती।

तीन

गंगा के घाटों पर
रात धीरे-धीरे सीढ़ियां उतरती है
चुल्लू में पानी भरती है
और गंगा रोती है।
मैं यहीं अपने गीतों की
गंध महसूस करता हूं
दुधारू गायों को खिलाने के लिए
काटे जा रहे ताजा हरे चारे की
गंध से मिलती-जुलती।
मणिकर्णिका पर शव जल रहे हैं।
लकड़ियां चिटखती हैं।
एक बच्चा जो आया है
किसी एक शवयात्रा में साथ,
थकी-थकी सी आंखों में
दुनिया की तमाम मासूमियत और
जिज्ञासा को कौंध लिए
देखता है
अग्नि की दुर्दान्त कराल लपटों को
मृत्यु से जीवन का संगीत सुनता हुआ।
पास कुछ उदास लोग हैं
पर उन्हें अब लौट जाना है
घरों की ओर
उजास फूटने से पहले ही।
किनारे की रोशनियां थक गई हैं
चमकती हुई
उनींदी लोरी थम चुकी है।
रात के सन्नाटे में
काले पानी को थपथपाता है
आत्मीयता से
बलिष्ठ-अभ्यस्त-सजग हाथों में थम्हा चप्पू।
गंगा आंसू पोंछती है।
आंखों में तैरते हैं लाल डोरे।
जल में चमकती हैं
लपटों की हिलती हुई परछाइयां।
उस पार रेत के विस्तार पर
और उसके भी पार के झाड़-झंखाड़ों में
जुगनू चमकते हैं।
यहीं कहीं
यहीं कहीं आसपास
मेरे गीत हैं
जलते हुए
पर शेष नहीं होते हुए
जलते हुए अविराम
पर राख नहीं होते हुए
यहीं कहीं मेरे गीत हैं।

चार

नाम नहीं होते उन धाराओं के
जो बहती हैं
धरती के अंधेरे गर्भ में।
उनके कोई किनारे नहीं होते।
फिर भी वे बहती हैं
वनस्पतियों को प्यार करने की
अदम्य कामना लिए हुए
और वनस्पतियां
सिर्फ सूर्य की रोशनी में होती हैं।
घुटती हैं
धरती के अंधेरे हृदय को छूती हुई
बहती धाराएं, अकुलाती हैं
और एक दिन
करोड़ों मन मिट्टी के नीचे से
बाहर आ जाती हैं
फोड़कर कई पथरीली तहें।

जंगल के बीच सोते फूट जाते हैं
और तराई के खेतों के हरियाले विस्तार को
सींचने लगते हैं आर्टीज़ियन कुएं
मानव-श्रम को सार्थक करते हुए।

पांच

एक शब्द
आंसू की तरह उमड़ता है
और गले में अंटकता है।
रात निश्शब्द ढलती है।
अकेला निशाचर पक्षी भी चुप है।
सहसा मैं अच्छे दिनों को
याद करता हूं।
बचपन के चित्र
चलचित्र-से आते हैं सामने।
शायद सुखद, शांत, आत्मीय मृत्यु
आ रही है किसी के निकट
चीजों के निकट
या कि मेरे ही किसी व्यक्तित्व के निकट।
कुछ अचानक
छिटककर सन्नाटे में गिरेगा
और शोर मचाता हुआ
आखिरी बार ,
चकनाचूर हो जायेगा
बिना किसी आत्मग्लानि के
पर फिर भी
कोई एक आंसू बच रहेगा
पश्चाताप का,
गले में अंटका हुआ एक शब्द।

छः

यह सन्नाटा जब बीत चुका रहेगा यारो
यह खामोशी जब टूट चुकी रहेगी
मुमकिन है कि हम मिलें
तो थोड़े से बचे हुए लोगों के रूप में
कहीं साल-सागौन के घने सायों में
गुलमोहर-अमलतास-कचनार की बातें करते हुए
हृदय पर एक युद्ध की गहरी छाप लिये
और सबको दिखाई पड़ने वाला एक दूसरा
समूचा का समूचा युद्ध सामने हो।
सन्नाटे के खिलाफ
यह युद्ध है ही ऐसा
कि इसमें खेत रहे लोगों को
श्रद्धांजलि नहीं दी जाती,
बस कभी झटके से
वे याद आ जाते हैं
बरबस
अपनी कुछ अच्छाइयों की बदौलत।

सात

यह हृदय
जहां संचित हैं कई-कई सुबहें
और कई-कई रातें
और यादें और कमजोरियां,
जहां कैद हैं
चीड़, देवदारु, सरू और भोजपत्र के
जंगल हजार
और पहाड़ और नदियां और हरियाले मैदान
और सागर अंतहीन,
जिसके कोनों-अंतरों में छिपा-सहेजकर
रखी हुई हैं सुबह की ओस की बूंदें, जुगनू,
बहुतेरे पहाड़ी फूल, बिच्छूबूटी,
सीपियां और केंकड़े
सघन वासनाओं-कामनाओं के साथ-साथ
बरसों से,
बचपन से ही मैं इन्हें इकट्ठा करता रहा हूं।
यहां रीत चुके रिश्तों की उपेक्षित समाधियों पर
उग आयी है घास
जिसके हरे फैलाव पर सफेद छींट के मानिंद
छोटे-छोटे फूल खिले हैं।
यह हृदय
जहां धधकता है संकल्प का लावा
जो इतनी सारी चीजों के बोझ से
इसे भारी नहीं होने देता।
यह हृदय जिसका ताप
शरीर और मस्तिष्क को
पका देता है
और फिर भी मैं तलाशता हूं
नये-नये युवा दोस्त
और तमाम तनहाइयों के दर्रों से
गुजरकर आता हूं जब बाहर
तो पाता हूं कि
खुशियों का बोझ भी उठाने की ताकत है
मेरे हृदय के पास
जहां बेशक अंधकार के धब्बे भी हैं
और गुजरे हुए शीत का ठण्डापन भी।

आठ

"अपनी भाषा को फिर से खोजने और फिर से उसे प्रयोग में लाने का आह्वान मानवता और संघर्ष की वास्तविक भाषा की खोज का आह्वान है। यह सार्वजनिक भाषा है जिसमें हमारे इतिहास की सारी बोलियां और सारे शब्द शामिल हैं। संघर्ष। संघर्ष ही इतिहास बनाता है। संघर्ष हम सबों को बनाता है। संघर्ष में ही हमारा इतिहास

है, हमारी भाषा है, हमारा अस्तित्व है। जहां हम होते हैं, जो हम करते हैं, वहीं संघर्ष शुरू होता है। तब हम उन लाखों लोगों में शामिल होते हैं जिन्हें मार्टिन कार्टर ने कभी सपना देखने के लिए सोते हुए नहीं बल्कि दुनिया बदलने के लिए सपना देखते हुए पाया था।'' - *न्गुगी वा थ्योंगो* (*'डीकोलोनाइजिंग द माइण्ड'*)

जब गुहारों पर कान देने का समय था
बीमार कानफाड़ू संगीत का
कामुक उन्मादी शोर था।
जब संकेत चीन्हने थे
नया बिम्ब-विधान घर-घर पहुंच रहा था
केबुल-संजाल पर सवार।
जब अभिव्यक्ति के खतरे उठाने थे
वे हमारी भाषा छीन ले गये
वातानुकूलित सभा-भवनों में विमर्श के लिए
कहकर कि भाषा हमारे लिए
अंतिम जेल है।
जब सपनों की बात थी,
आशाओं का विखण्डन किया जाने लगा
और जिन्दगी के नये पाठ की
जरूरत पर बल दिया जाने लगा।

मुक्ति का सवाल था एजेण्डे पर
फिर भी लेकिन अडिग—
वास्तविक दुनिया के
वास्तविक लोगों की
वास्तविक मुक्ति का ठोस सवाल
इसलिए तुमुल नाद की तरह
घहराकर उठा है मुक्ति-प्रसंग।

तमाम पददलितों तक
रातोरात
पहुंच जाना है यह संदेश कि
हमारे कल्पनालोक की मुक्ति* का सवाल है।

* न्गुगी वा थ्योंगो ने ऑल इण्डिया पीपुल्स रेजिस्टेंस फोरम द्वारा आयोजित संगोष्ठी (18-19 फरवरी 96, दिल्ली) में अपने वक्तव्य में इन शब्दों का प्रयोग किया था।

नौ

''कविता लिखना कोई कुत्ती दा सूआ (कुत्तियों का पिल्ले जनना यानी हर वर्ष दर्जनों का उत्पाद) तो नहीं!''

— पाश की डायरी (13.6.82)

कविता लिखना
यह तो सूत कातना
और जतन से पांचो महाद्वीपों के अटेरनों पर
लपेटते जाना है
और फिर वहां से उतारकर
पूरी पृथ्वी को चारो ओर से बांध देना है
इसके गर्म हृदय को
सुरक्षित कर देना है
संवेदनाओं को बचाये रखना है।
कविता लिखना
मूंगे का द्वीप रचना है
दसियों हजार ऊन लदी भेड़ों के लिए
एक बाड़ा बनाना है
एक लोहे का कारखाना लगाना है
पथरीली जमीन पर मिट्टी की मोटी परत बिछाकर
जरखेज खेत तैयार करना है।[1]
कविता लिखना
ताचाई और ताचिङ[2] से सीखना है
कुर्दिस्तान, बोस्निया और रवांडा[3] से
उठते चीत्कारों और
एण्डीज[4] की हुंकारों को सुनना है
बगदाद की एक सड़क पर
अमेरिकी बमबारी से घायल बच्चे को
घर तक सुरक्षित पहुंचाना है।
यह अव्रोरा युद्धपोत[5] से दगी तोप का धमाका
और तूफानी पितरेल का गीत[6]
सुनना है दशाब्दियों बाद
और चिङकाङशान[7] पर फिर से चढ़ना है।
कविता लिखना
हवा को प्रदूषणमुक्त करना है
ओजोन परत की छेद को बन्द करना है।
माना कि
यह सब कुछ नहीं कर सकती कविता
पर कविता, सिर्फ कविता
और कविता जैसी सरगर्मियों और कारगुजारियों के भीतर ही
यह सब कुछ करने की एक अदम्य कामना
एक सिरफिरी-सी चाहत
बसी रह सकती है
और चाहतों से ही होती है शुरुआत
और चाहतों से ही शुरू होकर
संभव हो पाता है
जन से जुड़ना और अग्रधावक बनना
और वह सब कुछ ठोस यथार्थ में बदल देना
जो कभी एक स्वप्न होता है।
कठिन है
इसीलिए तो ''कभी भी कलम पकड़कर
धोखे से की गई नक़्शतराशी''[8] नहीं है कविता
इसीलिए तो
यह हौसले की बात है
इसीलिए तो
हर ईमानदार सच्चे कवि का बेलौस दिल

पाश की तरह कभी-कभी
कहता है—'मैं जिन्दाबाद''
क्योंकि हर सच्ची कविता के पीछे
यह संकल्प होता है कि
उसे कभी चुप नहीं होना।[9]

दस

यह अंधेरा
कालिख की तरह
स्मृतियों पर छा जाना चाहता है।
यह सपनों की जमीन को
बंजर बना देना चाहता है।
यह उम्मीदों के अंखुवों को
कुतर जाना चाहता है।
इसलिए जागते रहना है,
स्मृतियों की स्लेट को
पोंछते रहना है।
भूलना नहीं है
मानवीय इच्छाओं को।
भूलना नहीं है कि
सबसे बुनियादी जरूरतें क्या हैं
और क्या हैं हमारे लिए
गैरजरूरी, जिन्हें लगातार
हमारे लिए सबसे जरूरी बताया जा रहा है।
भूलना नहीं है कि
अभी भी हैं भूख और बदहाली,
अभी भी हैं लूट और सौदागरी और महाजनी
और जेल और फांसी और कोड़े।
भूलना नहीं है कि
ये सारी चीजें अगर हमेशा से नहीं रही हैं
तो हमेशा नहीं रहेंगी।
भूलना नहीं है कि
ये चीजें अस्वाभाविक हैं और अमानवीय भी।
भूलना नहीं है शब्दों को
वास्तविक अर्थों को
और यह कि अभी भी
कविता की ज़रूरत है
और अभी भी लड़ना उतना ही ज़रूरी है।
हमें उस जमीन की निराई-गुड़ाई करनी है,
दीमकों से बचाना है
जहां अंकुरायेंगी उम्मीदें
जहां सपने जागेंगे भोर होते ही,
स्मृतियां नई कल्पनाओं को पंख देंगी
प्रतीक्षाएं फलीभूत होंगी
योजनाओं में
और अंधेरे की चादर फाड़कर
एकदम सामने आ खड़ी होगी
एक मुकम्मल नई दुनिया।

(सितम्बर-दिसम्बर 1996)

टिप्पणियां, नवीं कविता के लिए

1. चीन के होपइ प्रांत में **येनशान** पर्वतमाला की तलहटी में स्थित **शाशिहयू** नामक छोटे से पहाड़ी गांव की किसान जनता ने **सांस्कृतिक क्रान्ति** के वर्षों के दौरान ऐसा करके उस मूर्ख बूढ़े की लोकगाथा को एक बार फिर चरितार्थ कर दिखाया था जिसने पहाड़ खोदकर हटा देने के असंभवप्राय कार्य को अपने अदम्य संकल्प से संभव कर दिखाया था।

2. चीन की **सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति** के दौरान आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में यह नारा दिया गया था, **''उद्योग के क्षेत्र में ताचिङ से सीखो और कृषि के क्षेत्र में ताचाइ से।''** समाजवादी निर्माण की संशोधनवादी कार्यदिशा के विपरीत **माओ** ने **''वर्ग संघर्ष को कमान में रखकर उत्पादन को आगे बढ़ाओ''** का नारा दिया था और इसे ही व्यवहार में लागू करते हुए उद्योग और कृषि के क्षेत्र में क्रमशः ताचिङ और ताचाइ के समाजवादी कम्यून-आधारित उपक्रम खड़े हुए थे जिनकी चमत्कारी उपलब्धियों को पश्चिमी मीडिया ने भी स्वीकार किया था। ताचाइ और ताचिङ समाजवादी समष्टि की सर्जनात्मकता की महाकाव्यात्मक गाथा के रूप में अविस्मरणीय हैं।

3. यहां कुर्दिस्तान, बोस्निया और रवांडा में साम्राज्यवादी षड्यंत्रों और इन देशों के शासक वर्गों के आपसी झगड़ों एवं दुरभिसंधियों के परिणामस्वरूप नब्बे के दशक में हुए भीषण गृहयुद्धों और नरसंहारों की ओर इंगित किया गया है।

4. **एण्डीज** पर्वतमाला लातिनी अमेरिकी देश **पेरू** के एक छोर से दूसरे छोर तक रीढ़ की हड्डी के समान फैली है। यहां मंतव्य पेरू में जारी मुक्तिसंघर्ष से है, जिसे पूरी ताकत झोंककर भी अमेरिका कुचल नहीं पाया है।

5. 1917 की **अक्टूबर क्रान्ति** के दौरान शीतप्रासाद पर ऐतिहासिक धावे की शुरुआत अव्रोरा युद्धपोत से तोप का गोला दागकर संकेत देने के बाद हुई थी।

6. **गोर्की** का प्रसिद्ध गद्यगीत **'तूफानी पितरेल पक्षी का गीत।'**

7. चीनी क्रान्ति के इतिहास और क्रान्तिकारी साहित्य में चिङकाङशान पर्वत एक प्रतीक चिन्ह बन चुका है। चिङकाङशान में ही पहली बार देहाती आधार इलाकों का निर्माण हुआ था, भूमि क्रान्ति के प्राथमिक प्रयोग हुए थे और लाल सेना का जन्म हुआ था। उसी दौरान 1928 के शरद में **माओ** ने **'चिङकाङशान'** नामक प्रसिद्ध कविता लिखी थी। मई 1965 में पुनः माओ ने एक कविता लिखी : **'चिङकाङशान पर फिर से चढ़ते हुए।'** यह वह समय था जब विश्व स्तर पर ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध चीन की पार्टी का घनघोर वैचारिक संघर्ष चल रहा था और दूसरी ओर चीन में भी पूंजीवादी पथगामियों के विरुद्ध सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का फैसलाकुन संघर्ष छिड़ने ही वाला था। चिङकाङशान पर फिर से चढ़ने की बात करते हुए माओ ने वस्तुतः एक नई क्रान्ति का आवाहन किया था।

8. पाश के शब्द, उनकी डायरी से।

9. पाश के शब्द, उनकी डायरी से

●

बुद्धिजीवी

○ अन्तोनियो ग्राम्शी

अन्तोनियो ग्राम्शी (1891-1937) इटली की कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक और एक महत्वपूर्ण मार्क्सवादी विचारक थे। क्रान्तिकारी गतिविधियों के लिए फासिस्ट अदालत ने 1928 में ग्राम्शी को 20 वर्ष की कैद की सजा दी। ग्राम्शी ने इस शताब्दी के तीसरे दशक में यूरोप की कुछ कम्युनिस्ट पार्टियों में फैले हुए दक्षिणपंथी भटकाव—यंत्रवादी दर्शन का पर्दाफाश करने में अहम भूमिका निभाई। यद्यपि ग्राम्शी की कुछ अवधारणाएं आज विवादास्पद मानी जाती हैं, कुछ हद तक उनके चिन्तन में अमूर्तता के तत्व भी मौजूद हैं, तथा उनकी कुछ स्थापनाएं परिकल्पना (हाइपोथीसिस) के दायरे से आगे नहीं जातीं, पर यह तथ्य निर्विवाद है कि दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद की कतिपय प्रमुख समस्याओं की सारगर्भित व्याख्या-विवेचना प्रस्तुत की। उन्होंने मूलाधार और अधिरचना तथा सर्वहारा वर्ग और बुद्धिजीवी समुदाय के परस्पर सम्बन्धों की छानबीन की तथा विचारधारा (दर्शन, कला, नीति-आचार आदि) की सापेक्षिक स्वतंत्रता का गहन विश्लेषण किया। इतालवी संस्कृति का उनके द्वारा किया गया अध्ययन, कैथोलिकवाद, दर्शन (क्रोचे) और समाजशास्त्र में प्रत्ययवादी सिद्धान्तों की उनके द्वारा की गई आलोचना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

*ग्राम्शी का प्रतिनिधि लेखन **'जेल की नोटबुकें'** (Quaderni del corcere) में संकलित है, जिसके कुछ चुने हुए अंशों को **क्विण्टिन होअरे** और **ज्योफ्रे नोवेल स्मिथ** (Quintin Hoare and Geoffrey Nowell Smith) ने अंग्रेजी में अनूदित और संपादित किया है जिसे **ओरिएण्ट लांगमैन** ने **'सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स ऑफ अन्तोनियो ग्राम्शी'** शीर्षक से प्रकाशित किया है।*

प्रस्तुत निबंध उपरोक्त संकलन से ही लिया गया है। निबंध का अनुवाद ग्राम्शी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली की विशिष्टता के कारण काफी हद तक अंग्रेजी अनुवादकों के लिए भी दुष्कर रहा है और हमारे लिए भी। पाठकों की सुविधा के लिए हम होअरे और स्मिथ की भूमिका भी यहां प्रकाशित कर रहे हैं।

लेख में जो पाद-टिप्पणियां तारांकित (*) हैं, वे स्वयं ग्राम्शी की हैं। अंकों के क्रम में दी गई पाद-टिप्पणियां पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के अनुवादक व सम्पादक होअरे और स्मिथ की हैं। — सम्पादक

भूमिका

बुद्धिजीवियों के निर्माण के बारे में **ग्राम्शी** का केन्द्रीय तर्क सरल-सीधा है। वर्ग से स्वतंत्र एक अलग सामाजिक कोटि के रूप में "बुद्धिजीवियों" की धारणा एक मिथ है। बुद्धि रखने और उसका इस्तेमाल करने के लिहाज से सारे के सारे मनुष्य अन्तर्निहित तौर पर बुद्धिजीवी तो होते ही हैं, परन्तु सामाजिक कार्यवाही के लिहाज से सारे के सारे मनुष्य बुद्धिजीवी नहीं होते। कार्यवाही के लिहाज से बुद्धिजीवियों के दो समूह बनते हैं। पहले समूह में "परम्परागत" पेशेवर बुद्धिजीवी, साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि आते हैं, जिनकी सामाजिक अवस्थिति ऐसी होती है जो अपने इर्दगिर्द एक निश्चित अन्तरवर्गीय परिवेश का आभास देती है, हालांकि उनकी यह अवस्थिति अन्ततः अतीत और वर्तमान के वर्ग-सम्बन्धों से ही प्राप्त हुई होती है, जो विविध ऐतिहासिक वर्ग-संरचनाओं के साथ उनके सम्बन्ध पर पर्दा डालने का काम करती है। दूसरे समूह में "अंगभूत" (आर्गेनिक) बुद्धिजीवी आते हैं, जो एक विशिष्ट बुनियादी सामाजिक वर्ग के चिन्तनशील और संगठनकारी तत्व होते हैं। इन बुद्धिजीवियों का पेशा अपने वर्ग-चरित्र के अनुरूप कुछ भी हो सकता है, फिर भी ये अंगभूत तौर पर जिस वर्ग के बुद्धिजीवी होते हैं, उसकी धारणाओं और आकांक्षाओं को निर्देशित करने की अपनी कार्यवाही द्वारा ही अधिक जाने जाते हैं, बनिस्बत अपने पेशे के।

इस अति मौलिक वर्गीकरण के निहितार्थ **ग्राम्शी** के चिन्तन के सभी पहलुओं में व्याप्त हैं। दार्शनिक तौर पर इनका सम्बन्ध इस प्रस्थापना (देखें पृ. 323, 'सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स') से जुड़ जाता है कि "सभी मनुष्य दार्शनिक होते हैं", और एक संस्कृति विशेष के भीतर इनका सम्बन्ध दार्शनिक विचारों एवं विचारधारा के बारे में **ग्राम्शी** के समूचे विचार-विमर्श और प्रचार-प्रसार से भी है। इनका सम्बन्ध बौद्धिक कार्यवाही के जनतांत्रिक चरित्र और साथ ही स्कूलों के जरिये बुद्धिजीवियों के निर्माण के वर्ग-चरित्र पर जोर देने वाले **ग्राम्शी** के **शिक्षा** सम्बन्धी विचारों (देखें पृ. 26-43 'सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स') से भी है। इनके अतिरिक्त इतिहास सम्बन्धी और खासतौर से *रिसॉर्जिमेण्टो (Resorgimento)* सम्बन्धी उनके अध्ययन में भी ये निहितार्थ आधारभूत तौर पर मौजूद हैं, जिनके नाते **ग्राम्शी** बुद्धिजीवियों को इस शब्द के व्यापक अर्थ में, वर्ग-शक्तियों के संघर्ष में एक अनिवार्य मध्यस्थताकारी भूमिका अदा करते हुए देखते हैं।

लेकिन, शायद, इन निहितार्थों में से सबसे महत्वपूर्ण निहितार्थ राजनीतिक संघर्ष के लिए ही हैं। **काउत्स्की** के नक्शे-कदम पर चलने वाले **सामाजिक जनवाद** में **समाजवादी** आन्दोलन के दौरान, मजदूरों और बुद्धिजीवियों के बीच के सम्बन्ध को औपचारिक और यांत्रिक ढंग से लेने की प्रवृत्ति दिखायी देती रही, जिसके चलते बुद्धिजीवी—बुर्जुआ वर्ग से आये शरणार्थी—गैर-बुद्धिजीवियों अर्थात मजदूरों के एक जनाधार के लिए सिद्धान्त एवं

विचारधारा (और प्राय: नेतृत्व भी) देने का काम करते रहे। आन्दोलन के भीतर इस प्रकार के श्रम विभाजन का **लेनिन** ने जबर्दस्त प्रतिवाद किया, और ***क्या करें? (ह्वाट इज टु बी डन)*** में घोषित किया कि क्रान्तिकारी पार्टी के भीतर "मजदूरों और बुद्धिजीवियों के बीच इस तरह के सारे विभेद..... निश्चय ही खत्म किये जाने चाहिए।" बुद्धिजीवियों की समस्या को लेकर **लेनिन** का दृष्टिकोण हरावल पार्टी के उनके सिद्धान्त के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है, और जब वह इस आवश्यकता के बारे में लिखते हैं कि मजदूर वर्ग में समाजवादी चेतना बाहर से लायी जानी चाहिए, तो इसके लिए वह जिस माध्यम की अपेक्षा करते हैं वह परम्परागत बुद्धिजीवी समुदाय नहीं बल्कि स्वयं क्रान्तिकारी पार्टी ही है, जिसके भीतर बुर्जुआ मूल के पहले के मजदूर और पहले के पेशेवर बुद्धिजीवी एक अकेली सुसम्बद्ध इकाई के रूप में संयुक्त हो चुके होते हैं। **ग्राम्शी** इस **लेनिनवादी** निरूपण को एक नये ढंग से आगे बढ़ाते हैं, और इसे समूचे मजदूर वर्ग की समस्याओं से जोड़ देते हैं। मजदूर वर्ग, अपने पूर्ववर्ती बुर्जुआ वर्ग की भांति ही, अपनी कतारों के भीतर से, अपने निजी अंगभूत (ऑर्गेनिक) बुद्धिजीवी और राजनीतिक पार्टी की कार्यवाही विकसित कर लेने में समर्थ होता है, और यह कार्यवाही चाहे जन-कार्यवाही हो या हरावल की, इन अंगभूत बुद्धिजीवियों की गतिविधि को प्रणालीकृत करने तथा अपने वर्ग और परम्परागत बुद्धिजीवी समुदाय के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करने की ही कार्यवाही होती है। मजदूर वर्ग के अंगभूत बुद्धिजीवी, एक तरफ, उत्पादन और संगठन में अपनी भूमिका के द्वारा जाने जाते हैं, तो दूसरी तरफ, **पार्टी** केन्द्रित अपनी "निर्देशकीय" राजनीतिक भूमिका के द्वारा। इस सचेत भूमिका में उतर कर, और अपेक्षाकृत अधिक प्रबुद्ध बुर्जुआ बौद्धिक संस्तरों के विचारों एवं कार्यकर्ताओं की मदद लेकर ही सर्वहारा वर्ग रक्षात्मक निगमवाद (कारपोरेटिज्म) और अर्थवाद से निजात पाकर, अपने वर्चस्व (हेजेमनी) की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

– क्विण्टिन होअरे और ज्योफ्रे नोवेल स्मिथ

(संपादक एवं अनुवादक, ***'सेलेक्शंस फ्राम द प्रिजन नोटबुक्स ऑफ अन्तोनियो ग्राम्शी'***; ओरिएण्ट लांगमैन, प्रथम भारतीय संस्करण, 1996)

बुद्धिजीवियों का निर्माण

क्या बुद्धिजीवी एक स्वायत्त और स्वतंत्र सामाजिक समूह होते हैं, या यह कि क्या प्रत्येक सामाजिक समूह के पास बुद्धिजीवियों की अपनी खास विशिष्टीकृत कोटि होती है? यह एक जटिल प्रश्न है, कारण कि बुद्धिजीवियों की विभिन्न कोटियों का निर्माण करने वाली वास्तविक ऐतिहासिक प्रक्रिया समय के साथ भिन्न-भिन्न रूप धारण करती आयी है।

इनमें से दो सबसे महत्वपूर्ण रूप हैं:

1. प्रत्येक सामाजिक समूह जब आर्थिक उत्पादन की दुनिया में एक अनिवार्य कार्यवाही के बुनियादी मंच पर पदार्पण करता है तो अपने साथ साथ, अपने अंग के तौर पर, बुद्धिजीवियों के एक या कई संस्तरों[1] को जन्म देता है, जो इसे एक समरसता प्रदान करते हैं तथा केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी, इसे अपनी स्वयं की कार्यवाही के प्रति सचेत बनाते हैं। एक पूंजीवादी उद्यमी अपने साथ साथ औद्योगिक तकनीशियन, राजनीतिक अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ, तथा एक नयी संस्कृति और एक नयी कानून-व्यवस्था आदि के संगठनकर्ता भी पैदा करता है। यहां गौरतलब है कि यह उद्यमी स्वयं में एक उच्चतर स्तर के सामाजिक विकास का प्रतिनिधित्व करता है, और पहले ही से एक निश्चित नेतृत्वकारी [*dirigente*][2] और तकनीकी (अर्थात बौद्धिक) क्षमता से लैस होता है; उसे केवल अपनी गतिविधि और पहलकदमी के सीमित क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी, एक निश्चित तकनीकी क्षमता रखनी होती है, और कम से कम उन क्षेत्रों में तो अवश्य ही रखनी होती है, जो आर्थिक उत्पादन के साथ सबसे घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। उसे जन-समुदायों का एक संगठनकर्ता होना आवश्यक होता है, साथ ही यह भी जरूरी है कि वह अपने व्यवसाय के निवेशकर्ताओं और अपने उत्पाद आदि के उपभोक्ताओं के "विश्वास" का भी एक संगठनकर्ता हो।

अब यदि सभी के सभी उद्यमी नहीं, तो कम से उनमें से एक *विशिष्ट वर्ग (एलीट)* तो ऐसा होना ही चाहिए जो राजकीय तंत्र तक के अपने कारोबार के समूचे जटिल तामझाम समेत, आम तौर पर, पूरे समाज का एक संगठनकर्ता बनने की क्षमता रखता हो, जिसकी जरूरत इसलिए पड़ती है कि उसे अपने वर्ग के विस्तार के लिए सबसे अनुकूल परिस्थितियां तैयार करनी होती हैं, या कम से कम इतना तो अवश्य ही होना चाहिए कि ये उद्यमी ऐसे प्रतिनिधियों (विशिष्टीकृत कर्मचारियों) का चयन कर सकें, जिन पर स्वयं उनके व्यवसाय के बाहर के सम्बन्धों की सामान्य व्यवस्था को संगठित करने की इस गतिविधि की जिम्मेदारी विश्वासपूर्वक सौंपी जा सके। ऐसा देखने में आता है कि प्रत्येक नया वर्ग, जो अपने साथ साथ जिन "अंगभूत" (आर्गेनिक) बुद्धिजीवियों को पैदा करता है और अपने विकास-क्रम में आगे बढ़ाता है, वे इस नये वर्ग द्वारा विकसित अपनी नयी सामाजिक किस्म की आदिम गतिविधि के आंशिक पहलुओं के "विशिष्टीकरणों" में ही ज्यादा से ज्यादा लिप्त रहते हैं।*

सामंती स्वामी भी एक खास तकनीकी क्षमता, यानी सैनिक क्षमता रखते थे, और जब से कुलीनतंत्र ने अपनी तकनीकी-सैनिक क्षमता का एकाधिकार खोना शुरू किया, ठीक तभी से सामन्तवाद का संकट भी शुरू हो गया। लेकिन सामंती दुनिया और उसकी पूर्ववर्ती दुनिया में बुद्धिजीवियों के निर्माण का सवाल एक अलग से जांच-पड़ताल की दरकार रखता है: यह निर्माण जिन-जिन तरीकों और साधनों से हुआ उनका एक ठोस अध्ययन आवश्यक है। यहां पर उल्लेखनीय है कि किसान समुदाय उत्पादन की दुनिया में एक अनिवार्य कार्य सम्पन्न करते हुए भी, अपने "अंगभूत" बुद्धिजीवी स्वयं नहीं विकसित करता, और न ही यह "परम्परागत" बुद्धिजीवियों के किसी संस्तर को "आत्मसात"

[1] **मोस्का** की कृति *Elementi di Scienza Politica* (नया परिवर्द्धित संस्करण, 1923) इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है। **मोस्का** का तथाकथित "राजनीतिक वर्ग"[3] प्रभुत्वशाली सामाजिक समूह की बौद्धिक कोटि के अलावा और कुछ नहीं है। **मोस्का** की "राजनीतिक वर्ग" की अवधारणा को **पैरिटो** की *एलीट* की अवधारणा के साथ जोड़ा जा सकता है, जो बुद्धिजीवियों की ऐतिहासिक परिघटना तथा राज्य और समाज के जीवन में उनके कार्य की व्याख्या करने का एक और प्रयास है। **मोस्का** की यह किताब एक समाजशास्त्रीय और प्रत्यक्षवादी चरित्र का भारी गड़बड़झाला है, साथ ही इसमें तात्कालिक राजनीति का पक्षपात भी है जो साहित्यिक दृष्टि से, इसे कम ग्राह्य और कम सजीव बना देता है।

करता है, हालांकि यह किसान समुदाय ही है जिससे अन्य सामाजिक समूह अपने तमाम बुद्धिजीवी विकसित करते हैं, तथा परम्परागत बुद्धिजीवियों की एक भारी जमात भी किसानी मूल से ही पैदा होती है।[1]

2. बहरहाल, प्रत्येक "अनिवार्य" सामाजिक समूह जो अपनी पूर्ववर्ती सामाजिक संरचना से, इतिहास में प्रकट होता रहा है, और कि जो इस संरचना के ही विकास को अभिव्यक्त करता रहा है, पहले से ही मौजूद बुद्धिजीवियों की कोटियां प्राप्त कर लेता रहा है (कम से कम अब तक के समूचे इतिहास में तो यही हुआ है), जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह वस्तुत: उस ऐतिहासिक निरन्तरता का ही प्रतिनिधित्व करता है जो यहां तक कि राजनीतिक और सामाजिक रूपों में होने वाले अत्यंत जटिल और उग्र परिवर्तनों से भी बाधित नहीं होती।

बुद्धिजीवियों की इन कोटियों में से सबसे विशिष्ट कोटि पादरियों की है जिन्होंने ढेर सारी महत्वपूर्ण कार्यवाहियों, जैसे धार्मिक विचारधारा, अर्थात् युग के दर्शन और विज्ञान पर, तथा इनके साथ-साथ स्कूलों, शिक्षा, नैतिकता, न्याय, दान-वृत्ति, सत्कार्य आदि पर, एक लम्बे समय तक अपना एकाधिकार जमाये रखा था (इतिहास का एक समूचा चरण किसी हद तक इसी एकाधिकार से विशिष्टीकृत रहा है)। पादरियों की इस कोटि को बुद्धिजीवियों की एक ऐसी कोटि माना जा सकता है जो भूस्वामित्व वाले कुलीनतंत्र का अंग रहा है। न्यायिक तौर पर इसकी हैसियत कुलीनतंत्र के समकक्ष रही है, जिसके साथ मिलकर इसने भूमि का सामन्ती स्वामित्व हासिल कर रखा था, तथा सम्पत्ति से जुड़े राजकीय विशेषाधिकारों को इस्तेमाल करने का हक भी इसे हासिल था।* बहरहाल, अधिरचनात्मक क्षेत्र** में पादरियों द्वारा हासिल किया गया यह एकाधिकार बिना संघर्ष या सीमाओं के ही लागू नहीं होता रहा है, और यही कारण है कि राजा की बढ़ती केन्द्रीय सत्ता के सहयोग और समर्थन से, विविध रूपों में, दूसरी कोटियां भी (जिनका ठोस अध्ययन किया जाना आवश्यक है) उत्पन्न और विकसित होती रही हैं, और यह सिलसिला निरंकुश सत्ताओं के दौर तक चलता रहा है। इस प्रकार *noblesse de role* की एक पूरी जमात पैदा हो गयी, जिसके अपने विशेषाधिकार थे, जिसमें प्रशासकों के एक संस्तर के साथ-साथ विद्वान और वैज्ञानिक, सिद्धान्तकार, गैर-पादरी दार्शनिक, आदि शामिल थे।

चूंकि परम्परागत बुद्धिजीवियों की ये विविध कोटियां अपनी अबाधित ऐतिहासिक निरन्तरता और अपनी विशिष्ट योग्यता का एहसास एक "esprit de corps" (संघ भावना) की मार्फत करती हैं, इसीलिए ये अपने आपको प्रभुत्वशाली सामाजिक समूह से स्वायत्त और स्वतंत्र समझने लगती हैं। अपने बारे में अपने द्वारा किया गया यह मूल्यांकन विचारधारात्मक और राजनीतिक क्षेत्र को प्रभावित किये बिना नहीं रहता, और इसके नतीजे व्यापक महत्व के होते हैं। पूरे के पूरे भाववादी दर्शन को, बुद्धिजीवियों के सामाजिक संश्रय द्वारा धारण की गयी इस अवस्थिति के साथ, आसानी से जोड़ा जा सकता है और इसे उस सामाजिक यूटोपिया की अभिव्यक्ति के तौर पर भी परिभाषित किया जा सकता है जिसकी बदौलत बुद्धिजीवी अपने आपको अपनी एक "स्वतंत्र" और स्वायत्त खासियत आदि से सम्पन्न समझने लगते हैं।

लेकिन एक बात गौरतलब है कि यदि **पोप** और **चर्च** के अग्रणी धर्माधिकारी अपने आपको, **एग्नेली** और **बेन्नी**[2] के सीनेटर से जुड़े होने से कहीं अधिक, **ईसामसीह** और **ईसाई** धर्म के प्रचार से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं, तो ठीक यही बात, उदाहरण के तौर पर, **जेण्टाइल** और **क्रोशे** के बारे में नहीं कही जा सकती: **क्रोशे** अपने आपको खासतौर से **अरस्तू** और **प्लेटो** के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ मानता है, फिर भी, दूसरी तरफ वह **एग्नेली** और **बेन्नी** के सीनेटरों के साथ अपने जुड़ाव को भी छिपाता नहीं, और ठीक इसी बिन्दु पर **क्रोशे** के दर्शन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशिष्टता प्रकट होती है।

"बुद्धिजीवी" शब्द को स्वीकार करने की अधिकतम सीमा क्या है? क्या कोई एक ऐसी अकेली कसौटी हो सकती है, जिसके आधार पर बुद्धिजीवियों की सारी की सारी विविध और असमान गतिविधियों का समान रूप से चरित्र-चित्रण किया जा सके, और साथ ही, इन्हें अन्य सामाजिक समूहों की गतिविधियों से अनिवार्य तौर पर अलग पहचाना जा सके? इसमें पद्धति की जो सबसे प्रचलित गलती मुझे मालूम पड़ती है वह यह है कि इसके तहत विभेदीकरण की ऐसी कसौटी की तलाश बौद्धिक गतिविधियों की अन्तर्निहित प्रकृति में की जाती है, न कि सम्बन्धों की प्रणाली के उस समुच्चय में, जिसके अन्तर्गत ये गतिविधियां (और इनके वाहक बौद्धिक समूह) सामाजिक सम्बन्धों के सामान्य संश्रय के भीतर अपना स्थान पाती हैं। बेशक, मिसाल के तौर पर, मजदूर या सर्वहारा, अपने शरीर से या औजारों के साथ काम करने की वजह से ही खासतौर पर अभिचिन्हित नहीं होता, बल्कि विशिष्ट दशाओं और विशिष्ट सामाजिक सम्बन्धों के अंतर्गत काम करने की वजह से अभिचिन्हित होता है (जो इस बात के अतिरिक्त है कि कोई भी शारीरिक श्रम विशुद्ध रूप से शारीरिक नहीं होता और यहां कि **टेलर** का "प्रशिक्षित छापामार" मुहावरा भी एक निश्चित दिशा में किसी भी शारीरिक श्रम की एक सीमा का संकेत करने के लिए ही, लाक्षणिक तौर पर, प्रयोग किया गया है: चाहे वह श्रम निहायत घटिया किस्म का और यांत्रिक ही क्यों न हो, लेकिन उसमें भी एक न्यूनतम तकनीकी योग्यता, यानी एक न्यूनतम सृजनशील बौद्धिक गतिविधि तो दरकार होती ही है।) और हम इस बात से पहले ही वाकिफ हो चुके हैं कि एक उद्यमी को, अपने कारोबार की वजह से ही, एक बौद्धिक प्रकृति की कुछ न कुछ निश्चित योग्यताएं किसी न किसी हद तक रखनी ही होती हैं, भले ही समाज में उसकी भूमिका इनके द्वारा नहीं, बल्कि उन सामान्य सामाजिक सम्बन्धों द्वारा निर्धारित हो, जो उद्योग के भीतर उद्यमी की अवस्थिति को खासतौर से अभिचिन्हित करते हैं।

चूंकि सभी मनुष्य बुद्धिजीवी होते हैं, अत: इस पर एतराज करते हुए कोई यह भी कह सकता है कि समाज में सारे के सारे लोग बुद्धिजीवी का ही काम नहीं करते।*

---

* पादरियों को कोटि के बाद एक बुद्धिजीवियों की सम्भवत: एक दूसरी महत्वपूर्ण कोटि, जो आदम समाजों में अपनी प्रतिष्ठा और सामाजिक कार्यवाही के लिए जानी जाती रही है, व्यापक अर्थों में *चिकित्सकों* की कोटि रही है,जो उन सारे लोगों की एक कोटि रही है जो मौत और बीमारी से "लड़ते" या लड़ते प्रतीत होते रहे हैं। इसकी तुलना **आर्तुरो कार्स्टगलिओनी** की *Storia della medicina* से की जा सकती है। यहां गौरतलब है कि धर्म और चिकित्सा के बीच एक सम्बन्ध रहा है, और कुछ खास क्षेत्रों में तो अभी भी है: जैसे कुछ निश्चित सांगठनिक कामों के लिए अस्पतालों का धार्मिक संस्थाओं के हाथ में होना, इस तथ्य के बावजूद कि वहां पर डॉक्टर भी हैं और वहीं पर पादरी भी हैं (जो झाड़-फूंक आदि विविध रूपों में मदद करते हैं)। कई बड़े धार्मिक व्यक्तियों को महान "चिकित्सक" माना जाता रहा है, और अभी भी माना जाता है: जिसके पीछे चमत्कार, यहां तक कि मरने के बाद फिर जी उठने की धारणा काम करती रही है, और अभी भी करती है। यहां तक कि राजाओं के मामले में तो यह विश्वास लम्बे समय तक चलता रहा है कि वे सिर्फ हाथ से स्पर्श आदि कर देने से ही स्वास्थ्य लाभ करा देते थे।

** इससे रोमन मूल की कई भाषाओं में या चर्च की **लैटिन** के माध्यम से रोमन भाषाओं से भारी रूप में प्रभावित होकर "बुद्धिजीवी" या "*Chirrico*" शब्द (क्लर्क, क्लर्क सम्बन्धी) के "विशेषज्ञ" का सामान्य अर्थ निकलता है, तथा इससे सम्बन्धित शब्द "*Laico*" (जाहिल, गंवार, घटिया, गैर विशेषज्ञ का अर्थ देता है।)

जब कोई व्यक्ति बुद्धिजीवी और गैर बुद्धिजीवी में फर्क करता है, तब उसका आशय केवल उस तात्कालिक सामाजिक कार्य से होता है जिसे बुद्धिजीवियों की पेशेवर कोटि सम्पन्न करती है, अर्थात् उसके दिमाग में वह दिशा होती है जिसमें काम करने वाले की विशिष्ट पेशेवर गतिविधि अहमियत रखती है, चाहे वह दिशा बौद्धिक विकास की हो या विशुद्ध शारीरिक प्रयास (muscular-nervous effort) की। इसका मतलब यह है कि हम बुद्धिजीवियों की बात तो कर सकते हैं, पर गैर बुद्धिजीवियों की बात नहीं कर सकते, कारण कि गैर बुद्धिजीवी होते ही नहीं। अब चूंकि बौद्धिक दिमागी विकास के प्रयासों और मांसपेशीगत नाड़ीगत (muscular-nervours effort) प्रयास के बीच के सम्बन्ध भी हमेशा एक जैसे नहीं रहते, इसलिए विशिष्ट बौद्धिक गतिविधि भी भिन्न भिन्न मात्राओं में पायी जाती है। कोई भी ऐसी मानवीय गतिविधि नहीं हो सकती जिससे बौद्धिक भागीदारी के प्रत्येक रूप को अलग किया जा सके: ***होमो फैबर को होमोसैपियन्स*** से अलग नहीं किया जा सकता।[7] अन्ततः हर आदमी, अपनी पेशेवर गतिविधि से बाहर, किसी न किसी रूप में बौद्धिक गतिविधि करता रहता है, चाहे वह "दार्शनिक" हो, कलाकार हो, या एक सुरुचिसम्पन्न व्यक्ति; वह इस दुनिया के बारे में एक खास अवधारणा में भागीदारी करता ही है; उसकी नैतिक आचरण सम्बन्धी अपनी एक सचेत नीति होती है, और इस प्रकार वह इस दुनिया के बारे में या तो एक अवधारणा को बनाये रखने में भागीदारी करता है या उसमें कोई परिवर्तन करने में, अर्थात् चिन्तन की नयी नयी प्रणालियां विकसित करने में भागीदारी करता है।

अतः बुद्धिजीवियों का एक नया संस्तर निर्मित करने का सवाल प्रत्येक मनुष्य में विकास के एक निश्चित स्तर तक मौजूद उसकी बौद्धिक गतिविधि को एक आलोचनात्मक विस्तार देने, मांसपेशीगत नाड़ीगत प्रयास के साथ उसके सम्बन्ध को एक नये संतुलन की दिशा में ढालने, तथा यह सुनिश्चित करने का सवाल है कि स्वयं यह नाड़ीगत पेशीगत प्रयास ही, जो कि एक सामान्य व्यावहारिक गतिविधि का एक बुनियादी उपक्रम है, जो निरन्तर इस भौतिक एवं सामाजिक जगत का नवाचार करता रहता है, इस दुनिया की एक नयी और समग्र अवधारणा का भी बुनियादी आधार बना रहे। चूंकि साहित्यकारों, दार्शनिकों एवं कलाकारों के चलते परम्परागत और साधारण किस्म के बुद्धिजीवी पैदा होते ही रहते हैं, इसलिए पत्रकार भी, जो अपने आप को साहित्यकार, दार्शनिक और कलाकार होने का दावा करते हैं, स्वयं को "सच्चा" बुद्धिजीवी ही कहते हैं। आधुनिक दुनिया में, तकनीकी शिक्षा, जो कि औद्योगिक श्रम के साथ, यहां तक कि सबसे आदिम और अकुशल स्तर पर भी, जुड़ी हुई है, निश्चय ही नये किस्मके बुद्धिजीवी का आधार निर्मित करने वाली है।

इसी आधार पर *Ordine Nuovo*[8] नामक साप्ताहिक पत्रिका में नये बुद्धिवाद के कुछ निश्चित रूप विकसित करने और इनकी नयी अवधारणाएं निरूपित करने का काम किया गया था, परन्तु ये सब बातें इसकी सफलता का तनिक भी कारण न थीं, कारण कि ऐसी अवधारणा तो जीवन के वास्तविक रूपों में छिपी आकांक्षाओं से ही उत्पन्न होती है और उन्हीं से मेल खाती है। अब नये बुद्धिजीवी के अस्तित्व में आने का ढंग मुखरता में निहित नहीं रह गया है, जो कि भावनाओं और मनोवेगों का एक बाहरी और क्षणिक उत्प्रेरक भर है, बल्कि अब तो यह निर्माणकर्ता, संगठनकर्ता और "स्थायी कायलकर्ता" के रूप में व्यावहारिक जीवन की सक्रिय भागीदारी में निहित हो गया है; अब ऐसे बुद्धिजीवी महज वक्ता नहीं रह गये हैं (बल्कि इसके साथ-साथ इस अमूर्त गणितीय मिजाज से श्रेष्ठतर हो चुके हैं), अब तो प्रयाण-पथ काम के रूप में तकनीक से विज्ञान के रूप में तकनीक की ओर तथा इतिहास की मानवतावादी धारणा की ओर जा रहा है, जिसके बिना कोई भी "विशिष्टीकृत" ही बना रह जायेगा और "निर्देशकीय"[9] (विशिष्टीकृत और राजनीतिक) नहीं बन सकेगा।

इस प्रकार बौद्धिक कार्यवाही सम्पन्न करने के लिए विशिष्ट कोटियां ऐतिहासिक रूप से निर्मित हुई हैं। वैसे इनका निर्माण तो सभी सामाजिक समूहों के संदर्भ में हुआ है, परन्तु खासतौर से, और अधिक महत्वपूर्ण रूप से प्रभुत्वशाली समूह के सन्दर्भ में हुआ है, जिसके साथ ये कोटियां कहीं अधिक व्यापक और जटिल विस्तार पाती हैं। प्रभुत्व की दिशा में बढ़ते किसी भी समूह की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलाक्षणिक विशिष्टताओं में से एक विशिष्टता उसका संघर्ष है जो परम्परागत बुद्धिजीवियों को अपने में आत्मसात कर लेने और "विचारधारात्मक रूप से" जीत लेने के लिए चलता है और इस आत्मसातीकरण और जीत की रफ्तार उतनी ही तेज और उतनी ही प्रभावी होती है जितना कि इसकी दिशा में बढ़ रहा समूह अपने स्वयं के अंगभूत बुद्धिजीवियों को विस्तारित करने में सफल होता है।

मध्ययुगीन दुनिया के गर्भ से पैदा हुए समाजों में शिक्षा के कारोबार और संगठन में व्यापक अर्थों में जो भारी विस्तार हुआ है वह इस आधुनिक दुनिया में बौद्धिक कामों एवं कोटियों द्वारा हासिल किये गये महत्व का सूचक है। प्रत्येक व्यक्ति की "बौद्धिकता" को गहरा और व्यापक बनाने के प्रयास के साथ-साथ, विविध विशिष्टीकरणों की संख्या बढ़ाने और उनके दायरे को तंग से तंग करते जाने का भी प्रयास किया गया है। इसे सभी स्तरों पर शिक्षण-संस्थाओं से लगायत उन निकायों तक में देखा जा सकता है जो विज्ञान और तकनोलॉजी के सभी क्षेत्रों में तथाकथित "उच्च संस्कृति" को आगे बढ़ाने के नाम पर काम कर रहे हैं।

स्कूल ही वे माध्यम हैं जिनके जरिये विविध स्तरों के बुद्धिजीवी विकसित किये जाते हैं। विभिन्न राज्यों में बौद्धिक कामों की जटिलता, वस्तुगत तौर पर, विशिष्टीकृत स्कूलों की संख्या और स्तरीयता से आंकी जा सकती है। शिक्षा का "क्षेत्र" जितना ही विस्तृत होता जाता है और "नीचे से ऊपर की ओर" स्कूली शिक्षा के "स्तरों" की संख्या जितनी ही अधिक होती जाती है, एक राज्य विशेष की सांस्कृतिक दुनिया यानी सभ्यता भी उतनी ही जटिल होती जाती है। इसका एक तुलनीय बिन्दु औद्योगिक तकनोलॉजी के क्षेत्र में देखा जा सकता है: किसी देश का औद्योगीकरण इस बात से आंका जा सकता है कि वह मशीनों और मशीनों के उत्पादन के लिए आवश्यक मशीनों तथा उनके निर्माण में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों एवं पुनः उनके निर्माण के लिए आवश्यक और परिशुद्ध उपकरणों आदि के उत्पादन में कितना सक्षम है। जो देश प्रयोगात्मक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के उपकरणों के निर्माण में तथा इसमें प्रयुक्त होने वाले उपकरणों की जांच-पड़ताल करने वाले उपकरणों के निर्माण में सर्वोत्तम क्षमता से लैस होता है, उसे तकनीकी-औद्योगिक क्षेत्र में सबसे जटिल तथा उच्चतम सभ्यता-स्तर आदि से सम्पन्न समझा जाता है। ठीक यही बात बुद्धिजीवियों को तैयार करने और इस तैयारी के लिए समर्पित स्कूलों पर भी लागू होती है, यहां उच्च संस्कृति के स्कूलों और संस्थानों को एक दूसरे में समाविष्ट किया जा सकता है। इस क्षेत्र में भी मात्रा को गुण से अलग नहीं किया जा सकता। परिशुद्ध से परिशुद्ध तकनीकी-सांस्कृतिक विशिष्टीकरण में भी प्राथमिक शिक्षा के अधिकतम सम्भव विस्तार और माध्यमिक शिक्षा के स्तरों की संख्या में यथासंभव अधिकतम वृद्धि में अपेक्षित अधिकतम वृद्धि में अपेक्षित अधिकतम सतर्कता के बीच

* इस प्रकार, चूंकि ऐसा हो सकता है कि हर कोई किसी न किसी समय दो अण्डे तल लेता हो या अपने फटे जैकेट की सिलाई कर लेता हो, तो इसी आधार पर हम आवश्यक रूप से यह नहीं कह सकते कि हर कोई बावर्ची या दर्जी भी होता है।

एक तालमेल के बगैर काम नहीं चल सकता। स्वाभाविक है कि इसके तहत उच्चतम बौद्धिक योग्यताओं के चयन और विकास के लिए अधिकतम सम्भव व्यापक आधार प्रदान करने—अर्थात उच्च संस्कृति और उच्चस्तरीय तकनोलॉजी के लिए एक जनतांत्रिक ढांचा प्रदान करने—की जरूरत पड़ती है, जिसकी निश्चय ही अपनी दिक्कतें भी हैं: इसके चलते मध्यमवर्गीय बौद्धिक संस्तरों के बीच बेरोजगारी के भारी संकटों की संभावना भी पैदा हो जाती है और सचमुच सारे के सारे आधुनिक समाजों में ऐसा हो भी रहा है।

यहां गौरतलब है कि बौद्धिक संस्तरों का ठोस यथार्थ में विस्तार, अमूर्त जनतंत्र के धरातल पर नहीं, बल्कि बहुत ही ठोस परम्परागत ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के अनुसार होता है। संस्तर, विकसित हो जाने पर परंपरागत रूप से बुद्धिजीवी "पैदा" करने लगते हैं, और ये संस्तर उन संस्तरों से मेल खाते हैं जो "बचत" करने में विशिष्टीकरण हासिल कर चुके होते हैं, अर्थात निम्न और मध्यम शहरी बुर्जुआ वर्ग से। "आर्थिक" क्षेत्र में भिन्न भिन्न प्रकार के स्कूलों (क्लासिकीय और व्यावसायिक)[10] के विविध वितरण और इन संस्तरों के भीतर विभिन्न कोटियों की विविध महत्वाकांक्षाएं बौद्धिक विशिष्टीकरण की विभिन्न शाखाओं के पैदा होने को निर्धारित, या उन्हें रूप प्रदान करती हैं। इस प्रकार **इटली** में ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग, खासतौर से, राजकीय कर्मचारी और पेशेवर लोग पैदा करता है, जबकि शहरी बुर्जुआ वर्ग उद्योगों के लिए तकनीशियन पैदा करता है। नतीजतन, **उत्तरी इटली** ज्यादा से ज्यादा तकनीशियन पैदा करता है, जब कि **दक्षिणी इटली** राजकीय कर्मचारी और पेशेवर लोग पैदा करता है।

बुद्धिजीवियों और उत्पादन की दुनिया के बीच का सम्बन्ध उतना सीधा नहीं होता जितना सीधा यह बुनियादी सामाजिक समूहों के बीच होता है, बल्कि इनके बीच "मध्यवर्ती तौर पर" समाज का पूरा ताना-बना और अधिरचनाओं का एक जटिल संश्रय, विविध स्तरों पर मौजूद होता है, और बुद्धिजीवी, मुख्यतौर पर, इसी के "कर्ताधर्ता" होते हैं। विविध बौद्धिक संस्तरों की "अंगभूत गुणवत्ता" यानी "आर्गेनिक क्वालिटी" [*Organicita*] और एक बुनियादी सामाजिक समूह के साथ उनके जुड़ाव की मात्रा को मापना तथा नीचे से लेकर ऊपर तक (ढांचागत आधार से ऊपर की ओर) उनकी कार्यवाहियों और उनकी अधिरचनाओं का स्तर-क्रम निर्धारित करना, दोनों संभव हो सकता है। फिलहाल हम यह करें कि दो प्रमुख अधिरचनात्मक "स्तर" निर्धारित करें: एक, जिसे "नागरिक समाज" कहा जा सकता है, आमतौर पर "निजी" कहे जाने वाले निकायों का समुच्चय है, और दूसरा "राजनीतिक समाज" या **"राज्य"** है। ये दोनों स्तर, एक तरफ, प्रभुत्वशाली समूह द्वारा पूरे समाज पर कायम किये गये अपने "वर्चस्व" के अनुरूप होते हैं, तो दूसरी तरफ, ये **राज्य** और "वैधिक" सरकार के जरिए कायम किये गये "प्रत्यक्ष प्रभुत्व" या नियंत्रण के अनुरूप होते हैं। इनके कार्य मुख्यत: सांगठनिक और संयोजी होते हैं। बुद्धिजीवी प्रभुत्वशाली समूह के "प्रतिनिधि" होते हैं जो सामाजिक वर्चस्व और राजनीतिक सरकार के मातहती कामों को अंजाम देते हैं। ये काम हैं:

1. "स्वत:स्फूर्त" सहमति जो प्रभुत्वशाली बुनियादी समूह द्वारा सामाजिक जीवन पर आरोपित की गयी आम दिशा के लिए आबादी के भारी हिस्सों द्वारा प्रदान की जाती है; यह सहमति उत्पादन की दुनिया में प्रभुत्वशाली समूह द्वारा अपनी अवस्थिति और कार्यवाही की बदौलत "ऐतिहासिक रूप से अर्जित प्रतिष्ठा" (और तज्जनित विश्वास) के चलते प्राप्त होती है।

2. राज्य की दमनकारी सत्ता का उपकरण जो "कानूनी तौर पर" उन समूहों पर अनुशासन लागू करता है जो सक्रिय या निष्क्रिय किसी भी रूप से "सहमत" नहीं होते। लेकिन यह उपकरण समूचे समाज के लिए भी गठित होता है, कारण कि भविष्य में नियंत्रण और दिशा सम्बंधी संकट के ऐसे क्षण भी आ सकते हैं जब स्वत:स्फूर्त सहमति विफल हो जाये।

बुद्धिजीवी के सवाल को इस ढंग से पेश करने पर बुद्धिजीवी की अवधारणा में काफी विस्तार हो जाता है, लेकिन यही एकमात्र ऐसा ढंग भी है जो यथार्थ का ठोस आकलन करने में सक्षम बना सकता है। बेशक यह जाति की पूर्वधारणाओं से भी टकराता है। सामाजिक वर्चस्व और राजकीय प्रभुत्व को संगठित करने की कार्यवाही निश्चय ही एक खास प्रकार के श्रम-विभाजन और उसके फलस्वरूप ऐसी योग्यताओं की एक पूरी श्रेणीबद्धता पैदा करती है, जिनमें से कुछ योग्यताओं का निर्देशकीय या सांगठनिक कार्यवाहियों से कुछ लेना-देना नहीं होता। उदाहरण के लिए, सामाजिक और राजकीय संचालन के लिए शारीरिक श्रम और उपकरणों की मदद से किये जाने वाले ढेरों काम होते हैं (जो गैर-सरकारी काम होते हैं, जिनके करने वाले सरकारी कर्मचारी या कार्यकर्ता न होकर, बाहरी एजेण्ट होते हैं)[11]। स्पष्ट है कि इस तरह का विभेदीकरण करने की आवश्यकता उसी वक्त आ पड़ती है जब यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य विभेदीकरण भी आवश्यक हैं। बेशक, बौद्धिक गतिविधि में, उसकी अन्तर्निहित अभिलक्षणिकताओं को मद्देनजर रखते हुए उन स्तरों के अनुसार भी विभेदीकरण किया जाना चाहिए जो आत्यंतिक विरोध के क्षणों में एक वास्तविक गुणात्मक फर्क प्रदर्शित करते हैं यानी उच्चतम स्तर पर विविध विज्ञानों, दर्शन, कला आदि के प्रर्वतक हो सकते हैं, और निम्नतम स्तर पर पहले से चली आ रही, परम्परागत संचित बौद्धिक सम्पदा के साधारण "प्रशासक" और उद्घाटनकर्ता हो सकते हैं।*

आधुनिक दुनिया में, इस अर्थ में समझी जाने वाली बुद्धिजीवियों की यह कोटि एक अभूतपूर्व विस्तार पा चुकी है। जनतांत्रिक-नौकरशाही प्रणाली ने ढेरों ऐसे काम पैदा किये हैं जो सबके सब उत्पादन की सामाजिक जरूरतों के लिहाज से उचित नहीं ठहराये जा सकते, गो कि प्रभुत्वशाली बुनियादी समूह इन्हें राजनीतिक जरूरतों के तहत उचित ही ठहराता है। **लोरिया**[12] की अनुत्पादक "मजदूर" की अवधारणा यही है (जिस पर यह सवाल तो उठाया ही जा सकता है कि किनके लिए और किस उत्पादन-प्रणाली के लिए अनुत्पादक?)[13] जो अंशत: तभी उचित ठहरायी जा सकती है जब इस बात को मद्देनजर रखा जाय कि ऐसे मजदूर अपनी अवस्थिति का लाभ उठाकर राष्ट्रीय आय का एक भारी हिस्सा अपने लिए हथिया लेते हैं। जनसमुदायों के निर्माण के चलते व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से तथा व्यक्तिगत योग्यता के लिहाज से, यानी दोनों ही रूपों में, मानकीकृत हो चुके हैं और इससे भी वही परिघटनाएं पैदा हो चुकी हैं जो दूसरे मानकीकृत जनसमुदायों के चलते पैदा हुई हैं, प्रतियोगिता ने पेशों की सुरक्षा, बेरोजगारी, स्कूलों में अति उत्पादन, उत्प्रवासन आदि की समस्याओं को लेकर संगठनों को आवश्यक बना दिया है।

शहरी और ग्रामीण किस्म के बुद्धिजीवियों की अलग-अलग अवस्थितियां

शहरी किस्म के बुद्धिजीवियों का विकास उद्योग के साथ-साथ हुआ है और उनकी नियति उसी से जुड़ी हुई है। उनके कामों की तुलना सेना के मातहत अफसरों के कामों से की जा सकती है। निर्माण सम्बन्धी योजनाएं तैयार करने में इनकी कोई स्वायत्त पहलकदमी नहीं होती। इनका काम उद्यमी और कामगार समुदाय के बीच सम्बन्ध बनाये रखना तथा काम के शुरुआती चरणों की देखभाल करते हुए, औद्योगिक सामान्य स्टाफ द्वारा तैयार की गयी उत्पादन योजना को मौके पर लागू करना होता है। कुल मिलाकर, शहरी बुद्धिजीवी बहुत मानकीकृत होते हैं, जबकि उच्च पदों के शहरी बुद्धिजीवी स्वयं औद्योगिक सामान्य स्टाफ के साथ ज्यादा से ज्यादा सटे होते हैं।

ग्रामीण किस्म के बुद्धिजीवी ज्यादातर

"परम्परागत" होते हैं, अर्थात् वे ग्रामीण जनता के सामाजिक समुदाय और कस्बों (खासतौर से छोटे कस्बों) के निम्न बुर्जुआ वर्ग से जुड़े होते हैं। ये अभी पूर्ण विकसित होकर पूंजीवादी प्रणाली की रफ्तार में पूरी तरह से रचे नहीं हुए होते हैं। इस किस्म के बुद्धिजीवी किसान समुदायों को स्थानीय और राजकीय प्रशासन (वकील, नोटरी, आदि) के सम्पर्क में लाने का काम करते हैं। इस गतिविधि के कारण वे एक महत्वपूर्ण राजनीतिक सामाजिक काम एक साथ सम्पन्न करते हैं, कारण कि उनकी पेशागत मध्यस्थता को राजनीतिक मध्यस्थता से अलग करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में बुद्धिजीवियों (पादरी, वकील, नोटरी, अध्यापक, डॉक्टर आदि) का जीवन स्तर, कुल मिलाकर औसत किसानों के जीवन स्तर से ऊंचा या कम से कम भिन्न तो होता ही है, और इसीलिए वे एक ऐसा सामाजिक मॉडल बन जाते हैं जिसे हसरत भरी नजरों से देखते हुए किसान अपनी दीन दशा से उबरने या उसे सुधारने की कामना करने लगते हैं। किसान हमेशा यही सोचता है कि कम से कम उसका एक बेटा बुद्धिजीवी (खासतौर से पादरी) बन जाय, और इस प्रकार शेष समाज से अनिवार्यतः जुड़ने वाले सम्बन्धों का लाभ उठाकर एक भद्र व्यक्ति बन जाये तथा अपने आर्थिक जीवन को बेहतर बनाकर अपने परिवार के सामाजिक स्तर से ऊपर उठा दे। इस प्रकार बुद्धिजीवी के प्रति किसान का दृष्टिकोण दोहरा और प्रकटः विरोधाभासी होता है। वह बुद्धिजीवियों और आमतौर पर राजकीय कर्मचारियों की सामाजिक हैसियत को आदर की दृष्टि से देखता है, पर कभी कभी इसकी भर्त्सना भी करता है, जिसका मतलब यह है कि उसकी आदर भावना में ईर्ष्या और अधीरताभरी खीज के नैसर्गिक तत्व घुले मिले होते हैं। यदि बुद्धिजीवियों के आगे उसकी इस वास्तविक गौण स्थिति को ध्यान में न रखा जाये और उसकी गहराई में जाकर ठोस छानबीन न की जाये, तो किसान समुदाय के समष्टिगत जीवन और उसके भीतर खदबदा रहे विकास के जरासीम को बिल्कुल ही नहीं समझा जा सकता। किसान समुदाय का प्रत्येक अंगभूत विकास, एक निश्चित सीमा तक, बुद्धिजीवियों के बीच चलने वाली गतिविधियों से जुड़ा और उन्हीं पर निर्भर होता है।

परन्तु शहरी बुद्धिजीवियों के साथ मामला कुछ अलग है। फैक्टरी के तकनीशियन कामगार जन समुदायों के ऊपर कोई राजनीतिक दखल नहीं रखते, या कम से कम यह स्थिति तो अब पीछे छूट चुकी है। बल्कि, कभी कभी तो इसके ठीक विपरीत ही घटित होता रहता है, और कामगार जनसमुदाय, कम से कम अपने स्वयं के अंगभूत बुद्धिजीवियों के मार्फत, तकनीशियनों पर ही एक राजनीतिक प्रभाव डालते रहते हैं।

अब सवाल का केन्द्र बिन्दु प्रत्येक बुनियादी सामाजिक समूह की अंगभूत कोटि के बुद्धिजीवियों और परम्परागत कोटि के बुद्धिजीवियों के बीच फर्क करने के रूप में रह जाता है। इस फर्क से ही ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए समस्याओं और संभव सवालों का एक पूरा सिलसिला चल पड़ता है।

यहां सबसे दिलचस्प समस्या, जो इस दृष्टि से अध्ययन करने पर मालूम पड़ती है, आधुनिक राजनीतिक पार्टी, उसके असली उद्गम, उसके विकास और उसके द्वारा अख्तियार किये जाने वाले रूपों से सम्बन्धित है। यानी कि बुद्धिजीवियों की समस्या के सम्बन्ध में राजनीतिक पार्टी की चरित्रगत विशेषता क्या होती है? यहां पर कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक हैं:

1. कुछ सामाजिक समूहों के लिए राजनीतिक पार्टी सिर्फ उत्पादन की तकनीक के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि सीधे राजनीतिक और दार्शनिक क्षेत्र में भी अपने अंगभूत बुद्धिजीवियों की कोटि का अपने विशिष्ट ढंग से विस्तार करने के अलावा और कुछ नहीं होती। ये बुद्धिजीवी सिर्फ इसी ढंग से निर्मित किये जाते हैं और निश्चय ही दूसरे किसी भी ढंग से निर्मित नहीं किये जा सकते, जिसका कारण ऐसे सामाजिक समूह के निर्माण, जीवन और विकास की दी गयी सामान्य चरित्रगत विशेषता और दशाएं ही हैं।*

2. सारे समूहों के लिए राजनीतिक पार्टी, मुख्य तौर पर वह युक्ति-विधान होती है जो नागरिक समाज में वही काम करती है जो **राज्य**, अपेक्षाकृत अधिक सुव्यस्थित ढंग से और बड़े पैमाने पर, राजनीतिक समाज में करता है। दूसरे निश्चित शब्दों में, यह एक समूह प्रभुत्वशाली समूह के अंगभूत बुद्धिजीवियों और परम्परागत बुद्धिजीवियों को एक में मिलाने का काम करता है।[14] इस काम को पार्टी पूरी तरह से अपने बुनियादी काम पर निर्भर होकर करती है, और उसका यह बुनियादी काम स्वयं अपने संघटक अंगों—अर्थात पैदा हो चुके और "आर्थिक" समूह के रूप में विकसित हो चुके सामाजिक समूह के संघटक अंगों—का विस्तार करने और उन्हें योग्य राजनीतिक बुद्धिजीवियों, नेताओं [*dirigenti*] एवं नागरिक और राजनीतिक दोनों ही रूपों में एक समग्र समाज के आवयविक विकास में अन्तर्निहित सभी प्रकार की गतिविधियों एवं कार्यवाहियों के संगठनकर्ताओं के रूप में तब्दील कर देने से सम्बन्धित होता है। बेशक यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक पार्टी अपने दायरे के भीतर अपने कार्य को कहीं अधिक पूर्णता से और सुव्यवस्थित ढंग से करती है, बनिस्पत **राज्य** के जो इसे निश्चय ही कहीं अधिक व्यापक दायरे में करता है। एक बुद्धिजीवी, जो किसी सामाजिक समूह विशेष की पार्टी में शामिल होता है, स्वयं उस समूह के अंगभूत बुद्धिजीवियों के साथ एकाकार हो जाता है तथा सख्ती से उसी समूह के साथ जुड़ा रहता है। परन्तु **राज्य** के जीवन में सहभागिता करते हुए ऐसा सिर्फ एक सीमित हद तक ही हो पाता है और अक्सर तो इतना भी नहीं हो पाता। अलबत्ता ऐसा जरूर होता है कि कई एक बुद्धिजीवी स्वयं को ही **राज्य** *समझने लगते हैं*, और यह एक ऐसा विश्वास है जो उनकी कोटि के आकार के हिसाब से, कभी-कभी महत्वपूर्ण नतीजे पैदा करता है, और जो बुनियादी आर्थिक समूह ***वास्तव में राज्य*** होता है उसके लिए ऐसी जटिलताएं पैदा कर देता है जो नागवार होती हैं।

अब यह कहना कि एक राजनीतिक पार्टी के सारे के सारे सदस्य बुद्धिजीवी समझे जाने चाहिए, एक ऐसी स्वीकारोक्ति है जो अपने आप में ही एक विद्रूप प्रहसन बन जाती है। लेकिन यदि इस पर गौर करें तो इससे अधिक सटीक बात और कुछ नहीं हो सकती। निश्चय ही इसके लिए स्तर भेदों का निरूपण जरूरी है। किसी पार्टी के उच्चतर या निम्नतर स्तर पर सदस्यों की संख्या ज्यादा या कम हो सकती है, परन्तु असली बात यह नहीं है। असली बात कार्यवाही है, जो निर्देशकीय और सांगठनिक अर्थात शैक्षिक यानी बौद्धिक होती है। एक व्यापारी किसी राजनीतिक पार्टी में व्यापार करने के लिए नहीं शामिल होता, न तो एक उद्योगपति कमतर लागत पर अधिक उत्पादन करने के लिए शामिल होता है, और न ही एक किसान खेती के तरीके सीखने के लिए शामिल होता है, भले ही व्यापारी, उद्योगपति या किसान की कतिपय अपेक्षाएं पार्टी में शामिल होने पर पूरी हो जायें**

इन उद्देश्यों के लिए, अपनी अपनी सीमाओं के लिहाज से, पेशेवर संगठन होते हैं, जिनके अंतर्गत व्यापारी, उद्योगपति या किसान की

---

* यहां पुनः सैन्य संगठन मातहत अफसरों, सीनियर अफसरों और सामान्य स्टॉफ के बीच जटिल स्तर-भेदों का एक मॉडल प्रस्तुत करता है, जिसमें ***नॉन कमीशंड आफिसर्स*** का महत्व तो उससे कहीं ज्यादा ही होता है जो आमतौर पर स्वीकार किया जाता है यहां गौरतलब है कि ये सारे के सारे अंग एक पूर्ण एकात्मकता महसूस करते हैं और निश्चय ही उनके निम्नतर संस्तर ही सबसे स्पष्ट **संघ-भावना** (*esprit de corps*) प्रदर्शित करते हैं, और उसी से वे एक निश्चित "**अहंकार**" (*conceit*)[15] भी पाल लेते हैं जो उन्हें हास्यास्पद और मजाक का ही पात्र बना देता है।

आर्थिक-निगमीय गतिविधि सबसे उपयुक्त ढंग से आगे बढ़ायी जाती है। लेकिन एक राजनीतिक पार्टी में एक आर्थिक सामाजिक समूह के संघटक तत्व अपने ऐतिहासिक विकास के इस आवेग को लांघ जाते हैं तथा एक राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय चरित्र की अपेक्षाकृत अधिक सामान्य गतिविधियों के वाहक बन जाते हैं। एक राजनीतिक पार्टी की ऐसी कार्यवाही और भी अधिक स्पष्टता के साथ इस ठोस ऐतिहासिक विश्लेषण से ही समझी जा सकती है कि कैसे बुद्धिजीवियों की अंगभूत और परम्परागत दोनों ही कोटियां विभिन्न राष्ट्रीय इतिहासों के संदर्भ में तथा प्रत्येक राष्ट्र के भीतर विविध प्रमुख सामाजिक समूहों के विकास के संदर्भ में, और खासतौर से, उन समूहों के विकास के संदर्भ में विकसित हुई हैं जिनकी आर्थिक गतिविधियां, व्यापक तौर पर कामगार जनसमुदायों द्वारा औजारों की मदद से सम्पन्न की जाती रही हैं।

परम्परागत बुद्धिजीवियों का निर्माण ऐतिहासिक रूप से सबसे दिलचस्प समस्या है। निस्संदेह इसका सम्बन्ध क्लासिकीय दुनिया की दासता से तथा **रोमन साम्राज्य** के सामाजिक संगठन में **यूनानी** या **प्राच्य** मूल के स्वतंत्र नागरिकों की अवस्थिति से है।

टिप्पणी: गणतांत्रिक और **साम्राज्यवादी** कालों के बीच **रोम** में बुद्धिजीवियों की सामाजिक अवस्थिति की दशा में परिवर्तन (एक कुलीन तांत्रिक निगमीय व्यवस्था से एक जनतांत्रिक नौकरशाही वाली व्यवस्था में परिवर्तन) **सीजर** के कारण हुआ, जिसने डॉक्टरों और उदार कलाओं के विशेषज्ञों को नागरिकता प्रदान की ताकि वे **रोम** में ही रहने के ज्यादा इच्छुक बने रहें, और इस प्रकार दूसरों को भी **रोम** आने के लिए रजामन्द किया जा सके। (*"Omnesqe medicinam Romae professo set liberalium artium doctores, quo lib entius ebispi urben inedlerent et coeteri appeterent civitate donavit"* **स्यूटोनियस, लाइफ ऑफ सीजर**, XI II)। इसीलिए **सीजर** ने प्रस्ताव किया था: 1. उन बुद्धिजीवियों को **रोम** में ही बसा दिया जाये जो पहले ही से वहां रहते आ रहे थे, और इस प्रकार बुद्धिजीवियों की एक स्थायी कोटि निर्मित की जाये, कारण कि उनके स्थायी निवास के बगैर वहां कोई सांस्कृतिक संगठन नहीं खड़ा किया जा सकता था, और 2. समूचे **रोम व साम्राज्य** से अच्छे से अच्छे बुद्धिजीवियों को **रोम** की ओर आकृष्ट किया जाये, और इस प्रकार एक बड़े पैमाने पर केन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया जाये। इस ढंग से **रोम** में "शाही" बुद्धिजीवियों की कोटि अस्तित्व में आयी जिसकी परम्परा **कैथोलिक** पादरियों द्वारा आगे अठारहवीं शताब्दी तक जारी रही और जिसने **इतालवी** बुद्धिजीवियों के अभिलाक्षणिक "सार्वभौमिकतावाद" सरीखे बहुतेरे प्रभाव इतिहास में छोड़े।

रोमन साम्राज्य के बुद्धिजीवियों की भारी संख्या और प्रभुत्वशाली वर्ग के बीच का यह विभाजन जो केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय और जातीय भी था, **रोमन साम्राज्य** के पतन के बाद भी **जर्मैनिक** योद्धाओं और रोमनीकृत मूल के बुद्धिजीवियों, यानी स्वतंत्र नागरिकों की कोटि के उत्तराधिकारियों के बीच, विभाजन के रूप में चलता रहा। इसी परिघटना के भीतर से **कैथोलिक धर्म** तथा उस कलीसियाई संगठन का जन्म और विकास भी हुआ जो कई शताब्दियों तक बौद्धिक गतिविधियों की ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारी संभालता रहा, सांस्कृतिक संचालन का वर्चस्व हासिल किये रहा और उस किसी को भी दण्डित करता रहा जो इस वर्चस्व का विरोध करने या यहां तक कि इससे बच निकलने की कोशिश करता। **इटली** में हम इस परिघटना को देख सकते हैं, जहां इस प्रायद्वीप के बुद्धिजीवियों की सार्वभौमिक गतिविधि की तीव्रता समय-समय पर बदलती रही है। अब मैं उन अंतरों की चर्चा करना चाहूंगा जो अपेक्षाकृत तमाम अधिक महत्वपूर्ण देशों में बुद्धिजीवियों के विकास में तत्काल दिखायी पड़ सकते हैं, बशर्ते कि हम उन अंतरों को अधिक गहराई में जाकर देखें और उनकी छानबीन करें।

जहां तक इटली का सम्बन्ध है, यहां केन्द्रीय तथ्य खासतौर पर इसके बुद्धिजीवियों की अन्तरराष्ट्रीय या 'कास्मोपॉलिटन' गतिविधियां हैं, जो विघटन की उस स्थिति का कारण और परिणति दोनों ही हैं, जो इस प्रायद्वीप में रोमन साम्राज्य के पतन से लेकर 1870 तक बनी रही।

फ्रांस एक राष्ट्र की और विशेषकर बुद्धिजीवी कोटियों की ऊर्जाओं के सुसंगत विकास का एक सुव्यवस्थित उदाहरण प्रस्तुत करता है। 1789 में इतिहास के मंच पर एक नये सामाजिक समूह ने अपनी राजनीतिक उपस्थिति दर्ज कराई, तो यह पहले से ही अपनी सभी सामाजिक क्रियाशीलताओं से पूरी तरह लैस था और इसीलिए यह राष्ट्र के सम्पूर्ण प्रभुत्व के लिए संघर्ष कर सका। इसने पुराने वर्गों के साथ कोई भी बुनियादी समझौता नहीं किया और इसके बजाय अपने हित में उनको अपने मातहत करने में सफल रहा। नये किस्म की पहली बुद्धिजीवी कोशिकाएं अपने पहले आर्थिक प्रतिपक्षों के साथ पैदा हुईं। यहां तक कि कलीसियाई संगठन भी प्रभावित हुए (गैलिकनिज्म, चर्च और राज्य के बीच के अकालप्रौढ़ संघर्ष)। यह विराट बौद्धिक निर्माण 18वीं-19वीं शताब्दी में फ्रांस में संस्कृति की क्रियाशीलता की व्याख्या करता है। यह अन्तरराष्ट्रीय और सार्वभौमिक रूप से बहिर्मुख विकीरण या प्रसार की क्रियाशीलता थी और एक अंगभूत (आर्गेनिक) रूप में साम्राज्यवादी और वर्चस्ववादी विस्तार की क्रियाशीलता थी। इस रूप में यह क्रियाशीलता इटली के अनुभव से सर्वथा भिन्न थी, जो कि बिखरे हुए व्यक्तिगत उत्प्रवास (या प्रवजन) पर आधारित था और जिसने अपने को प्रभावकारी बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अभिक्रिया नहीं की, बल्कि इसके विपरीत एक ठोस राष्ट्रीय आधार के गठन को असंभव बनाने में सहायता पहुंचाई।

इंग्लैण्ड में विकास फ्रांस से बहुत अलग ढंग से हुआ। आधुनिक उद्योगवाद के आधार पर पले-बढ़े नये सामाजिक समूह ने महत्वपूर्ण आर्थिक-निगमीय (कारपोरेट) विकास प्रदर्शित किया, लेकिन बौद्धिक-राजनीतिक क्षेत्र में यह महज टटोलते-टटोलते आगे बढ़ा। वहां अंगभूत बुद्धिजीवियों की एक बहुत व्यापक कोटि दिखाई देती है—जो उसी औद्योगिक क्षेत्र में अस्तित्व में आया जिसमें आर्थिक समूह अस्तित्व में आया। लेकिन उच्चतर दायरे में हम पाते हैं कि पुराने भूस्वामी वर्ग ने अपनी वास्तविक एकाधिकार की अवस्थिति को बरकरार रखा। अपनी आर्थिक सर्वोच्चता खोने के बाद भी इसने एक लम्बे समय तक अपनी राजनीतिक-बौद्धिक सर्वोच्चता बरकरार रखी और अंततः सत्ता में आये नये समूह द्वारा "परम्परागत बुद्धिजीवियों" के रूप में और निदेशकारी (*dirigente*) समूह के रूप में आत्मसात् कर लिया गया। पुराना भूस्वामी कुलीन समुदाय उद्योगपतियों के साथ एक तरह के टांका लगा दिये जाने के ढंग से ठीक उसी प्रकार शामिल हो गया जिस तरह दूसरे देशों में परम्परागत

---

* उत्पादन की तकनीक के भीतर ऐसे संस्तर निर्मित होते हैं जिन्हें सेना के **एन.सी.ओज़** से मिलते-जुलते कहा जा सकता है, अर्थात्, शहरों में कुशल और विशिष्टीकृत मजदूर होते हैं, तथा देहात में (एक अपेक्षाकृत अधिक जटिल ढंग से) बटाईदार और काश्त पर खेती करने वाले किसान होते हैं—आमतौर पर किसानों की ये किस्में कमोबेश दस्तकार की किस्म से मिलती-जुलती है, जो कि मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था में कुशल मजदूरों की ही एक किस्म रही है।

** आम धारणा इसके विपरीत जाती है, जो इस बात को मानकर चलती है, कि व्यापारी, उद्योगपति या किसान में से जो भी "राजनीतिबाजी" में लग जाता है वह लाभ के बजाय हानि ही उठाता है, और यह सबसे बुरी बात है—हालांकि यह विवादस्पद बात है।

बुद्धिजीवी नये प्रभुत्वशाली वर्गों के साथ एकीकृत हो गये थे।

इंगलैण्ड की यही परिघटना जर्मनी में भी सामने आई पर विभिन्न ऐतिहासिक और परम्परागत तत्वों के चलते वहां इसका स्वरूप जटिल था। इटली की तरह, जर्मनी भी एक सार्वभौमिक और अधिराष्ट्रीय संस्था और विचारधारा का, जर्मन राष्ट्र के पवित्र रोमन साम्राज्य का स्थान था। अपनी आंतरिक ऊर्जाओं को नि:शेष करके इसने मध्ययुगीन 'कास्मोपोलिस' के लिए एक निश्चित संख्या में कर्मचारी मुहैया कराये और इस प्रक्रिया में ऐसे संघर्षों को जन्म दिया जिनके चलते राष्ट्रीय संगठन का प्रश्न हाशिए पर चला गया और मध्ययुगीन क्षेत्रीय विघटन की निरन्तरता बनी रही। जर्मनी में औद्योगिक विकास एक अर्द्धसामन्ती परिवेश के अन्तर्गत हुआ जो नवम्बर, 1918 तक बना रहा, और *जुंकरों* की राजनीतिक-बौद्धिक सर्वोच्चता यहां इंगलैण्ड के कुलीन भूस्वामियों से भी पर्याप्त अधिक रूप में बनी रही। वे जर्मन उद्योगपतियों के परम्परागत बुद्धिजीवी थे, पर उनके पास विशिष्ट विशेषाधिकार और अपने एक स्वतंत्र सामाजिक समूह होने की एक सशक्त चेतना थी, जो इस तथ्य पर आधारित थी कि भूमि पर उनकी पर्याप्त आर्थिक सत्ता थी, जो इंगलैण्ड की अपेक्षा अधिक "उत्पादक"[15] थी। प्रशियन जुंकर एक पुरोहित सैनिक जाति के समान थे, राजनीतिक समाज में निदेशनात्मक-संगठनात्मक कार्यवाहियों पर जिनका वस्तुत: एकाधिकार था, लेकिन साथ ही उसका अपना एक आर्थिक आधार भी था जिसके चलते वह प्रभुत्वशील आर्थिक समूह की उदारता पर उस पूर्णता की हद तक निर्भर नहीं था। साथ ही, इंगलैण्ड के कुलीन भूस्वामियों के विपरीत, जुंकर एक विशाल स्थायी सेना के अधिकारी वर्ग के रूप में भी थे जिसके चलते उनके पास एक ठोस संगठनात्मक कैडर भी मौजूद था जो एक *esprit de corps* और उनके राजनीतिक एकाधिकार को बनाये रखने में सहायक था।*

रूस में विभिन्न अभिलाक्षणिकताएं: राजनीतिक और आर्थिक-वाणिज्यिक संगठन नार्मनों (वैरांजियनों) द्वारा, और धार्मिक संगठन बाइजेण्टाइन ग्रीकों द्वारा निर्मित की गई। उत्तरवर्ती काल में जर्मन और फ्रांसीसी यूरोपीय अनुभव को रूस लाये और रूसी इतिहास के जीवद्रव्य (प्रोटाप्लाज्म) को पहला सुव्यवस्थित ढांचा प्रदान किया। राष्ट्रीय शक्तियां निष्क्रिय, निश्चेष्ट और ग्रहणशील अवस्था में थीं और शायद यही कारण था कि उन्होंने विदेशी प्रभावों और विदेशियों को पूरी तरह आत्मसात कर लिया, उनका रूसीकरण कर डाला। अपेक्षाकृत हाल के ऐतिहासिक काल में हम विपरीत परिघटना देखते हैं। समाज के कुछ सर्वाधिक सक्रिय, ऊर्जस्वी, उद्यमी और अनुशासित सदस्यों से निर्मित एक विशिष्ट वर्गीय समुदाय उत्प्रवास करके विदेशों में जा बसा और अपनी राष्ट्रीयता की सर्वाधिक सारभूत विशिष्टताओं को खोये बिना, या यूं कहें कि अपने लोगों से अपने भावनात्मक और ऐतिहासिक जुड़ाव को तोड़े बिना, उसने पश्चिम के सर्वाधिक विकसित देशों की संस्कृति और ऐतिहासिक अनुभवों को आत्मसात कर लिया।

इसने अपना बौद्धिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद पुन: अपने देश की ओर रुख कर लिया और अपनी जनता को ऐतिहासिक प्रक्रिया के चरणों को लांघकर एक प्रबल जागृति के लिए, विवश कर दिया। इस ***एलीट*** और **जर्मनी** से (उदाहरण के लिए, **पीटर महान** द्वारा) आयातित *एलीट* के बीच जो अन्तर है वह सारत: इसके राष्ट्रीय-लोकप्रिय चरित्र में ही निहित है। इससे रूसी जनता की जड़ निष्क्रियता अपने में आत्मसात नहीं कर सकती थी, कारण कि वह तो स्वयं ही अपनी ऐतिहासिक जड़ता के विरुद्ध एक ओजस्वी **रूसी** प्रतिक्रिया के रूप में था।

एक दूसरे क्षेत्र में, तथा समय और स्थान की बहुत भिन्न परिस्थितियों में, **रूसी** परिघटना की तुलना **अमेरिकी** राष्ट्र के जन्म से (संयुक्त राज्य अमेरिका में) की जा सकती है। **ऐंग्लो-सैक्सन** आप्रवासी स्वयं में बुद्धिजीवी थे पर अधिक विशिष्ट अर्थों में एक नैतिक '*एलीट*' थे। जाहिरा तौर पर, मैं उन शुरुआती आप्रवासियों की बात कर रहा हूं जो **इंगलैण्ड** में राजनीतिक और धार्मिक संघर्षों के अग्रदूत और नायक रह चुके थे, जो पराजित तो हो गये थे परन्तु, अपने देश में अभी भी अपमानित या हेय दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। वे **अमेरिका** आये और अपने साथ, अपनी नैतिक ऊर्जा और इच्छाशक्ति के अतिरिक्त सभ्यता का एक निश्चित स्तर, यानी **यूरोप** की ऐतिहासिक क्रान्ति का एक निश्चित चरण भी लेते आये, जो इनके द्वारा **अमेरिका** की अछूती धरती पर आरोपित किये जाने के बाद अपनी प्रकृति में निहित अपनी शक्तियों को विकसित करता रहा, जिसकी गति, अतुलनीय रूप से, पुराने **यूरोप** में चल रही गति से कहीं अधिक तीव्र थी, जबकि **यूरोप** में ऐसी ढेरों पाबन्दियां थीं (जैसे नैतिक, बौद्धिक, राजनीतिक, आर्थिक, आदि जो जनसंख्या के भिन्न-भिन्न तबकों में रची-बसी थीं, तथा पुरानी राज्य-व्यवस्थाओं के वे अवशेष भी थे जो खत्म होने का नाम नहीं लेते थे) जो तीव्र विकास में बाधा पैदा करती थीं और प्रत्येक नयी पहलकदमी को, समय और स्थान के लिहाज से बेअसर बनाती हुई यथास्थिति के संतुलन में तब्दील कर डालती थीं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में यह देखा जा सकता है कि वहां पर परम्परागत बुद्धिजीवियों का काफी हद तक अभाव है, और इसीलिए वहां पर बुद्धिजीवियों के बीच आमतौर पर एक भिन्न संतुलन पाया जाता है। वहां पर एक औद्योगिक मूलाधार से, आधुनिक अधिरचनाओं की पूरी श्रृंखला व्यापक पैमाने पर विकसित हुई है। वहां पर एक संतुलन की जरूरत, अंगभूत बुद्धिजीवियों और परम्परागत बुद्धिजीवियों को एक में मिला देने की जरूरत से नहीं, बल्कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय मूल के आप्रवासियों द्वारा लाये गये भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक रूपों को एक इकहरी संस्कृति वाली एक ही राष्ट्रीय खरल में मिला देने की जरूरत से निर्धारित होती है। पुरानी सभ्यता के देशों में परम्परागत बुद्धिजीवियों की जो एक भारी जमात देखने को मिलती है, उसका यहां पर अभाव है, और यह तथ्य ही अंशत: इस बात को स्पष्ट करने के लिए काफी है कि क्यों वहां पर मात्र दो ही बड़ी राजनीतिक पार्टियां हैं, जिन्हें वस्तुत: बड़ी आसानी से एक किया जा सकता है (जबकि फ्रांस का मामला इसके ठीक विपरीत है, (जहां सिर्फ युद्धोत्तर काल की ही बात नहीं है जब पार्टियों की संख्या-वृद्धि एक आम परिघटना बन गयी) परन्तु इसके एकदम विपरीत बात यह भी है कि वहां पर धार्मिक सम्प्रदायों में भारी वृद्धि हुई हैं।*

संयुक्त राज्य अमेरिका की एक और परिघटना अध्ययन योग्य है, और वह है नीग्रो बुद्धिजीवियों की एक विस्मयकारी संख्या, जो **अमेरिकी** संस्कृति और तकनोलॉजी को आत्मसात किये हुए है। यहां यह गौरतलब है कि ये नीग्रो बुद्धिजीवी **अफ्रीका** में पिछड़े जनसमुदायों पर एक

---

* मैक्स वेबर की पुस्तक '*पार्लियामेण्ट एण्ड गवर्नमेण्ट इन द न्यू ऑर्डर इन जर्मनी*'[16] में काफी ऐसी चीजें पाई जा सकती हैं, जो दिखाती हैं कि किस तरह सामंती कुलीनों के राजनीतिक एकाधिकार ने व्यापक और अनुभवी बुर्जुआ राजनीतिक कर्मियों के विस्तार में रोड़े अटकाये और किसतरह यह सतत् संसदीय संकटों का और उदार एवं जनवादी पार्टियों के खण्ड-खण्ड में विभाजन का मूल कारण था। इसतरह, कैथोलिक केन्द्र और सामाजिक जनवाद के महत्व का कारण भी यही था जो साम्राज्य[17] के दौरान काफी हद तक अपने खुद के संसदीय और निदेशनात्मक संस्तर निर्मित करने में सफल हुए।

* मैं समझता हूं इनकी संख्या दो सौ से अधिक ही है। फिर इसकी तुलना **फ्रांस** की स्थिति और उन उग्र संघर्षों से करें जो **फ्रांसीसी** जनता की धार्मिक और नैतिक एकता बनाये रखने के लिए चलते रहे हैं।

अप्रत्यक्ष प्रभाव डाल सकते हैं, और निश्चय ही प्रत्यक्ष प्रभाव भी डाल सकते हैं, यदि निम्नलिखित अनुमानों में से कोई कभी सही साबित हो जाये: 1. कि **अमेरिकी** विस्तारवाद **अफ्रीकी** बाजार पर विजय हासिल करने और **अमेरिकी** सभ्यता का विस्तार करने के लिए **अमेरिकी** नीग्रो लोगों को अपने एजेण्ट के तौर पर इस्तेमाल करे (इस किस्म का कुछ पहले भी हो चुका है, पर मैं नहीं जानता कि किस हद तक);

2. कि **अमेरिकी** जनता के एकीकरण का संघर्ष ऐसे ढंग से चले कि स्वतंत्र और तेजतर्रार बुद्धिजीवी तत्वों की एक भारी नीग्रो आबादी, जो वर्तमान में **अमेरिका** में व्यापक रूप से प्रचलित सामाजिक रिवाजों से भी कहीं अधिक अपमानजनक रूप से लागू किये जाने वाले किसी संभावित भावी कानून-विधान के आगे तनिक भी समर्पण न करने की चाह लिये हो, बौखलाकर अमेरिका से निष्क्रमण कर जाये और अफ्रीका लौट जाये। ऐसा होने की स्थिति में दो बुनियादी सवाल उठ खड़े हो सकते हैं: 1. भाषायी: कि क्या वहां मौजूद ढेरों बोलियों के स्थान पर, **अंग्रेजी**, एकता स्थापित करने के लिए, अफ्रीका में शिक्षण की भाषा बन सकेगी? 2. क्या इस बौद्धिक संस्तर के पास आत्मसातीकरण और संगठन की इतनी क्षमता होगी कि वह वर्तमान में एक तिरस्कृत नस्ल होने की आदिम भावना रखने वाली जनता को एक "राष्ट्रीय" चरित्र प्रदान कर सके? फिलहाल, मुझे ऐसा लगता है कि **अमेरिकी** नीग्रो लोगों में एक राष्ट्रीय और नस्ली भावना है जो सकारात्मक के बजाय नकारात्मक ही है, और यह उन्हें अलग-थलग कर देने और दमित करने के लिए गोरों द्वारा चलाये गये संघर्षों से ही पैदा हुई है। लेकिन क्या यही स्थिति अठारहवीं शताब्दी तक और उस पूरी शताब्दी के दौरान **यहूदियों** की नहीं रही? **लीबिया**, जो पहले से ही अमेरिकीकृत है और **अंग्रेजी** जिसकी सरकारी भाषा है, **अमेरिकी** नीग्रो लोगों का **सियोन** बन सकता है, जिसकी प्रवृत्ति अपने आप को एक **अफ्रीकी पिडमॉण्ट** के रूप में स्थापित कर लेने की होगी।[18]

मध्य और **दक्षिण अमेरिका** के बुद्धिजीवियों के सवाल पर विचार करते हुए, मैं समझता हूं कि कुछ निश्चित बुनियादी परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। **मध्य** और **दक्षिण अमेरिकी** में से किसी में भी परम्परागत बुद्धिजीवियों की कोई, व्यापक कोटि मौजूद नहीं है, फिर भी यह सवाल यहां ठीक वैसे ही नहीं उपस्थित है जैसे **संयुक्त राज्य अमेरिका** में उपस्थित होता है। इन देशों के विकास की जड़ में वस्तुत: जो चीजें हमें देखने को मिलती हैं, वे हैं सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी की **स्पेनी** और **पुर्तगाली** सभ्यता के प्रतिरूप, जो **सुधार-विरोध** (**काउण्टर रिफॉर्मेशन**) और सैन्य परजीविता के प्रभावों से अभिचिन्हित हैं। इन देशों में आज भी जो परिवर्तन-प्रतिरोधी प्रतिरूप मौजूद हैं, वे पादरी और सैनिक समुदायों के रूप में परम्परागत बुद्धिजीवियों की दो ऐसी कोटियां हैं जो अपने यूरोपीय मातृदेश से विरासत में चली आती हुए एक अश्मीभूत रूप में बरकरार हैं। यहां पर औद्योगिक आधार बहुत सीमित है, और जटिल अधिरचनाएं नहीं पैदा कर सका है। यहां बहुसंख्यक बुद्धिजीवी ग्रामीण किस्म के हैं, और चूंकि *लैटिफाण्डियम* अभी भी प्रभुत्वशाली है, और बेशुमार दौलत **चर्च** के पास है, इसीलिए ये बुद्धिजीवी भी पादरी समुदाय और बड़े भूस्वामियों से ही जुड़े हुए हैं। राष्ट्रीय संघटन गोरी आबादी तक में भी बहुत असंतुलित है, और **इण्डियनों** की भारी आबादी से और भी जटिल बन गयी है, जो कुछ देशों में तो समूची आबादी के बहुसंख्यक हिस्से हैं। कहा जा सकता है कि **अमेरिकी** महाद्वीप के इन भागों में अभी भी *कुल्टुरकाम्फ* और **ड्रेइफस** के मुकदमें[19] जैसी स्थिति बरकरार है, अर्थात् एक ऐसी स्थिति बरकरार है जिसके चलते धर्मनिरपेक्ष और बुर्जुआ तत्वों का विकास अभी भी इतना नहीं हो पाया है कि वहां के पादरियों एवं सैनिकों के प्रभाव और हितों को आधुनिक **राज्य** की धर्मनिरपेक्ष नीतियों के मातहत किया जा सके। यही कारण है कि वहां के **फ्री मैसॅनरी** और सांस्कृतिक संगठन के रूप, जैसे "प्रत्यक्षवादी **चर्च**" अभी भी **जेसुएवाद** के विरोध में बहुत प्रभावी बने हुए हैं। **मेक्सिको**[20] में **कैलिस** के *कुल्टुरकाम्फ* से लेकर **अर्जेण्टीना**, ब्राजील, **पेरू**, **चिली** और **बोलिविया** तक की सबसे हाल की घटनाएं (नवम्बर 1930) इन अवलोकनों की सत्यता को प्रमाणित करती हैं।

बुद्धिजीवियों की कोटियों एवं राष्ट्रीय शक्तियों के साथ उनके सम्बंध के निर्माण की और किस्में, **भारत**, **चीन** और **जापान** में देखी जा सकती हैं। **जापान** में हमें **अंग्रेजी** और **जर्मन** किस्म का निर्माण देखने को मिलता है, अर्थात वहां एक औद्योगिक सभ्यता दिखायी देती है जो अपनी तरह की सुस्पष्ट विशिष्टताओं के साथ एक सामन्ती नौकरशाहाना कवच के भीतर विकसित हो रही हैं।

चीन में लिपि की परिघटना है, जो बुद्धिजीवियों और जनता के बीच पूर्ण अलगाव की एक अभिव्यक्ति है। **भारत** और **चीन** दोनों में, बुद्धिजीवियों और जनता के बीच का भारी फर्क धार्मिक क्षेत्र में भी अभिव्यक्त होता है। समाज के विविध संस्तरों के बीच, परन्तु खासतौर से पुरोहितों, बुद्धिजीवियों और जनता के बीच, एक ही धर्म को मानने वाले और अमल में लाने के जो भिन्न-भिन्न विश्वास और तौर-तरीके हैं उनकी समस्या का सामान्य तौर पर अध्ययन आवश्यक है, कारण कि यह समस्या सब जगह किसी न किसी हद तक मौजूद है, परन्तु **पूर्वी एशिया** के देशों में तो यह अपने चरम रूप में मौजूद है। **प्रोटेस्टेण्ट** देशों में यह फर्क अपेक्षाकृत कम है (सम्प्रदायों की संख्या-वृद्धि बुद्धिजीवियों और जनता के बीच एक पूर्ण तादाम्य कायम करने की जरूरत से जुड़ी हुई है, जिसका नतीजा यह होता है कि जनसमुदायों की प्रभावी अवधारणाओं का सारा का सारा अनगढ़पन उच्चतर सांगठनिक दायरे में जाकर फिर से प्रकट हो जाता है)। **कैथोलिक** देशों में ऐसा अपेक्षाकृत अधिक दिखायी देता है, लेकिन उसका स्तर भिन्न-भिन्न होता है। **जर्मनी** के **कैथोलिक** हिस्सों में तथा फ्रांस में यह फर्क कम देखा जाता है, परन्तु **इटली** में खासतौर से, उसके **दक्षिणी** भाग में और द्वीपों में यह फर्क अधिक देखने में आता है; और **आइबेरियाई** प्रायद्वीप तथा **लातिन** अमेरिका के देशों में तो निश्चय ही यह फर्क भारी मात्रा में दिखायी देता है। वह परिघटना **कट्टर ईसाइयत वाले** देशों में बड़े पैमाने पर दिखायी देती है, जहां एक ही धर्म के इन तीन स्तरों की बात करना जरूरी हो जाता है। उच्चतर ओहदे के पादरियों एवं मठवासियों का स्तर, धर्मनिरपेक्ष पादरियों का स्तर, और जनता का स्तर। **पूर्वी एशिया** में तो यह परिघटना बेतुकेपन की हद तक जा पहुंची है, जहां जनता के धर्म को धर्मग्रंथों की बातों से कुछ लेना-देना नहीं है, हालांकि दोनों ही बातों को एक ही धर्म के नाम से जाना जाता है।

अनुवादकों (क्विण्टिन एवं होअरे) की टिप्पणियां

1. यहां पर **इतालवी** शब्द "*Ceti*" प्रयुक्त हुआ है जो ठीक-ठीक वही अर्थ नहीं देता जो "*Strata*" [संस्तर] शब्द देता है, परन्तु अन्य कोई विकल्प न मिलने की विवशता के चलते हमें इसे "संस्तर" के रूप में ही अनुवाद करना पड़ा है। यहां गौरतलब है कि सेंसरशिप की वजह से **ग्राम्शी** वर्ग शब्द का इस्तेमाल ऐसे संदर्भों में करने से बचना चाहते थे जहां उसकी **मार्क्सवादी** अभिव्यंजना के प्रकट हो जाने का खतरा था, और इसीलिए (उदाहरण के तौर पर इसी वाक्य में) वह एक अधिक निरापद शब्द "सामाजिक समूह" इस्तेमाल करते हैं। लेकिन समूह शब्द हर जगह "वर्ग" का ही सूचक नहीं है, इसीलिए जब वह विशुद्ध **मार्क्सवादी** शब्दावली में परिभाषित उत्पादन के बुनियादी सम्बन्धों में अवस्थित प्रमुख सामाजिक वर्गों (बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग) में से किसी एक को रेखांकित करना चाहते हैं, तो "बुनियादी सामाजिक समूह" शब्द इस्तेमाल करते हैं

ताकि कोई अस्पष्टता न रहे। यह बुनियादी, भूमिका न अदा करने वाले वर्ग-समूहों को वह अक्सर "Castes" [जातियों] (कुलीनतंत्र, आदि) के रूप में वर्णित करते हैं। दूसरी तरफ, "Category" [कोटि] शब्द भी इस पृष्ठ पर इस्तेमाल हुआ है, जिसे **ग्राम्शी** स्टैण्डर्ड इतालवी अर्थ में इस्तेमाल करते प्रतीत होते हैं, गो कि कहीं अधिक सामान्य अर्थ में भी इस्तेमाल करते हैं। इस पूरे संस्करण में हमने **ग्राम्शी** की शब्दावली का जहां तक संभव हो सका है, शब्दश: अनुवाद किया है (**ग्राम्शी की शब्दावली**) पर टिप्पणी देखें, पृ. XIII

2. सेंसरशिप के प्रश्न को छोड़ भी दें तो ग्राम्शी की शब्दावली अनुवादक के लिए अनेक परेशानियां पैदा करती है। जहां तक संभव हुआ है, हमने ग्राम्शी द्वारा प्रयुक्त किसी विशिष्ट शब्द के लिए अंग्रेजी में एक ही समतुल्य शब्द का इस्तेमाल किया है जो मूल शब्द का निकटतम हो। पर कुछ मामलों में ऐसा संभव नहीं हो पाया है। जैसे कि *dirigere* क्रिया के आसपास के शब्द समूह (*dirigente, direttiuo, direzione etc.*)। इस मामले में हमने कहीं तो संदर्भ के हिसाब से सामान्य अंग्रेजी प्रयोग का अनुपालन किया है। (जैसे, *dirizione*-नेतृत्व, *class dirigente*-शासक वर्ग), पर कुछ मामलों में हमने *dirigente* और *direttivo* के लिए निर्देश (Directive) अनुवाद किया है क्योंकि ग्राम्शी प्रभुत्व (domination) पर आधारित शक्ति और दिशा-निर्देश (direction) या वर्चस्व (hegemony) के अमल के बीच एक महत्वपूर्ण अवधारणात्मक अंतर करके देखते हैं।

3. **अंग्रेजी** में आमतौर पर "शासक वर्ग" के रूप में अनूदित, और यही **मोस्का** की कृति, *Elementi* के अंग्रेजी संस्करण का शीर्षक भी है (**जी. मोस्का**, *द रूलिंग क्लास*, **न्यूयार्क**, 1939)। **गेटानो मोस्का** (1858 1941), **पैरिटो** और **मिशेल्स** समेत, राजनीतिक *एलीटों* के सिद्धान्त के आरंभिक प्रवर्तकों में से एक था। यद्यपि **मोस्का** फासीवाद से सहानुभूति रखता था, फिर भी वह बुनियादी तौर पर एक संकीर्णतावादी ही था, जो *एलीट* को अपने कुछ समकालीन साथियों से कहीं अधिक रूढ़ अर्थ में लेता था।

4. खासतौर से **दक्षिणी इटली** में। लेख के आगे हिस्सों में **"शहरी और ग्रामीण किस्म के बुद्धिजीवियों की भिन्न-भिन्न अवस्थिति"** का अवलोकन करें। यहां पर **ग्राम्शी** की आम दलील, *Quaderni* में दी गयी दलील की भांति ही, यह है कि किसानी मूल का व्यक्ति जब एक "बुद्धिजीवी" (पादरी, वकील आदि) बन जाता है, तब इसी वजह से वह अपने मूल वर्ग का एक अंग नहीं रह जाता। मिसाल के तौर पर, **कैथोलिक चर्च** और मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के बीच अनिवार्य अन्तरों में से एक अन्तर इस तथ्य में निहित है कि, आदर्श रूप में, सर्वहारा वर्ग को अपने वर्ग के भीतर से ही अपने ऐसे "अंगभूत" बुद्धिजीवी पैदा करने में सक्षम होना चाहिए जो उनके ही वर्ग के बुद्धिजीवी बने रहें।

5. क्रमश: **फिएट** और **मोण्टे कैटिनी** (रसायनों) के अध्यक्ष। **एग्नेली** के विषय में *Ordine Nuovo* काल के दौरान **ग्राम्शी** ने प्रत्यक्ष अनुभव किया था।

6. **फ्रेडरिक टेलर** और एक "प्रशिक्षित छापामार" के रूप में शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर की उनकी धारणा के लिए देखें, **ग्राम्शी** का निबन्ध ***अमेरिकनिज्म एण्ड फोर्डिज्म***, 'सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिज़न नोटबुक्स', पृ. 277-318

7. अर्थात, निर्माणकर्ता **मनुष्य** (या औजार इस्तेमाल करने वाला) और चिंतन करने वाला **मनुष्य**

8. *Ordine Nuovo*, **ट्यूरिन** में **ग्राम्शी** द्वारा अपने समय में सम्पादित की जाने वाली पत्रिका, जो 1919 और 1920 में **"समाजवादी संस्कृति की साप्ताहिक समीक्षा"** के रूप में प्रकाशित होती रही।

9. "*Dirigente*" इस अत्यंत लघुकृत और सूत्रवत् शब्द में ढेर सारे **ग्राम्शीयाई** विचार निहित है: श्रम-प्रक्रिया में प्रभुत्व के जरिये सर्वहारा सांस्कृतिक वर्चस्व की संभावना के बारे में, मजदूर वर्ग के अंगभूत बुद्धिजीवियों और बाहरी परम्परागत बुद्धिजीवियों के बीच फर्क करने के बारे में, एक बुनियादी **मार्क्सवादी** धारणा के रूप में सिद्धान्त और व्यवहार की एकता, आदि के बारे में।

10. बुनियादी स्तर से ऊपर की **इतावली** स्कूल प्रणाली अकादमिक ("क्लासिकीय" और "वैज्ञानिक") शिक्षा और व्यावसायिक उद्देश्यों वाले व्यावसायिक प्रशिक्षण के बीच एक विभाजन पर आधारित है। तकनीकी और, अकादमिक स्तर के "वैज्ञानिक" कालेज ज्यादा से ज्यादा **उत्तरी** औद्योगिक क्षेत्रों में संकेन्द्रित हैं।

11. "*Funzionari*" **इतालवी** बोलचाल में यह शब्द नौकरशाही के मध्यवर्ती और उच्चतर संस्तरों के लिए इस्तेमाल होता है। इसके विपरीत "प्रशासक" ("*administratori*") शब्द यहां पर (पैराग्राफ के अंत में) ऐसे लोगों के लिए इस्तेमाल किया गया है जो दूसरों के निर्णयों को सिर्फ "**लागू**" भर करते हैं। "गैर-सरकारी काम" की शब्दावली "[*impiego*]*di ordine e non di concetto*" का अनुवाद है जो क्लर्की वाले काम के विभेदों के संदर्भ में प्रयुक्त है।

12. "लोरिया"। इसका संदर्भ **विज़ो** की एक धारणा से है।

13. "अनुत्पादक मजदूर" की धारणा वास्तव में **लोरिया** का अपना आविष्कार नहीं है, बल्कि इसका मूलस्रोत तो *कैपिटल* में उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के बारे में **मार्क्स** द्वारा दी गयी परिभाषाओं में है, जिसे **लोरिया** ने अपने चरित्र के अनुरूप आमफहम बना दिया और यह दावा भी कर दिया कि यह उसकी अपनी खोज है।

14. यद्यपि यह अवतरण जाहिरा तौर पर राजनीतिक पार्टियों के सामान्य समाजशास्त्र से सरोकार रखता है, फिर भी यहां पर स्पष्ट है कि **ग्राम्शी** की खासतौर पर दिलचस्पी क्रान्तिकारी पार्टी के सिद्धांत और इसके भीतर बुद्धिजीवियों की भूमिका को लेकर है।

15. ग्राम्शी ने संभवत: यहां "उत्पादक" शब्द का प्रयोग अतिरिक्त मूल्य के उत्पादक या किसी दर पर अधिशेष के उत्पादक के विशिष्ट मार्क्सीय अर्थों में किया है।

16. मैक्स वेबर, *Parliament and Regierung im neugeordnetem Deutshland*, एच. एच. गर्थ और सी. राइट मिल सम्पादित 'फ्राम मैक्स वेबर: एसेज इन सोशियालोजी' में शामिल अंग्रेजी अनुवाद।

17. यानी 1919 में वाइमार गणतंत्र के गठन तक का काल।

नक्सलबाड़ी के तीन दशक पर **"विकल्प"** का
साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित विशेषांक

"विकल्प" के इस आयोजन में शामिल है, नक्सलबाड़ी विद्रोह का अखिल भारतीय साहित्य और संस्कृति पर व्यापक प्रभाव का गंभीर आंकलन, उस दौर की हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की चुनिन्दा रचनाएं, इस धारा से जुड़ी भारतीय साहित्य की समकालीन रचनाएं, जन संघर्षों से जुड़े मार्मिक संस्मरण, उत्तर आधुनिकतावादी अवधारणाओं की प्रस्तुति तथा उससे उत्पन्न बौद्धिक टकराहटें, साम्राज्यवादी सांस्कृतिक हमले से उत्पन्न चुनौतियां, मार्क्सवादी साहित्यिक सांस्कृतिक चिंतन परम्परा से श्रेष्ठ चयन, वर्तमान सांस्कृतिक संदर्भ पर विचारोत्तेजक परिचर्चा तथा विश्व साहित्य की संघर्षशील धारा से श्रेष्ठ अनुवाद।

पत्रिका की प्राप्ति तथा रचनात्मक सहयोग हेतु सम्पर्क करें :

रवीन्द्र शुक्ला,
संपादक "विकल्प"
1835 सिल्वर ओक कम्पाउण्ड, नेपियर टाऊन,
जबलपुर-1 (म.प्र.) फोन : 326 455

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट

(1 अप्रैल 1969 को प्रस्तुत और 14 अप्रैल को स्वीकृत)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेजों की श्रृंखला में हम इस बार चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांग्रेस की रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहे हैं। सांस्कृतिक क्रान्ति का यह बेहद महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो समाजवाद की समस्याओं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बारे में शिक्षित करता है। माओ त्से-तुङ के प्रत्यक्ष निर्देशन में तैयार की गई इस रिपोर्ट में सांस्कृतिक क्रान्ति के तीन वर्षों के अनुभव का विस्तृत समाहार ही नहीं किया गया बल्कि समाजवाद की पूरी अवधि के दौरान जारी रहने वाले वर्ग-संघर्ष, समाजवादी निर्माण, पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने तथा अधिरचना के क्षेत्र में सतत् क्रान्ति के सिद्धान्त के बारे में अत्यन्त महत्वपूर्ण निष्कर्ष पेश किये गये। समाजवादी संक्रमण के दौर के बारे में माओ के चिन्तन को इसने नई ऊंचाई पर पहुंचाया —संपादक

1. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की तैयारियों के बारे में
2. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की प्रक्रिया के बारे में
3. संघर्ष–आलोचना व खण्डन–रूपान्तर का काम संजीदगी के साथ बखूबी सम्पन्न करने के बारे में
4. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की नीतियों के बारे में
5. हमारे देश में क्रान्ति की आखिरी विजय के बारे में
6. पार्टी को सुदृढ़ बनाने और उसका निर्माण करने के बारे में
7. विदेशों के साथ हमारे देश के सम्बन्धों के बारे में
8. और अधिक महान विजय प्राप्त करने के लिए समूची पार्टी, सारे देश की जनता, एक हो

कामरेडो!

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस एक ऐसी कांग्रेस है जो हमारी पार्टी के इतिहास पर गहन व दूरगामी प्रभाव डालेगी।

हमारी यह कांग्रेस एक ऐसे मौके पर आयोजित हुई है, जबकि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति, जिसका सूत्रपात खुद अध्यक्ष माओ ने किया है और जिसका नेतृत्व भी वे खुद ही कर रहे हैं, में महान विजय प्राप्त हो चुकी है। इस महान क्रान्तिकारी तूफान ने बुर्जुआ हेडक्वार्टर को, जिसका सरगना गद्दार, दुश्मन एजेन्ट और स्कैब ल्यू शाओ-ची था, नेस्तनाबूद करके रख दिया है, पार्टी में उन मुट्ठीभर गद्दारों, जासूसों और अपने आप को न सुधारने पर अड़े पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों की कलई खोलकर रख दी है, जिन सबका सर्वप्रमुख प्रतिनिधि ल्यू शाओ-ची है, और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने के उनके षड्यंत्र को धूल में मिलाकर रख दिया है; इस तूफान ने हमारे देश के सर्वहारा अधिनायकत्व को बेहद मजबूत बना दिया है, हमारी पार्टी को बहुत ज्यादा सुदृढ़ कर दिया है, तथा इस प्रकार राजनीतिक, विचारधारात्मक और संगठनात्मक तौर पर इस कांग्रेस के लिए पर्याप्त स्थितियां तैयार कर दी हैं।

1. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की तैयारियों के बारे में

हमारे देश की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति बड़े पैमाने की एक असली सर्वहारा क्रान्ति है।

अध्यक्ष माओ ने सरल और साफ-साफ भाषा में इस महान क्रान्ति की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है : "मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम करने और समाजवाद का निर्माण करने के लिए निहायत जरूरी है और अत्यन्त समयानुकूल है।" अध्यक्ष माओ के इस वैज्ञानिक निष्कर्ष को पूरी तरह समझने के लिए यह जरूरी है कि हम सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने के बारे में अध्यक्ष माओ के सिद्धान्त को गहराई के साथ जान लें।

पार्टी की आठवीं कांग्रेस के समाप्त होने के कुछ समय बाद ही, 1957 में अध्यक्ष माओ ने "जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में" नामक अपनी महान रचना पेश की। "चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में रिपोर्ट" के बाद उन्होंने एक कदम और आगे बढ़कर अपनी इस महान रचना में चौतरफा रूप से सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थिति में अन्तरविरोधों, वर्गों और वर्ग संघर्ष के अस्तित्व पर प्रकाश डाला है, समाजवादी समाज में हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोध तथा जनता के बीच के अन्तरविरोध, इन दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्तरविरोधों के अस्तित्व की स्थापना पेश की है, तथा सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने के बारे में महान सिद्धान्त पेश किया है। इस महान रचना ने एक बेहद रोशन प्रकाश-स्तम्भ की तरह हमारे देश की समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी निर्माण के रास्ते पर रोशनी फैला दी है, और मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए सैद्धान्तिक आधार भी कायम कर दिया है।

अध्यक्ष माओ के महान ऐतिहासिक योगदान को और ज्यादा गहराई के साथ समझने के लिए यह जरूरी है कि अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के ऐतिहासिक अनुभव का सरसरी तौर पर सिंहावलोकन किया जाये।

1852 में मार्क्स ने यह कहा था : **"मुझसे बहुत पहले ही बुर्जुआ**

इतिहासकारों ने वर्गों के बीच के इस संघर्ष के ऐतिहासिक विकास का वर्णन किया था, और बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों ने वर्गों के आर्थिक रचना विधान का विश्लेषण किया था। मैंने जो नया काम किया, वह यह साबित करना था: 1. कि वर्गों का अस्तित्व केवल उत्पादन के विकास की विशेष ऐतिहासिक अवस्थाओं से ही सम्बन्धित है; 2. कि वर्ग-संघर्ष अनिवार्य रूप से सर्वहारा अधिनायकत्व को जन्म देता है; 3. कि यह अधिनायकत्व खुद भी केवल तमाम वर्गों के उन्मूलन की स्थिति में और एक वर्गविहीन समाज में संक्रमण का दौर है।''

(''मार्क्स और एंगेल्स के चुनिंदा पत्र'', चीनी संस्करण, पृष्ठ 63)

सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्स के सिद्धान्त ने वैज्ञानिक समाजवाद के तथा कल्पनावादी समाजवाद व तरह-तरह के नकली समाजवाद के बीच एक स्पष्ट लाइन खींच दी है। सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धान्त के लिए और इस सिद्धान्त को अमली जामा पहनाने के लिए मार्क्स और एंगेल्स जिन्दगीभर संघर्ष करते रहे थे।

मार्क्स और एंगेल्स का देहान्त होने के बाद, दूसरे इन्टरनेशनल की, लेनिन के नेतृत्व में चलने वाली बोल्शेविक पार्टी को छोड़कर, लगभग तमाम पार्टियां मार्क्सवाद से विश्वासघात कर बैठीं। लेनिन ने दूसरे इन्टरनेशनल के संशोधनवादियों के खिलाफ संघर्ष करने में मार्क्सवाद को विरासत के रूप में ग्रहण किया, उसकी रक्षा की और उसका विकास किया। संघर्ष का केन्द्र-बिन्दु सर्वहारा अधिनायकत्व का सवाल ही था। लेनिन ने पुराने संशोधनवादियों की कड़ी निन्दा करते समय बार-बार यह कहा था : ''**जो लोग केवल वर्ग-संघर्ष को मानते हैं, वे अभी तक मार्क्सवादी नहीं बने हैं।... मार्क्सवादी केवल वही है जो वर्ग-संघर्ष को मानने के साथ-साथ सर्वहारा अधिनायकत्व को भी मानता हो।**'' (''लेनिन ग्रन्थावली'', चीनी संस्करण, ग्रन्थ 25, पृष्ठ 399)

लेनिन ने महान समाजवादी अक्टूबर क्रान्ति की विजय प्राप्त करने और प्रथम समाजवादी देश कायम करने में रूसी सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व किया था। सर्वहारा अधिनायकत्व का नेतृत्व करने में अपने महान क्रान्तिकारी व्यवहार के आधार पर लेनिन ने पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के खतरे और वर्ग संघर्ष की दीर्घकालीनता को देख लिया था : ''**पूंजीवाद से कम्युनिज्म तक संक्रमण का एक पूरा ऐतिहासिक काल विद्यमान रहता है। जब तक यह काल समाप्त नहीं हो जाता, तब तक शोषक अनिवार्य रूप से पुनर्स्थापना की आशा लगाये बैठे रहते हैं और इस आशा को साकार करने के लिए पुनर्स्थापना की कोशिश भी करते हैं।**'' (''लेनिन ग्रन्थावली'', चीनी संस्करण, ग्रन्थ 28, पृष्ठ 235)

लेनिन ने कहा था: ''**पूंजीपति वर्ग का प्रतिरोध उसका तख्ता उलट दिये जाने के परिणामस्वरूप (चाहे केवल एक ही देश में क्यों न हो), दस गुना ज्यादा बढ़ जाता है, और उसकी मजबूती न केवल अन्तरराष्ट्रीय पूंजी की शक्ति में और उसके अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्कों की शक्ति व स्थायित्व में निहित होती है, बल्कि आदतों की शक्ति और छोटे पैमाने के उत्पादन की शक्ति में भी निहित होती है। दुर्भाग्यवश, छोटे पैमाने का उत्पादन दुनिया में अब भी काफी फैला हुआ है, और छोटे पैमाने का उत्पादन लगातार, प्रतिदिन, प्रतिघण्टा, स्वत:स्फूर्त रूप से और व्यापक पैमाने पर पूंजीवाद को तथा पूंजीपति वर्ग को जन्म देता रहता है**''। लेनिन ने यह निष्कर्ष निकाला था: ''**इन सब कारणों से सर्वहारा अधिनायकत्व को लागू करना जरूरी हो जाता है।**'' (''लेनिन ग्रन्थावली'', चीनी संस्करण, ग्रन्थ 31, पृष्ठ 6)

लेनिन ने यह भी बताया था कि ''**नये बुर्जुआ**'' ''**हमारे सोवियत सरकारी कर्मचारियों में से पैदा**'' **हो रहे हैं।** (''लेनिन ग्रन्थावली'', चीनी संस्करण, ग्रन्थ 29, पृष्ठ 162)

लेनिन ने यह बताया था कि पूंजीवादी की पुनर्स्थापना का खतरा पूंजीवादी घेरेबंदी से भी पैदा होता है : साम्राज्यवादी देश ''**जैसा कि वे खुद ही कहते हैं, सशस्त्र हस्तक्षेप करने, यानी सोवियत राजसत्ता का गला घोंटने का कोई एक मौका भी हाथ से नहीं जाने देंगे।**'' (''लेनिन ग्रन्थावली'', चीनी संस्करण, ग्रन्थ 31, पृष्ठ 423)

सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट ने लेनिन की इन शानदार शिक्षाओं से पूरी तरह विश्वासघात किया है। ख्रुश्चोव से लेकर ब्रेझनेव जैसे लोगों तक सबके सब पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोग हैं, जिन्होंने पहले से ही सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर अपने आप को छिपा रखा था। सत्तारूढ़ होते ही उन्होंने पूंजीपति वर्ग की ''**पुनर्स्थापना की आशा**'' **को** ''**पुनर्स्थापना की कोशिश**'' **में बदल दिया, लेनिन और स्तालिन की पार्टी के नेतृत्व को हथिया लिया, और दुनिया के प्रथम सर्वहारा अधिनायकत्व वाले देश को** ''**शान्तिपूर्ण विकास**'' के जरिए फासिस्ट बुर्जुआ अधिनायकत्व वाले एक अंधकारमय देश में बदल दिया।

अध्यक्ष माओ ने आधुनिक संशोधनवाद, जिसका केन्द्र सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट है, के खिलाफ जैसे को तैसा संघर्ष किया है, तथा सर्वहारा क्रान्ति और सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को विरासत के रूप में ग्रहण किया है, उसकी रक्षा की है और उसका विकास किया है। अध्यक्ष माओ ने सर्वांगीण रूप में सर्वहारा अधिनायकत्व के सकारात्मक और नकारात्मक ऐतिहासिक अनुभवों का निचोड़ निकाला, और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम के लिए सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने का सिद्धान्त पेश किया।

चीनी क्रान्ति के नव-जनवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति में परिवर्तित होने की पूर्ववेला में, यानी मार्च 1949 में, अध्यक्ष माओ ने पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में प्रस्तुत रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से यह बताया था कि सर्वहारा वर्ग द्वारा सारे देश की राजसत्ता छीनने के बाद, देश में मुख्य अन्तरविरोध ''**मजदूर वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का अन्तरविरोध**'' होगा। संघर्ष का केन्द्र फिर भी राजनीतिक सत्ता का सवाल ही रहेगा। अध्यक्ष माओ ने हमें खास तौर पर यह ताकीद की: ''**बन्दूकधारी दुश्मनों को नेस्तनाबूद कर दिये जाने के बाद, बन्दूकरहित दुश्मन फिर भी मौजूद रहेंगे, वे निश्चय ही जान की बाजी लगाकर हमारे खिलाफ संघर्ष करेंगे, हमें इन दुश्मनों को नजरअन्दाज हरगिज नहीं करना चाहिए। अगर इस समय हम इस सवाल को इस तरह नहीं उठाते और इसे नहीं समझते, तो हम बहुत गम्भीर गलतियां कर बैठेंगे।**'' अध्यक्ष माओ ने इस बात का दूर-दर्शन किया कि सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना होने के बाद सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग-संघर्ष दीर्घकालीन और पेचीदा होगा, और उन्होंने सारी पार्टी के सामने राजनीतिक, विचारधारात्मक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनयिक क्षेत्रों में साम्राज्यवाद, क्वोमिन्ताङ और पूंजीपति वर्ग के खिलाफ संघर्ष करने का जुझारू कार्य पेश किया।

हमारी पार्टी ने अपनी सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन के फैसले के अनुसार तथा अध्यक्ष माओ द्वारा निर्धारित की गई संक्रमण काल में पार्टी की आम कार्यदिशा के अनुसार लगातार तीव्र संघर्ष किया। 1956 तक कृषि, दस्तकारी और पूंजीवादी उद्योग व व्यापार के क्षेत्रों में उत्पादक साधनों की मिलकियत की व्यवस्था का समाजवादी रूपान्तर मुख्य रूप से पूरा कर दिया गया। वह निर्णयात्मक घड़ी थी कि समाजवादी क्रान्ति लगातार आगे चल सकेगी या नहीं। अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में संशोधनवाद की उद्दण्डता और हमारे देश के वर्ग संघर्ष की नई प्रवृत्ति को देखते हुए अध्यक्ष माओ ने ''जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में'' शीर्षक अपनी महान रचना में सारी पार्टी को ताकीद करते हुए कहा था: ''**चीन में, हालांकि मिलकियत की व्यवस्था का समाजवादी रूपान्तर मुख्य रूप से पूरा हो चुका है**'', ''**फिर भी सत्ताच्युत जमींदार वर्ग और दलाल पूंजीपति वर्ग के अवशेष अब भी मौजूद हैं, पूंजीपति वर्ग अब भी मौजूद है और निम्न-पूंजीपति वर्ग का पुन:संस्कार करना अभी सिर्फ शुरू ही किया गया है।**'' 1956 में ल्यू शाओ-ची ने यह बेहूदा

दलील पेश की कि **"चीन में समाजवाद विजयी होगा या पूंजीवाद, यह सवाल अब हल हो चुका है।"** इस बेहूदा दलील के एकदम विरुद्ध अध्यक्ष माओ ने खास तौर पर यह बताया : **"यह सवाल कि अन्त में समाजवाद विजयी होगा या पूंजीवाद, वास्तव में अब भी तय नहीं हुआ है।" "सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग-संघर्ष, विभिन्न राजनीतिक शक्तियों के बीच का वर्ग-संघर्ष तथा विचारधारा के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग-संघर्ष अब भी एक दीर्घकालीन और टेढ़ा-मेढ़ा वर्ग-संघर्ष बना रहेगा, यहां तक कि कभी-कभी वह बहुत तीक्ष्ण भी हो जायेगा।"** इस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के सिद्धान्त और व्यवहार में स्पष्ट रूप से पहली बार यह बताया गया कि उत्पादक साधनों की मिलकियत की व्यवस्था का समाजवादी रूपान्तर मुख्य रूप से पूरा होने के बाद भी वर्ग और वर्ग संघर्ष मौजूद रहेंगे, और यह कि सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह क्रान्ति जारी रखे।

सर्वहारा हेडक्वार्टर, जिसके नेता अध्यक्ष माओ हैं, व्यापक जन समुदाय की रहनुमाई करते हुए अध्यक्ष माओ द्वारा निर्दिष्ट इस दिशा के अनुसार लगातार महान संघर्ष करता रहा है। 1957 में बुर्जुआ दक्षिण पंथियों के खिलाफ चलाये गये संघर्ष से लेकर 1959 में लूशान सम्मेलन में फेङ त-ह्वाए के पार्टी विरोधी गुट का भण्डाफोड़ करने के संघर्ष तक, समाजवादी निर्माण के सिलसिले में पार्टी की आम कार्यदिशा के बारे में बड़े बड़े वाद विवाद से लेकर समाजवादी शिक्षा आन्दोलन में दो कार्यदिशाओं के बीच हुए संघर्ष तक यह सवाल संघर्ष का केन्द्र बना रहा कि समाजवादी रास्ता अपनाया जाये या पूंजीवादी रास्ता, सर्वहारा अधिनायकत्व पर कायम रहा जाये या बुर्जुआ अधिनायकत्व की पुनर्स्थापना की जाये।

अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा की हर एक विजय, पूंजीपति वर्ग के खिलाफ पार्टी द्वारा छेड़ी गई हर महत्वपूर्ण मुहिम की विजय दक्षिणपंथी या देखने में **"वामपंथी"** मगर वास्तव में दक्षिणपंथी संशोधनवादी कार्यदिशा को, जिसका प्रतिनिधित्व ल्यू शाओ-ची करता था, चकनाचूर करके ही प्राप्त की गई है।

जांच पड़ताल से अब यह बात एकदम साबित हो चुकी है कि प्रथम क्रान्तिकारी गृहयुद्ध के काल में ही ल्यू शाओ-ची कम्युनिस्ट पार्टी से गद्दारी करके दुश्मन के सामने आत्मसमर्पण कर चुका था और वह दुश्मन एजेन्ट व स्कैब बन चुका था। वह, जिसने नाना प्रकार के अपराध कर डाले हैं, साम्राज्यवाद, आधुनिक संशोधनवाद और क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों का पालतू कुत्ता है, और वह पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों का सर्वप्रमुख प्रतिनिधि है। उसकी एक राजनीतिक कार्यदिशा थी जिसके जरिए उसने चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने और चीन को साम्राज्यवाद व संशोधनवाद के उपनिवेश के रूप में बदल देने की नाकाम कोशिश की। अपनी प्रतिक्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यदिशा को कार्यान्वित करने के लिए उसने एक संगठनात्मक कार्यदिशा भी चलाई थी। पिछले अनेक सालों से ल्यू शाओ-ची ने आत्मसमर्पणवादियों व विश्वासघातकों को अपने इर्द-गिर्द एकत्र करने की नीति के अनुसार गद्दारों, जासूसों और पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों को जमा कर एक गिरोह तैयार कर लिया। इस गिरोह के लोगों ने अपने-अपने प्रतिक्रान्तिकारी राजनीतिक रिकार्ड पर पर्दा डाले रखा और वे एक दूसरे को पनाह देते रहते थे तथा एक दूसरे के साथ सांठगांठ करके दुष्कर्म करते थे, उन्होंने पार्टी व राज्य के अनेक महत्वपूर्ण ओहदे हथिया लिए, बहुत सी केन्द्रीय और स्थानीय संस्थाओं के नेतृत्व को अपने कब्जे में कर लिया और इस तरह अध्यक्ष माओ की रहनुमाई में चलने वाले सर्वहारा हेडक्वार्टर के खिलाफ एक अण्डरग्राउण्ड बुर्जुआ हेडक्वार्टर कायम किया। उन्होंने साम्राज्यवादियों, आधुनिक संशोधनवादियों और क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के साथ सांठगांठ करके तोड़फोड़ करने के सिलसिले में एक ऐसी भूमिका अदा की जो अमरीकी साम्राज्यवादी, सोवियत संशोधनवादी और विभिन्न देशों के प्रतिक्रियावादी भी अदा नहीं कर सकते थे।

1939 में, जब माओ के नेतृत्व में जापानी आक्रमण विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध की आग प्रचण्ड रूप से भड़क रही थी, तो उस समय ल्यू शाओ-ची ने "आत्म उत्थान" के बारे में लिखी गई अपनी जहरीली पुस्तक निकाली। इस पुस्तक का बुनियादी तत्व सर्वहारा अधिनायकत्व के प्रति गद्दारी ही है। इस पुस्तक में जापानी साम्राज्यवाद को नष्ट करने का कहीं भी जिक्र नहीं किया गया, क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ किस तरह संघर्ष चलाया जाये, इस सिलसिले में भी कुछ नहीं कहा गया, और सशस्त्र बल से राजनीतिक सत्ता छीनने के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी सिद्धान्त की भी कोई चर्चा नहीं की गई, बल्कि इसमें कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को यह पट्टी पढ़ाई गयी कि वे महान क्रान्तिकारी व्यवहार से दूर होकर आदर्शवादी **"आत्म-उत्थान"** में लग जायें, वास्तव में उसका बेहूदा मकसद यह था कि वे "आत्म-उत्थान" करके साम्राज्यवाद और क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के प्रतिक्रान्तिकारी अधिनायकत्व के सामने घुटने टेक देने वाले गुलाम बन जायें।

जापानी-आक्रमण-विरोधी युद्ध में विजय होने के बाद, जबकि अमरीकी साम्राज्यवाद मुक्त क्षेत्रों पर बड़े पैमाने पर आक्रमण करने की तैयारियों में च्याङ काई-शेक की प्रतिक्रान्तिकारी सेना को हथियारबन्द कर रहा था, उसी मौके पर अमरीकी-च्याङ प्रतिक्रियावादियों की आवश्यकता के अनुसार यह आत्मसमर्पणवादी कार्यदिशा कि "चीन शान्ति और जनवाद की नई मंजिल पर पहुंच चुका है," सामने रखते हुए ल्यू शाओ-ची ने अध्यक्ष माओ द्वारा पेश की गई "साहस के साथ जन समुदाय को गोलबंद किया जाये और जन शक्ति का विस्तार किया जाये, ताकि वह हमारी पार्टी के नेतृत्व में आक्रमणकारियों को पराजित कर सके और नये चीन का निर्माण कर सके" की आम कार्यदिशा तथा अमरीकी-च्याङ प्रतिक्रियावादियों के आक्रमण के खिलाफ अपनाई गई **"शठे-शाठ्यम व्यवहार करने और एक-एक इंच जमीन के लिए लड़ने"** की नीति का विरोध किया। उसने इस बात का ढोल पीटा कि **"चीनी क्रान्ति के संघर्ष का मुख्य रूप आजकल हथियारबंद संघर्ष से गैर-हथियारबंद, जनव्यापी, संसदीय संघर्ष के रूप में बदल गया है,"** उसने यह चाहा कि जन सेना पर से पार्टी का नेतृत्व हटा दिया जाये, आठवीं राह सेना और नई चौथी सेना को, जिनसे बाद में जन-मुक्ति सेना कायम की गई, **"एकीकरण"** के लिहाज से च्याङ काई-शेक की **"राष्ट्रीय सेना"** में शामिल कर दिया जाये और बड़ी तादाद में ऐसे सैनिकों को सेना से बरखास्त कर दिया जाये, जो मजदूर-किसान घरानों से आये थे और पार्टी के नेतृत्व में रहते थे, और इस प्रकार उसने जड़-मूल से जन सेना को खत्म करने, चीनी क्रान्ति का गला घोंटने और विजय के उस फल को, जिसे चीनी जनता ने अपना खून बहाकर वापस छीन लिया था, अपने हाथों क्वोमिन्ताङ के हवाले कर देने की नाकाम कोशिश की।

अप्रैल 1949 में, उस मौके पर, जबकि चीनी जन-मुक्ति सेना याङत्सी नदी पार करने की तैयारियां कर रही थी, और चीन की नव-जनवादी क्रान्ति में देशव्यापी विजय प्राप्त होने ही वाली थी, ल्यू शाओ-ची भागा-भागा थ्येनचिन जा पहुंचा और पूंजीपतियों की गोद में जा बैठा। अभी-अभी समाप्त हुए पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में निर्धारित की गई निजी पूंजीवादी उद्योग का इस्तेमाल करने, उसे सीमित करने और उसका रूपान्तर करने की नीति का पागलपन के साथ विरोध करते हुए, उसने यह हांक लगाई कि **"चीन का पूंजीवाद आज भी अपनी जवानी के दौर में है"**, उसे असीमित रूप से **"डंके की चोट परवान चढ़ाया जाये"**, **"आज पूंजीवादी शोषण कोई अपराध नहीं है, बल्कि एक योगदान है"**, उसने बेशर्मी के साथ पूंजीपति वर्ग की तारीफों के पुल बांधते हुए कहा कि **"वे जितना ज्यादा शोषण करेंगे, उनका योगदान भी उतना ही बड़ा होगा"**, उसने उत्पादक शक्ति के संशोधनवादी सिद्धान्त की जोर-शोर से डींग हांकी और इस प्रकार चीन को पूंजीवादी रास्ते पर डाल देने की नाकाम कोशिश की।

मुख्तसर यह कि नव-जनवादी क्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति के बहुत से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मौकों पर ल्यू शाओ-ची और उसका गिरोह पागलपन के साथ अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा का विरोध करता

रहा और प्रतिक्रान्तिकारी षड्यंत्रकारी तोड़फोड़ की कार्यवाहियां करता रहा। लेकिन, चूंकि वे प्रतिक्रान्तिकारी थे, इसलिए उनके षड्यंत्र का भण्डाफोड़ होना ही था। ख्रुश्चोव के सत्तारूढ़ होने के बाद; खासकर जब सोवियत संशोधनवादी अमरीकी साम्राज्यवादियों और भारत व अन्य देशों के प्रतिक्रियावादियों के साथ सांठगांठ करके बड़े पैमाने पर चीन का विरोध करने लगे, तब वे और भी ज्यादा बेबाक हो गये।

सबसे पहले अध्यक्ष माओ ने ल्यू शाओ-ची और उसके गिरोह के प्रतिक्रान्तिकारी षड्यंत्र के खतरे को महसूस किया। जनवरी 1962 के पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के कार्य-सम्मेलन में अध्यक्ष माओ ने संशोधनवाद उत्पन्न होने के खतरे से सतर्क रहने की जरूरत पर जोर देने की ताकीद की। अगस्त 1962 में पेंडताएहो में हुए पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के कार्य-सम्मेलन और उसी साल सितम्बर में पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी के दसवें पूर्ण अधिवेशन में अध्यक्ष माओ ने और ज्यादा गहराई के साथ पूर्ण रूप से समाजवाद के पूरे ऐतिहासिक दौर में हमारी पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा पेश की। अध्यक्ष माओ ने बताया: **"समाजवादी समाज एक काफी लम्बा ऐतिहासिक दौर है। समाजवाद के इस ऐतिहासिक दौर में वर्ग, वर्ग-अन्तरविरोध और वर्ग-संघर्ष मौजूद रहते हैं, समाजवादी और पूंजीवादी दो रास्तों के बीच का संघर्ष मौजूद रहता है, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का खतरा बरकरार रहता है। हमें इस संघर्ष की दीर्घकालीनता और पेचीदगी को समझना चाहिए। हमें अपनी सतर्कता उन्नत करनी चाहिए। हमें समाजवादी शिक्षा का काम सम्भालना चाहिए। हमें वर्ग-अन्तरविरोधों और वर्ग-संघर्ष के मसले को सही ढंग से समझना और हल करना चाहिए, हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोध तथा जनता के बीच के अन्तरविरोध इन दो प्रकार के अन्तरविरोधों में सही ढंग से फर्क करना चाहिए और उन्हें सही ढंग से हल करना चाहिए। वरना, यह मुमकिन है कि हमारे तरह का एक समाजवादी देश अपने विपरीत तत्व में बदल जायेगा, उसका स्वरूप बदल जायेगा और उसमें पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो जायेगी। अब से हमें हर साल, हर महीने और हर रोज इस बात की चर्चा करनी चाहिए ताकि इस सवाल के बारे में हम अपेक्षाकृत साफ समझ हासिल कर सकें और हमारे पास एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा हो सके।"** अध्यक्ष माओ द्वारा पेश की गई यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा हमारी पार्टी का प्राण है।

इसके बाद, मई 1963 में अध्यक्ष माओ के निर्देशन में **"वर्तमान देहाती कार्य सम्बन्धी कुछ समस्याओं के बारे में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का फैसला (मसौदा)"** (यानी "10 धाराओं वाला फैसला") निर्धारित किया गया, जिसमें समाजवादी शिक्षा-आंदोलन में पार्टी की कार्यदिशा, उसूल और नीति तय की गई। माओ ने फिर एक बार समूची पार्टी को चेतावनी दी कि अगर वर्ग और वर्ग-संघर्ष भुला दिये जायें और सर्वहारा अधिनायकत्व को भुला दिया जाये, "**तो इस बात को ज्यादा समय नहीं लगेगा शायद चन्द साल या एक दशाब्दी या अधिक से अधिक चंद दशाब्दियां लगें कि अनिवार्य रूप से देशव्यापी पैमाने पर प्रतिक्रान्तिकारी पुनर्स्थापना हो जायेगी, मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी निस्सन्देह एक संशोधनवादी पार्टी, एक फासिस्ट पार्टी में बदल जायेगी तथा समूचे चीन का रंग बदल जायेगा। साथियो, आप जरा इस पर सोचें, यह कितनी खतरनाक स्थिति होगी!**" इस प्रकार, अध्यक्ष माओ ने समूची पार्टी और सारे देश की जनता को पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के खतरे के बारे में और ज्यादा स्पष्टता के साथ बताया है।

इन तमाम चेतावनियों और संघर्षों ने ल्यू शाओ-ची और उसके गिरोह के प्रतिक्रियावादी वर्ग-स्वरूप को रत्ती भर भी न बदला और न ही उसे बदलना मुमकिन था। 1964 के महान समाजवादी शिक्षा आन्दोलन में ल्यू शाओ-ची ने खुल्लमखुल्ला मैदान में आकर जन-समुदाय का दमन किया, पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों को पनाह दी, और उसने अध्यक्ष माओ द्वारा प्रतिपादित किये गये सामाजिक स्थिति की जांच-पड़ताल और अध्ययन करने के **मार्क्सवादी** वैज्ञानिक तरीके पर खुलेआम चोट करते हुए कहा कि वह **"पुराना पड़ चुका है"**। उसने यह भी बकवास की कि जो कोई भी उसकी कार्यदिशा को लागू करने से इनकार करेगा वह **"नेता बनने के लायक न होगा"**। वह और उसके गिरोह के लोग पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने के लिए अधीर थे। 1964 के अन्त में माओ ने पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का कार्य-सम्मेलन बुलाया और उनके निर्देशन में **"देहाती इलाकों में समाजवादी शिक्षा-आन्दोलन के दौरान उठाई गई कुछ वर्तमान समस्याएं"** नामक दस्तावेज (यानी **"23 धाराओं वाली दस्तावेज"**) तैयार की गई। माओ ने ल्यू शाओ-ची की उस बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी कार्यदिशा की कड़ी निन्दा की, जो देखने में "वामपंथी" मगर वास्तव में दक्षिणपंथी थी, और ल्यू शाओ-ची के अनेक बेतुके कथनों का खण्डन किया, मसलन **"पार्टी के भीतर और बाहर के अन्तरविरोधों की उलझनें"** और **"चार पहलुओं में साफ होने या न होने के अन्तरविरोध"** वगैरह-वगैरह। **साथ ही माओ ने पहली बार, स्पष्ट रूप से यह बताया कि 'वर्तमान आन्दोलन का मुख्य निशाना पार्टी के भीतर मौजूद वे कर्ताधर्ता लोग हैं जो पूंजीवादी रास्ता अपना रहे हैं"**। इस नए निष्कर्ष ने, जिस पर माओ घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रों में सर्वहारा अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभवों का निचोड़ निकालकर पहुंचे, समाजवादी शिक्षा आन्दोलन की दिशा ठीक कर दी, और शीघ्र ही बरपा होने वाली महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए भी स्पष्ट दिशा दिखा दी।

इस दौर के इतिहास का सिंहावलोकन करने पर हम यह जान सकते हैं कि मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति, जिसमें दसियों करोड़ क्रान्तिकारी जनता ने भाग लिया है, किसी भी तरह आकस्मिक रूप से कतई बरपा नहीं हुई है। यह समाजवादी समाज में मौजूद दो वर्गों के बीच, दो रास्तों के बीच, दो कार्यदिशाओं के बीच के दीर्घकालीन और तीव्र संघर्ष का अनिवार्य नतीजा है। यह **"सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग और अन्य तमाम शोषक वर्गों के खिलाफ चलाई जा रही महान राजनीतिक क्रान्ति है। यह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी व उसके नेतृत्व में व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय द्वारा क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के विरुद्ध चलाये जा रहे दीर्घकालीन संघर्ष का जारी रूप है, तथा सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के वर्ग-संघर्ष का जारी रूप है।"** वीर चीनी सर्वहारा वर्ग, गरीब व निम्न-मध्यम किसान, जनमुक्ति सेना, क्रान्तिकारी कार्यकर्ता व क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी, जिन्होंने महान नेता माओ का घनिष्ठ अनुसरण करते हुए समाजवादी रास्ता अपनाने का पक्का संकल्प कर रखा है, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने की ल्यू शाओ-ची व उसके गिरोह की कार्यवाहियों को बर्दाश्त न कर सके। और इस तरह एक महा वर्ग-संग्राम अनिवार्य हो गया।

जैसा कि माओ ने फरवरी 1967 में एक बार अपनी बातचीत के दौरान कहा था: **"पहले हमने देहातों में संघर्ष चलाया, कारखानों में संघर्ष चलाया, सांस्कृतिक क्षेत्र में संघर्ष चलाया और समाजवादी शिक्षा-आन्दोलन चलाया, लेकिन मसले को हल नहीं किया जा सका, क्योंकि हम ऐसा रूप और ऐसा तरीका नहीं खोज पाये, जिसके जरिये हम अपने अंधकारमय पहलुओं का पर्दाफाश करने के लिए खुले तौर पर, चौतरफा रूप से और नीचे से ऊपर तक व्यापक जन-समुदाय को गोलबंद कर सकें।"** अब हमने एक ऐसा रूप खोज निकाला है और वह है महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति। केवल दसियों करोड़ जनता को साहस के साथ अपनी रायें पेश करने, बड़े-बड़े अक्षरों वाले पोस्टर लिखने और बड़े-बड़े वाद-विवाद करने के लिए गोलबंद करके ही पार्टी में घुसे गद्दारों, जासूसों और पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों की कलई खोली जा सकती है और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने के उनके षड्यंत्र को धूल में मिलाया जा सकता है। गद्दार, दुश्मन एजेण्ट और स्कैब ल्यू शाओ-ची के केस की जांच-पड़ताल में व्यापक जन-समुदाय के भाग लेने की बदौलत ही इस पुराने प्रतिक्रान्तिकारी का असली चेहरा पूरी तरह बेनकाब किया जा सका। पार्टी की

आठवीं केन्द्रीय कमेटी के विस्तृत बारहवें पूर्ण अधिवेशन में ल्यू शाओ-ची को पार्टी के भीतर और बाहर के तमाम पदों से हटा देने और उसे पार्टी से हमेशा के लिए निकाल बाहर कर देने का फैसला किया गया। यह दसियों करोड़ जनता की एक महान विजय है। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने के सिद्धान्त के अनुसार हमारे महान शिक्षक माओ ने खुद इस महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात और नेतृत्व किया है। वाकई यह क्रान्ति **''निहायत जरूरी और अत्यन्त समयानुकूल है''**, और मार्क्सवाद लेनिनवाद के सिद्धान्त और व्यवहार के लिए यह एक महान नया योगदान है।

2. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की प्रक्रिया के बारे में

मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थिति में चलाई जाने वाली एक ऐसी महान राजनीतिक क्रान्ति है जिसका सूत्रपात खुद हमारे महान नेता माओ ने किया है और जिसका नेतृत्व खुद वे ही कर रहे हैं, और वह ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में चलाई जाने वाली एक महान क्रान्ति है। हमारा उद्देश्य है संशोधनवाद को चकनाचूर करना, सत्ता के उस भाग को, जिसे पूंजीपति वर्ग ने हथिया लिया था, वापस छीन लेना, ऊपरी ढांचे में जिसमें संस्कृति के सभी क्षेत्र भी शामिल हैं, चौतरफा सर्वहारा अधिनायकत्व को लागू करना, समाजवाद के आर्थिक आधार को सुदृढ़ व मजबूत बनाना और इस प्रकार इस बात की गारण्टी करना कि हमारा देश समाजवादी रास्ते पर लगातार लम्बे-लम्बे डग भरते हुए आगे बढ़ता रहेगा।

अध्यक्ष माओ ने 1962 में आयोजित चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी के दसवें पूर्ण अधिवेशन में ही बता दिया था: **''किसी एक राजसत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए, हमेशा इस बात की जरूरत होती है कि सबसे पहले लोकमत तैयार किया जाये, विचारधारात्मक क्षेत्र में कार्य किया जाये। यह बात जहां क्रान्तिकारी वर्ग पर लागू होती है, वहां प्रतिक्रान्तिकारी वर्ग पर भी लागू होती है।''** अध्यक्ष माओ के इस कथन का निशाना ल्यू शाओ-ची प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी गुट के मर्मस्थल पर ठीक बैठा। वे लोग ऐसे पुरजोर के साथ विचारधारात्मक क्षेत्र के कार्य को और ऊपरी ढांचे के कार्य को अपने पंजे में लाने की कुचेष्टा करते थे, तथा अपने कब्जे में रहने वाले विभिन्न विभागों के अन्दर सर्वहारा वर्ग पर पागलपन के साथ प्रतिक्रान्तिकारी अधिनायकत्व लागू करते थे और लातादाद जहरीली घासपातें फैलाते थे, जिसका मकसद सिर्फ एक ही था और वह था सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलटने के लिए लोकमत तैयार करना। उन्हें राजनीतिक तौर पर धराशायी करने के लिए यह जरूरी है कि हम भी सबसे पहले क्रान्तिकारी लोकमत से उनके प्रतिक्रान्तिकारी लोकमत को चकनाचूर कर दें।

अध्यक्ष माओ हमेशा से विचारधारात्मक क्षेत्र के संघर्ष पर खूब ध्यान देते आये हैं। सारे देश की मुक्ति के बाद उन्होंने फिल्म ''ऊ श्युन की जीवनी'', हू फङ प्रतिक्रान्तिकारी गुट और **''लाल भवन का सपना का अध्ययन''** आदि की आलोचना व खण्डन करने के लिए अनेक आन्दोलन छेड़े थे। इस बार भी फिर अध्यक्ष माओ ने ल्यू शाओ-ची और उसके गिरोह के कब्जे में रहने वाले बुर्जुआ मोर्चों पर धावा बोलने में समूची पार्टी का नेतृत्व किया। अध्यक्ष माओ ने **''सही विचार आखिर कहां से आते हैं?''** शीर्षक मशहूर लेख और अन्य दस्तावेजें लिखीं, जिनमें उन्होंने ल्यू शाओ-ची के बुर्जुआ आदर्शवाद व आध्यात्मवाद का खण्डन किया है तथा ल्यू शाओ-ची के नियंत्रण में रहने वाले कला साहित्य विभागों की आलोचना करते हुए यह कहा कि उनमें **''अब भी 'मरे हुए लोगों' का शासन जमा हुआ है''** और सांस्कृतिक मंत्रालय की आलोचना करते हुए कहा कि **''अगर वह अपने आप को बदलने से इंकार करे, तो उसका नाम राजा-रजवाड़ों, सेनापतियों व दीवानों के मंत्रालय, युवा विद्वानों व सुन्दरियों के मंत्रालय या विदेशी मृतकों के मंत्रालय में बदल देना चाहिए।''** और अध्यक्ष माओ ने स्वास्थ्य मंत्रालय की आलोचना करते हुए कहा कि उसका नाम भी **''शहरी लाट साहबों के स्वास्थ्य मंत्रालय''** में बदल देना चाहिए। अध्यक्ष माओ के आवाहन के अनुसार सर्वहारा वर्ग ने सबसे पहले पेकिङ आपेरा, बैले व सिम्फोनी संगीत जैसे क्षेत्रों में जिन्हें जमींदार वर्ग व पूंजीपति वर्ग पवित्र और अनुल्लंघनीय समझते थे, क्रान्ति चला दी। यह आमने-सामने का एक घोर संग्राम था। हालांकि ल्यू शाओ-ची व उसके गिरोह ने प्रतिरोध तथा तोड़-फोड़ करने की हरचंद कोशिश की, फिर भी सर्वहारा वर्ग ने कठोर संघर्ष के जरिए आखिरकार अहम कामयाबियां हासिल कर ही ली। अनेक शानदार मिसाली क्रान्तिकारी नाटकीय रचनाएं रोशनी में आ गई। मजदूरों, किसानों व सैनिकों की वीर प्रतिमाएं आखिरकार रंगमंच पर चढ़ गईं। इसके बाद अध्यक्ष माओ ने फिर **''हाए रूइ की अपने पद से बरखास्तगी''** और अन्य बड़ी-बड़ी जहरीली घासपातों की आलोचना व खण्डन करने के लिए संघर्ष छेड़ दिया; इस संघर्ष का निशाना सीधे संशोधनवादी गुट की माद ल्यू शाओ-ची के कब्जे में रहने वाले उस दुर्भेद्य व पुख्ता ''स्वतंत्र राज्य'' यानी पुरानी पेकिङ म्युनिसिपल पार्टी-कमेटी पर ही लगा दिया गया।

16 मई 1966 के ''सरकुलर'' में जो खुद अध्यक्ष माओ की सदारत में तैयार किया गया है, वर्तमान महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए सिद्धान्त, कार्यदिशा, निर्देशक उसूल तथा नीतियां निर्धारित की गई हैं और यह ''सरकुलर'' पूरे आन्दोलन का महान कार्यक्रम बन गया है। इस ''सरकुलर'' ने ल्यू शाओ-ची के बुर्जुआ हेडक्वार्टर द्वारा इस महान क्रान्ति का दमन करने के लिए प्रस्तुत की गई ''फरवरी रूपरेखा'' का पूरी तरह खण्डन किया, तथा उसने सारी पार्टी व सारे देश की जनता का आवाहन किया कि वे अपने संघर्ष का निशाना पार्टी के अन्दर घुस आये पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों को बनाएं और **''अब भी हमारे बिलकुल करीब आसन जमाए बैठे हुए'' ''खुश्चेव जैसे लोगों''** का पर्दाफाश करने पर खास ध्यान दें। यह सारे देश की जनता को एक महान राजनीतिक क्रान्ति चलाने के लिए गोलबंद करने का एक महान आवाहन था। केन्द्रीय कमेटी के मातहत सांस्कृतिक क्रान्ति ग्रुप ने, जो इस ''सरकुलर'' के निर्णय के मुताबिक कायम किया गया है, अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा को दृढ़ता के साथ लागू किया है।

अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा के मार्गदर्शन में व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय संघर्ष में कूद पड़ा। पेकिङ विश्वविद्यालय में पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के आवाहन में आकर बड़े-बड़े अक्षरों वाला एक पोस्टर लिखा गया। प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ विचारों का खण्डन करने के बड़े-बड़े अक्षरों वाले पोस्टर तेजी के साथ सारे देश में हर तरफ नजर आने लगे। इसके बाद लाल रक्षक जत्थे के जत्थे उठ खड़े होकर प्रकाश में आए, तथा क्रान्तिकारी किशोर और नौजवान लोग हौसले और हिम्मत से भरे अग्रगामी बन गये। यह देखकर ल्यू शाओ-ची गुट के हाथ-पांव फूल गये। उसने जल्दबाजी के साथ एक प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ कार्यदिशा खींच निकाली और क्रूरता के साथ नौजवान विद्यार्थियों के क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन किया। लेकिन इसके बावजूद भी उसे अपने को विनाश से बचाने के लिए ज्यादा समय नहीं मिल सका। अध्यक्ष माओ ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी का ग्यारहवां पूर्ण अधिवेशन बुलाया और इसकी सदारत की। इस पूर्ण अधिवेशन में एक कार्यक्रमीय दस्तावेज– **''महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बारे में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का फैसला''** (यानी ''16 धाराओं वाला फैसला'') – पास की गई। अध्यक्ष माओ ने **''हेडक्वार्टर पर गोलाबारी करो''** शीर्षक अपना बड़े-बड़े अक्षरों वाला पोस्टर पेश कर ल्यू शाओ-ची के बुर्जुआ हेडक्वार्टर का पर्दाफाश किया। अध्यक्ष माओ ने लाल रक्षकों के नाम अपने एक पत्र में बताया कि लाल रक्षकों की क्रान्तिकारी कार्यवाहियां **''जमींदार वर्ग, पूंजीपति वर्ग, साम्राज्यवादियों, संशोधनवादियों और उनके गुर्गों, जो सब मजदूरों, किसानों, क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों और क्रान्तिकारी पार्टियों व ग्रुपों का शोषण व दमन करते हैं, के प्रति**

तुम लोगों के रोष व निंदा जाहिर करती हैं, और यह भी जाहिर करती हैं कि प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ विद्रोह करना न्यायोचित है। मैं तुम लोगों का हार्दिक समर्थन करता हूं।'' इसके बाद अध्यक्ष माओ ने राजधानी के थ्येनआनमन पर सारे देश की विभिन्न जगहों से आये लाल रक्षकों और अन्य क्रान्तिकारी जन-समुदाय से आठ बार सलामी ली, जिनकी कुल संख्या 1 करोड़ 30 लाख थी। इससे सारे देश की जनता के क्रान्तिकारी जुझारू संकल्प को बढ़ाया गया। मजदूरों, किसानों और क्रान्तिकारी दफ्तरी कार्यकर्ताओं के क्रान्तिकारी आंदोलन बड़ी तेजी से भड़क उठे। बड़े बड़े अक्षरों वाले पोस्टर और भी बड़ी संख्या में निकलने लगे, मानो विशाल जंगल में प्रचण्ड आग फैल रही हो, और हजारों तोपें एक साथ गरज रही हों। **''प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ विद्रोह करना न्यायोचित है''** यह नारा सारे देश में गूंज उठा। ल्यू शाओ-ची के बुर्जुआ हेडक्वार्टर पर गोलाबारी करने का दसियों करोड़ जनता का संघर्ष जोरशोर से विकसित हो उठा।

कोई भी ऐसा प्रतिक्रियावादी वर्ग नहीं है, जो खुद-ब-खुद इतिहास के मंच से नीचे उतरे। जब क्रान्ति ने सत्ता के उस भाग को छुआ, जिसे पूंजीपति वर्ग के नाजायज रूप से हथिया लिया था, तब वर्ग-संघर्ष ने और ज्यादा तीव्र रूप धारण कर लिया। ल्यू शाओ-ची का पतन हो जाने के बाद उसके संशोधनवादी गुट और विभिन्न स्थानों में उसके एजेन्टों ने लोगों की बहुसंख्या पर प्रहार और अपने मुट्ठी भर लोगों की हिफाजत जारी रखने की नाकाम कोशिश में लगातार हथकण्डे बदलकर **''सभी पर संदेह करना'' और ''सभी को धराशायी करना''** जैसे नारे निकाले, जिनका बाह्य रूप ''वामपंथी'' है और अन्तर्वस्तु दक्षिणपंथी। इसके अलावा अपनी हिफाजत करने के लिए उन्होंने क्रान्तिकारी जन-समुदाय में फूट डाली और जन-समुदाय के एक भाग को अपने नियंत्रण में रखा और उसे धोखे में डाल दिया। जब उनकी इन साजिशों को सर्वहारा क्रान्तिकारियों द्वारा चकनाचूर कर दिया गया तो उन्होंने फिर एक बार पागलपन के साथ जवाबी हमला किया, और यह थी 1966 की सर्दियों से 1967 के वसन्त तक उत्पन्न उल्टी धारा।

इस उल्टी धारा ने अपना निशाना सर्वहारा हेडक्वार्टर को, जिसके नेता अध्यक्ष माओ हैं, बना दिया। उसका आम कार्यक्रम एक ही था: पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी के ग्यारहवें पूर्ण अधिवेशन में पास किये गये फैसलों को उलट देना, ल्यू शाओ-ची की अगुवाई में चलने वाले बुर्जुआ हेडक्वार्टर के बारे में, जिसे उखाड़ फेंका जा चुका था, किये गये फैसले को उलट देना, उस प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ कार्यदिशा, जिसे व्यापक जन-समुदाय खण्डित कर ठोकरों से उड़ा चुका था, के बारे में किये गये फैसले को उलट देना तथा क्रान्तिकारी जन-आंदोलन का दमन करना और अपना बदला लेना। लेकिन इस उल्टी धारा की अध्यक्ष माओ ने गम्भीरता के साथ आलोचना की तथा व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय ने उसका प्रतिरोध किया। यह उल्टी धारा क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन की मुख्य धारा को तेजी से आगे बढ़ने से न रोक सकी।

क्रान्तिकारी आन्दोलन में कई बार टेढ़ेमेढ़े रास्तों से गुजरने और पस्पाइयों का सामना करने से व्यापक जन-समुदाय ने राजनीतिक सत्ता के महत्व को और अच्छी तरह समझ लिया : ल्यू शाओ-ची और उसका गिरोह मुख्यत: इस वजह से बुरा काम कर सकते थे क्योंकि उन लोगों ने बहुत सी इकाइयों व स्थानों में सर्वहारा वर्ग की सत्ता नाजायज रूप से हथिया ली थी; क्रान्तिकारी जन समुदाय को मुख्यत: इस वजह से दमन का सामना करना पड़ता था क्योंकि वहां की सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथ में नहीं थी। कुछ इकाइयों में बाहरी तौर पर समाजवादी मिलकियत की व्यवस्था थी, लेकिन असली नेतृत्वकारी सत्ता मुट्ठीभर गद्दारों, जासूसों और पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों द्वारा हथिया ली गई थी, या ज्यों की त्यों भूतपूर्व पूंजीपतियों के ही हाथ में रही थी। खासकर जब **''उत्पादन पर जोर देने''** के बहाने क्रान्ति को दबाने की पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों की साजिश धूल में मिल जाने के बाद उन्होंने प्रतिक्रान्तिकारी अर्थवाद की दूषित आंधी बरपा की, तब व्यापक जन-समुदाय यह और अच्छी तरह समझने लगा कि सिर्फ खोई हुई सत्ता को फिर से वापस छीनकर ही पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों को पूरी तरह पराजित किया जा सकता है। क्रान्तिकारी परम्परा रखने वाला शांघाई का मजदूर वर्ग अध्यक्ष माओ तथा सर्वहारा हेडक्वार्टर, जिसके नेता अध्यक्ष माओ हैं, के नेतृत्व व समर्थन में सीना तानकर मैदान में उतरा और उसने व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय और क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर जनवरी 1967 में नीचे से पुरानी शांघाई म्युनिसिपल पार्टी कमेटी और म्युनिसिपल जन-परिषद में पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों से सत्ता छीन ली।

अध्यक्ष माओ ने ऐन मौके पर शांघाई में क्रान्ति के जनवरी तूफान के अनुभवों का निचोड़ निकाला और सारे देश का आवाहन किया : **''सर्वहारा क्रान्तिकारियो, एक हो जाओ और पार्टी के भीतर मौजूद पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले मुट्ठीभर कर्ताधर्ता लोगों से सत्ता छीन लो!''** इसके बाद अध्यक्ष माओ ने फिर यह हिदायत दी कि **''जनमुक्ति सेना को व्यापक वामपंथी जन-समुदाय का समर्थन करना चाहिए''**। अध्यक्ष माओ ने आगे चलकर हेलुङच्याङ और अन्य कुछ प्रान्तों व म्युनिसिपलटियों के अनुभवों का निचोड़ निकाला और ऐसी क्रान्तिकारी कमेटी को, जिसमें क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि, जन-मुक्ति सेना के प्रतिनिधि और क्रान्तिकारी जन-समुदाय के प्रतिनिधि शामिल हैं तथा क्रान्तिकारी त्रिपक्षीय संश्रय कायम होता है, स्थापित करने के निर्देशक उसूल व नीतियां निर्धारित कीं, इस प्रकार सत्ता छीनने के देशव्यापी संघर्ष को आगे बढ़ाया गया।

सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच सत्ता छीनने व फिर उसे वापस लेने का संघर्ष जीवन-मरण का संघर्ष है। 1967 में शांघाई में क्रान्ति के जनवरी तूफान से लेकर सितम्बर 1968 में तिब्बत व सिनच्याङ की क्रान्तिकारी कमेटियों की स्थापना तक के एक साल और नौ महीने के दौरान दो वर्गों तथा दो कार्यदिशाओं के बीच राजनीतिक ताकतों की बारम्बार आजमाइश हुई, सर्वहारा विचारों और गैर-सर्वहारा विचारों के बीच घोर संघर्ष हुआ, और इस प्रकार जेहद पेचीदा हालत पैदा हुई। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने बताया है: **''अतीत काल में हम उत्तर-दक्षिण में विशाल भूमि पर लड़ते रहते थे, उस तरह के युद्ध लड़ना आसान था। क्योंकि दुश्मन साफ दीखते थे। मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति उस तरह के युद्ध से कहीं ज्यादा मुश्किल है।'' ''समस्या यह है कि विचारधारात्मक गलती करने वाले लोग, उन लोगों में मिलकर रह गये जिनके और हमारे बीच का अन्तरविरोध, हमारे और दुश्मन के बीच का अन्तरविरोध है, और कुछ समय तक के लिए उनमें फर्क करना मुश्किल है।''** लेकिन अध्यक्ष माओ के विवेकपूर्ण नेतृत्व के भरोसे, हमने आखिरकार इस कठिनाई को दूर कर दिया। 1967 की गर्मियों में अध्यक्ष माओ ने याङत्सी नदी के उत्तर और दक्षिण के विशाल इलाकों का दौरा किया और अत्यन्त महत्वपूर्ण हिदायतें दीं तथा हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोध तथा जनता के बीच के अन्तरविरोध इन दोनों में कदम-ब-कदम भेद करने में और क्रान्तिकारी महा समन्वय व क्रान्तिकारी त्रिपक्षीय संश्रय को एक कदम आगे बढ़कर साकार बनाने में व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय का मार्गदर्शन किया और निम्न बुर्जुआ विचार रखने वाले लोगों का सर्वहारा क्रान्ति के पथ पर चलने में मार्गदर्शन किया। इसके फलस्वरूप, इस संघर्ष के दौरान सिर्फ दुश्मनों को गड़बड़ में डाल दिया गया, जबकि व्यापक जन-समुदाय तपकर फौलाद बन गया।

जन-समुदाय के अन्दर छिपे मुट्ठी भर गद्दार, जासूस, उन जमींदार, धनी किसान, प्रतिक्रान्तिकारी, बुरे तत्व और दक्षिणपंथी, जो अब तक सुधरे नहीं हैं, क्रियाशील प्रतिक्रान्तिकारी, बुर्जुआ कैरियरवादी और दुरंगे, ये सब तब तक अपना असली रूप नहीं दिखाते, जब तक अनुकूल आब-हवा पैदा नहीं हो जाती। 1967 की गर्मियों और 1968 के वसन्त में उन लोगों ने फिर एक

बार दक्षिणपंथ की ओर से और अति ''वामपंथ'' की ओर से सही फैसलों को उलट देने वाली प्रतिक्रियावादी दूषित आंधी का एक झोंका उठाया। उन लोगों ने अपने प्रहार का निशाना सर्वहारा हेडक्वार्टर को, जिसके नेता अध्यक्ष माओ हैं, जन-मुक्ति सेना को और नवजात क्रान्तिकारी कमेटियों को बनाया। साथ ही उन लोगों ने सर्वहारा वर्ग के हाथों से सत्ता को पुनः हथियाने की नाकाम कोशिश में जन-समुदाय को आपस में लड़ने के लिए उकसाना दिया और प्रतिक्रान्तिकारी षड्यंत्रकारी गुट संगठित किए। लेकिन उनके सरगना ल्यू शाओ-ची की ही तरह आखिर में इन मुट्ठी भर दुष्ट जनों का भी पर्दाफाश किया गया। यह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की एक भारी विजय है।

3. संघर्ष–आलोचना व खण्डन–रूपान्तर का काम संजीदगी के साथ बखूबी सम्पन्न करने के बारे में

अन्य तमाम क्रान्तियों के समान ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में वर्तमान महान क्रान्ति का बुनियादी सवाल राजनीतिक सत्ता का सवाल है, एक ऐसा सवाल कि कौन सा वर्ग नेतृत्वकारी सत्ता धारण करता है। सारे देश के सभी प्रान्तों (केवल थाइवान प्रान्त के अलावा), म्युनिसिपलटियों और स्वायत्त-प्रदेशों में क्रान्तिकारी कमेटियां कायम की जा चुकी हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि इस क्रान्ति में महान और निर्णयात्मक विजय प्राप्त हो चुकी है। लेकिन क्रान्ति अभी पूरी नहीं हुई है। सर्वहारा वर्ग को लगातार आगे बढ़ना है, **''संघर्ष-आलोचना व खण्डन–रूपान्तर का काम संजीदगी के साथ बखूबी सम्पन्न करना चाहिए''**, तथा ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में समाजवादी क्रान्ति को अन्त तक चलाना चाहिए।

अध्यक्ष माओ ने बताया है : **''कारखाने में संघर्ष–आलोचना व खण्डन–रूपान्तर का कार्य कुल मिलकार इन मंजिलों से गुजरता है : त्रिपक्षीय संश्रय वाली क्रान्तिकारी कमेटी कायम करना; जनव्यापी आलोचना व खण्डन करना; वर्ग-पांतों को शुद्ध करना; पार्टी-संगठन को सुदृढ़ बनाना; तथा प्रशासनिक ढांचे को कारगर व सरल बनाना, अनुचित नियम-कायदों को बदल देना और दफ्तरों में काम करने वाले लोगों को बर्कशापों में भेजना।''** हमें अध्यक्ष माओ की हिदायत के मुताबिक हरेक कारखाने, हरेक स्कूल, हरेक जन-कम्यून और हरेक इकाई में गहराई व बारीकी से, अपने पैर जमीन पर रखते हुए और समुचित ढंग से इन कार्यों को पूरा करना चाहिए। यूं तो क्रान्तिकारी कमेटी के काम सैकड़ों-हजारों होते हैं, पर उसे मूल कार्य को गिरफ्त में रखना चाहिए, माओ त्से-तुङ विचारधारा का सजीव रूप से अध्ययन करने और उसे सजीव रूप से लागू करने के कार्य को तमाम कामों में सर्वोपरि स्थान पर रखना चाहिए, तथा हर चीज को माओ त्से-तुङ विचारधारा की कमान में रखना चाहिए। पिछली कई दशाब्दियों से अध्यक्ष माओ की विचारधारा सारी पार्टी और सारे देश की जनता की क्रान्ति का मार्गदर्शन करती आई है। लेकिन चूंकि ल्यू शाओ-ची और उसके गिरोह के अन्य प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी तत्व अध्यक्ष माओ की हिदायतों के फैलने पर पाबन्दी लगाते थे, इसलिए व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय के लिए प्रत्यक्ष रूप से अध्यक्ष माओ की आवाज सुनना मुश्किल होता था। मौजूदा महान क्रान्ति के तूफान ने सभी छोटे-बड़े ''यमों के दरबारों'' को चकनाचूर कर दिया है जिसकी बदौलत अध्यक्ष माओ की विचारधारा सीधे तौर पर व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय में पहुंच सकी है। यह एक महान विजय है। माओ त्से-तुङ विचारधारा का 70 करोड़ आबादी वाले बड़े देश में इतने व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार होना मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में प्राप्त सबसे बड़ा फल है। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में दसियों करोड़ जनता हर समय ''अध्यक्ष माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण'' को अपने पास रखती है, लगन के साथ इसका अध्ययन करती है और लगन के साथ इसे लागू करती है; अध्यक्ष माओ की नवीनतम हिदायत के प्रकाशित होते ही वह फौरन उसका प्रचार करती है और उसके अनुसार व्यवहार करती है। यह एक सबसे मूल्यवान कार्यशैली है, जिसे बनाये रखना चाहिए और जिस पर डटे रहना चाहिए। हमें माओ त्से-तुङ विचारधारा का सजीव रूप से अध्ययन करने और उसे सजीव रूप से लागू करने के जन-आंदोलन को गहराई के साथ चलाना चाहिए, माओ त्से-तुङ विचारधारा की भिन्न-भिन्न प्रकार की अध्ययन-कक्षाओं को लगातार अच्छी तरह जारी रखना चाहिए, तथा अध्यक्ष माओ के 1966 में दिये '7 मई निर्देश'' के अनुसार समूचे देश को सही अर्थ में माओ त्से-तुङ विचारधारा का एक महाविद्यालय बनाना चाहिए।

तमाम क्रान्तिकारी कामरेडों को स्पष्टता के साथ यह देख लेना चाहिए कि विचारधारा एक और राजनीतिक क्षेत्रों में वर्ग-संघर्ष हरगिज नहीं रुकेगा। यह कतई नहीं हो सकता कि हमारे द्वारा सत्ता छीन लिये जाने की वजह से सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का संघर्ष गायब हो जाये। हमें क्रान्तिकारी जनव्यापी आलोचना व खण्डन के झण्डे को लगातार बुलन्द रखना चाहिए, माओ त्से-तुङ विचारधारा के सहारे पूंजीपति वर्ग का खण्डन, संशोधनवाद का खण्डन, तरह-तरह की दक्षिणपंथी या अति ''वामपंथी' गलत धारणाओं, जो अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा के विरुद्ध हैं, का खण्डन, बुर्जुआ व्यक्तिवाद का खण्डन तथा ''बहुत से केन्द्रों'' के सिद्धान्त यानी ''कोई केन्द्र नहीं'' के सिद्धान्त का खण्डन करना चाहिए। हमें गद्दार, दुश्मन-एजेन्ट और स्कैब ल्यू शाओ-ची के ऐसे गन्दे माल, जैसे विदेशियों के गुलाम बनने के दलाल-पूंजीवादी दर्शन तथा घोंघे की चाल से पीछे-पीछे रेंगने के सिद्धान्त का लगातार और पूरी तरह खण्डन करना चाहिए तथा पूरी तरह उनकी साख मिट्टी में मिला देनी चाहिए, तथा हमें अध्यक्ष माओ के ''स्वतंत्रता व पहलकदमी और स्वावलम्बन'' के विचार को व्यापक कार्यकर्ताओं और जन-समुदाय के दिलो दिमाग में मजबूती से रचा-बसा देना चाहिए, ताकि इसकी गारण्टी की जा सके कि हमारा कार्य अध्यक्ष माओ द्वारा निर्दिष्ट दिशा में लगातार आगे बढ़ता जाये।

अध्यक्ष माओ ने बताया है : **''क्रान्तिकारी कमेटी को एकीकृत नेतृत्व लागू करना, प्रशासनिक ढांचे का दोहराव भंग करना, 'बेहतर फौज और सरल प्रशासन' वाली नीति को अमल में लाना, तथा अपने को एक ऐसे क्रान्तिकारीकृत नेतृत्वकारी ग्रुप के रूप में संगठित करना चाहिए जो जन-समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्पर्क कायम रखता हो।''** यह एक ऐसा मूल उसूल है जो समाजवादी आर्थिक आधार की और अच्छी तरह सेवा करने के लिए ऊपरी ढांचे को प्रेरित करता है। जन-समुदाय से अलग होने वाला दोहरा प्रशासनिक ढांचा, जन-समुदाय की क्रान्तिकारी सक्रियता को दबाने और कसने का पाण्डित्य प्रदर्शनवाद तथा शान-शौकत और चटक-मटक दिखाने की जमींदार वर्ग और पूंजीपति वर्ग की कार्यशैली – ये सब समाजवादी आर्थिक आधार को नष्ट करते हैं, पूंजीवाद के लिए फायदेमंद हैं और समाजवाद के लिए हानिकारक। राजसत्ता की विभिन्न स्तरों की संस्थाओं और अन्य संगठनों को अध्यक्ष माओ की हिदायतों के अनुसार जन-समुदाय से, और सबसे पहले जन-समुदाय के बुनियादी तबकों – मजदूर वर्ग और गरीब व निम्न-मध्यम किसानों से घनिष्ठ सम्पर्क रखना चाहिए। नये और पुराने कार्यकर्ताओं को अक्सर नौकरशाहाना धूल की झाड़-पोंछ करनी चाहिए, ''नौकरशाह और लाट के समान व्यवहार करने'' की बुरी आदत न लगनी चाहिए। उन्हें किफायत से क्रान्ति चलाने और परिश्रम व अल्पव्यय से तमाम समाजवादी कार्य चलाने पर डटे रहना चाहिए, शान-शौकत दिखाने और फिजूलखर्ची का विरोध करना चाहिए और पूंजीपति वर्ग की शक्कर में लिपटी गोलियों के प्रहार से सतर्क रहना चाहिए। उन्हें कार्यकर्ताओं के सामूहिक उत्पादक श्रम में भाग लेने की व्यवस्था को अविचल रूप से बनाये रखना चाहिए और जन समुदाय के जीवन पर ध्यान रखना चाहिए। अध्यक्ष माओ की शिक्षाओं के अनुसार खुद जांच-पड़ताल व अध्ययन करना चाहिए, एक या कई ''गौरैयाओं'' को चीर फाड़कर उनका विश्लेषण करना चाहिए और

लगातार अनुभवों का निचोड़ निकालते रहना चाहिए। हमेशा आलोचना और आत्मालोचना करनी चाहिए, क्रान्ति के उत्तराधिकारियों के बारे में अध्यक्ष माओ द्वारा पेश की गई पांच शर्तों के अनुसार, **''स्वार्थ से संघर्ष और संशोधनवाद का खण्डन''** करना चाहिए और संजीदगी से अपने विश्व-दृष्टिकोण का पुन:संस्कार करना चाहिए।

जन-मुक्ति सेना सर्वहारा अधिनायकत्व का शक्तिशाली आधार-स्तम्भ है। अध्यक्ष माओ ने कई बार बताया है कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखा जाये, तो राज्य का मुख्य तत्व सेना है। चीनी जन-मुक्ति सेना, जो खुद अध्यक्ष माओ के हाथों स्थापित हुई है और जिसका नेतृत्व वे खुद करते आये हैं, मजदूरों और किसानों की सेना है, सर्वहारा वर्ग की सेना है। साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और नौकरशाह-पूंजीवाद, इन तीन बड़े पहाड़ों को उलट देने के संघर्ष में, तथा मातृभूमि की रक्षा करने, अमरीकी साम्राज्यवाद के आक्रमण का मुकाबला करने व कोरिया की सहायता करने और साम्राज्यवाद, संशोधनवाद व प्रतिक्रियावादियों के आक्रमण को नेस्तनाबूद करने के संघर्षों में इस सेना ने महान ऐतिहासिक योगदान किया है। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में कमाण्डरों और सैनिकों की बड़ी संख्या ने उद्योग, कृषि और व्यापक वामपंथी जन-समुदाय का समर्थन करने, फौजी नियंत्रण करने, फौजी व राजनीतिक ट्रेनिंग देने के कार्य में भाग लिया है, फौज के प्रतिनिधियों ने त्रिपक्षीय संश्रय में भाग लिया है; वे वर्ग-संघर्ष में तप चुके हैं, उन्होंने जन-समुदाय से घनिष्ट सम्पर्क कायम रखे हैं, सेना के विचारधारात्मक क्रान्तिकारीकरण को बढ़ाया है, और जनता के लिए नया योगदान किया है। युद्ध का मुकाबला करने के लिए यह सबसे अच्छी तैयारी भी है। हमें **''सरकार का समर्थन करने और जनता को प्यार करने''** तथा **''सेना का समर्थन करने और जनता को प्यार करने''** की गौरवपूर्ण परम्परा का विकास करना चाहिए, सेना और जनता की एकता को और मजबूत करना चाहिए, जन-मिलिशिया के निर्माण-कार्य को और बढ़ाना चाहिए, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के निर्माण-कार्य को और बढ़ाना चाहिए और अपने सभी कामों को और अधिक सुचारू ढंग से करना चाहिए। पिछले तीन सालों में गद्दारों, जासूसों और अपने आप को न सुधारने पर अड़े पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों तथा प्रतिक्रान्तिकारियों ने हमारी इस महान जन सेना को छिन्न-भिन्न करने की कोशिश की थी, लेकिन उनकी कुचेष्टा धूल में मिला दी गई, इसकी वजह ठीक यह है कि जनता ने सेना का समर्थन किया है और सेना ने जनता की रक्षा की है।

ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में संस्कृति, कला, शिक्षा, प्रेस और स्वास्थ्य-सेवा आदि विभागों का बेहद महत्वपूर्ण स्थान है। पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में **''दिलोजान से मजदूर वर्ग पर भरोसा रखना चाहिए''** की कार्यदिशा तय की गई थी और अब, **''मजदूर वर्ग को हर कार्य का नेतृत्व करना चाहिए''**, अध्यक्ष माओ के इस महान आवाहन पर, मजदूर वर्ग, जो कि सर्वहारा क्रान्ति की मुख्य शक्ति है, और उसके सुदृढ़ संश्रयकारी, गरीब और निम्न-मध्यम किसान, ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में संघर्ष-आलोचना व खण्डन-रूपान्तर के राजनीतिक रंगमंच पर चढ़ गये हैं। 27 जुलाई 1968 से मजदूर वर्ग के शक्तिशाली जत्थों ने पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों द्वारा लम्बे अरसे से शासित इकाइयों में और उन सभी स्थानों में जहां बुद्धिजीवी केन्द्रित हैं, प्रवेश करना शुरू कर दिया। यह एक महान क्रान्तिकारी कार्यवाही है। सर्वहारा वर्ग संस्कृति और शिक्षा के मोर्चों को मजबूती के साथ अपने कब्जे में रख सकता है या नहीं और माओ त्से-तुङ विचारधारा से उनका रूपान्तर कर सकता है या नहीं, यह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को अन्त तक चलाने का कुंजीभूत सवाल है। अध्यक्ष माओ इस काम पर बड़ा महत्व देते हैं, उन्होंने ख़ुद आदर्श नमूनों पर गिरफ्त रखी है, और इस प्रकार हमारे सामने एक शानदार मिसाल कायम कर दी है। हमें अपने कुछ साथियों की विचारधारात्मक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक मोर्चों की अवहेलना करने की गलत प्रवृत्ति को दूर कर देना चाहिए; हमें अध्यक्ष माओ का घनिष्ठ अनुसरण करना चाहिए और दीर्घकालीन, कठोर व बारीक काम करना चाहिए। **''मजदूर वर्ग को भी चाहिए कि वह संघर्ष में लगातार अपनी राजनीतिक चेतना उन्नत करता रहे''** ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में संघर्ष-आलोचना व खण्डन-रूपान्तर का नेतृत्व करने के अनुभवों का निचोड़ निकाले और इस मोर्चे पर जीत हासिल करे।

4. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की नीतियों के बारे में

ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में क्रान्ति जारी रखने के लिए यह बेहद जरूरी है कि संजीदगी के साथ अध्यक्ष माओ की विभिन्न सर्वहारा नीतियां लागू की जायें।

16 मई 1966 के ''सरकुलर'' और अगस्त 1966 के ''16 धाराओं वाले फैसले'' में ही महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की नीतियों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था। अध्यक्ष माओ की सिलसिलेवार नवीनतम हिदायतों ने, जिनमें **''महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में संघर्ष-आलोचना व खण्डन-रूपान्तर की मंजिल के दौरान नीति पर संजीदगी से ध्यान देना चाहिए''** वाली हिदायत भी शामिल है, विभिन्न नीतियों को और भी ठोस रूप दे दिया है।

अब मुख्य सवाल इन नीतियों को कार्यान्वित करने का है।

पार्टी की विभिन्न नीतियों का, जिनमें बुद्धिजीवियों के प्रति नीति, कार्यकर्ताओं के प्रति नीति, **''शिक्षित किये जा सकने वाले बेटे-बेटियों''** के प्रति नीति (यहां उन लोगों के बेटे-बेटियों का जिक्र है जिन्होंने अपराध किये हैं या गम्भीर गलतियां की हैं। - अनुवादक), जन-समुदाय के संगठनों के प्रति नीति, दुश्मन के खिलाफ संघर्ष करने के बारे में नीति और आर्थिक नीति आदि शामिल हैं, आम विषय इस सवाल से सम्बन्धित है कि हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोध तथा जनता के बीच के अन्तरविरोध इन दो भिन्न प्रकार के अन्तरविरोधों को किस तरह सही ढंग से हल किया जाये।

पुराने स्कूलों और कालेजों में प्रशिक्षित बुद्धिजीवियों की बहुसंख्या या भारी बहुसंख्या अपने आप को मजदूरों, किसानों और सैनिकों के साथ एकरूप कर सकती है या करने की इच्छा रखती है। अध्यक्ष माओ की सही कार्यदिशा के मार्गदर्शन में मजदूरों, किसानों और सैनिकों द्वारा उन्हें ''पुन:शिक्षा'' दी जानी चाहिए। जिन बुद्धिजीवियों ने अपने आप को मजदूरों, किसानों और सैनिकों से अच्छी तरह एकरूप कर दिया है और जो लाल रक्षक व नौजवान बुद्धिजीवी पहाड़ी इलाकों और देहातों में जा बसने के लिए सक्रिय हैं, उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

अध्यक्ष माओ ने अनेक बार हमें यह शिक्षा दी है **''शिक्षा के जरिए ज्यादा व्यक्तियों की मदद करनी चाहिए और प्रहार का दायरा छोटा करना चाहिए''**, **''मार्क्स की इस शिक्षा कि सर्वहारा वर्ग समूची मानव जाति को मुक्त कराके ही अपनी अन्तिम मुक्ति प्राप्त कर सकता है, पर अमल किया जाना चाहिए।''** जिन लोगों ने गलतियां की हैं, उनके प्रति इस बात पर जोर देना चाहिए कि उन्हें शिक्षा और पुन:शिक्षा दी जाये, धीरज और बारीकी के साथ विचारधारात्मक व राजनीतिक काम किया जाये और **''साथियों में विचारधारात्मक सवालों को सुलझाने और उन्हें एकता के सूत्र में बांधने के दोहरे उद्देश्य में 'भावी गलतियों से बचने के लिए पिछली गलतियों से सबक सीखने' और 'मरीज को बचाने के लिए उसकी बीमारी का इलाज करने' के उसूल पर अमल''** सच्चे मायने में किया जाये। जहां तक उन अच्छे लोगों का सवाल है, जिन्होंने पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ताओं की सी गलती की थी, जब उनकी राजनीतिक चेतना उन्नत हो गई है, और उन्हें जन-समुदाय ने माफ कर दिया है, तो उन्हें समय पर ''मुक्त'' कर दिया जाना चाहिए, और उचित काम दिया जाना चाहिए तथा उन्हें मजदूर-किसान जन-समुदाय में

जाकर अपने विश्व-दृष्टिकोण का पुन:संस्कार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जहां तक उन लोगों का ताल्लुक है, जिन्होंने कुछ-कुछ उन्नति की है और जो कुछ हद तक जागृत हो गये हैं, तो उन्हें एकता के लिहाज से लगातार मदद दी जानी चाहिए। हाल ही में अध्यक्ष माओ ने बताया है : **''सर्वहारा वर्ग मानव-इतिहास में सबसे महान वर्ग है। विचारधारा, राजनीति और शक्ति की दृष्टि से वह सबसे शक्तिशाली क्रान्तिकारी वर्ग है। वह ऐसा करने में समर्थ है और उसे ऐसा करना जरूरी भी है कि मुट्ठी भर दुश्मनों को चरम सीमा तक अलगाव में डालने और उन पर प्रहार करने के लिए अतिअधिकांश लोगों को अपने इर्दगिर्द एकजुट करे।''**

दुश्मन के खिलाफ संघर्ष करते समय **''अन्तरविरोधों का फायदा उठाने, बहुसंख्यकों को अपने पक्ष में कर लेने, अल्पसंख्यकों का विरोध करने और दुश्मनों को एक-एक करके शिकस्त देने''** की उस नीति को लागू करना चाहिए जिस पर अध्यक्ष माओ हमेशा से जोर देते आये हैं। **''सबूतों पर और जांच-पड़ताल व अध्ययन पर जोर देना चाहिए। इस बात की सख्त मनाही है कि किसी पर जोर-जबरदस्ती करके जुर्म कबूल करवाया जाये और ऐसे बयान पर विश्वास किया जाये।'' ''अपने अपराध खुद मानने वालों को रियायत देने और प्रतिरोध करने वालों को कड़ा दण्ड देने''** के बारे में और **''रास्ता देने''** के बारे में अध्यक्ष माओ की नीतियां लागू की जानी चाहिए। हम दुश्मन पर अधिनायकत्व लागू करने में मुख्य रूप से व्यापक जन समुदाय पर निर्भर रहते हैं। वर्ग-पांतों को शुद्ध करने के आंदोलन में जांच-पड़ताल के जरिए जिन दुष्ट जनों और शंकाजनक तत्वों का पता लगा लिया गया है, उनमें से अकाट्य प्रमाणों से साबित हुए हत्या करने, आग लगाने और जहर देने आदि जुल्म ढाने वाले क्रियाशील प्रतिक्रान्तिकारियों के अलावा जिन्हें कानून के मुताबिक निपटाया जाना चाहिए, बाकी सब लोगों के प्रति **''किसी को भी मौत की सजा न देने और अधिकांश को गिरफ्तार न करने''** की नीति लागू की जानी चाहिए।

विद्याध्ययन के क्षेत्र में बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी धुरंधर विद्वानों के प्रति या पहले उनका खण्डन करने, फिर उनका व्यवहार देखने, या पहले उनका खण्डन करने, फिर उन्हें काम में लाने, अथवा पहले उनका खण्डन करने, फिर उन्हें समुचित जीविका देने की नीति अपनाई जानी चाहिए, एक शब्द में, उनके विचारों का खण्डन किया जाना चाहिए और उन्हें रास्ता भी दिया जाना चाहिए। हमारे और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोधों के इस भाग को जनता के बीच के अन्तरविरोधों के समान हल करना सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने के लिए फायदेमंद है और दुश्मनों को छिन्न-भिन्न करने के लिए फायदेमंद है।

पार्टी की विभिन्न नीतियों को कार्यान्वित करने के सिलसिले में हमें अपनी अपनी इकाई की ठोस स्थिति का अध्ययन करना चाहिए। उन स्थानों में जहां क्रान्तिकारी महा समन्वय काफी सुदृढ़ नहीं है, क्रान्तिकारी उसूल के मुताबिक कार्य-क्षेत्रों, व्यवसायों या स्कूल-क्लासों के आधार पर क्रान्तिकारी महा समन्वय को साकार बनाने के लिए वहां की व्यापक क्रान्तिकारी जन समुदाय की मदद की जानी चाहिए, ताकि वह दुश्मन के खिलाफ एकजुट हो जाये। उन इकाइयों में जहां वर्ग पांतों को शुद्ध करने का काम अभी नहीं किया गया है या अभी-अभी शुरू हुआ है, पार्टी की नीतियों के अनुसार इस काम को मजबूती से गिरफ्त में रखना और अच्छी तरह करना चाहिए। उन इकाइयों में जहां वर्ग पांतों को शुद्ध करने का काम लगभग पूरा किया जा चुका है, संघर्ष आलोचना व खण्डन-रूपान्तर की विभिन्न मंजिलों के बारे में अध्यक्ष माओ की हिदायतों के अनुसार अन्य कामों पर भी जोर देना चाहिए। साथ ही, वर्ग-संघर्ष की नई प्रवृत्ति पर कड़ा ध्यान देना चाहिए। अगर दुष्ट जन फिर सिर उठाने लगें तो क्या करें? अध्यक्ष माओ का एक मशहूर कथन है : ''पूर्ण भौतिकवादी लोग निर्भय होते हैं''। अगर वर्ग-दुश्मन फिर हंगामा बरपा करे, तो बस, जन-समुदाय को गोलबंद करके उन्हें फिर एक बार धराशायी कर दिया जायेगा।

जैसा कि **''16 धाराओं वाले फैसले''** में बताया गया है : ''यह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति हमारे देश की सामाजिक उत्पादक शक्तियों को विकसित करने वाली एक जबरदस्त प्रेरक शक्ति है।'' हमारे देश के कृषि-उत्पादन में पिछले कई साल से लगातार भरपूर फसलें प्राप्त हुई हैं। औद्योगिक उत्पादन और विज्ञान तकनालाजी में भी फलने-फूलने की हालत नजर आ रही है। व्यापक मेहनतकश जनता में क्रान्ति चलाने और उत्पादन बढ़ाने की सक्रियता अभूतपूर्व ऊंची हो गई है। बहुत से कारखानों, खानों और कारोबारों में उत्पादन के नए रिकार्ड एक के बाद एक कायम किये जा चुके हैं, उत्पादन को पिछले किसी भी समय के मुकाबले सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंचा दिया गया है और तकनीकी क्रान्ति लगातार विकसित होती चली जा रही है। बाजार में चीजों की भरमार है, चीजों के दाम स्थिर रहे हैं। 1968 के अन्त तक हम नेशनल बौण्ड पूरी तरह चुका चुके हैं। हमारा देश एक ऐसा समाजवादी देश बन गया है जो न देशी कर्ज से लदा है और न विदेशी कर्ज से।

''क्रान्ति को दृढ़ता से चलाओ और उत्पादन-कार्य को बढ़ावा दो'' यह उसूल बिलकुल सही है, इसने सही ढंग से इस सवाल का जवाब दिया है कि क्रान्ति और उत्पादन के बीच, चेतना और पदार्थ के बीच, ऊपरी ढांचे और आर्थिक आधार के बीच तथा उत्पादन सम्बन्ध और उत्पादक शक्ति के बीच क्या सम्बन्ध होते हैं। अध्यक्ष माओ हमेशा हमें यह शिक्षा देते हैं : **''राजनीतिक कार्य समस्त आर्थिक कार्य का प्राण है''**। लेनिन ने उन अवसरवादियों की, जो राजनीतिक तौर पर मामले को परखने का विरोध करते थे, कड़ी निन्दा करते हुए यह कहा था : **''अर्थतंत्र पर अनिवार्य रूप से राजनीति की प्राथमिकता रहती है। इसके विरुद्ध तर्क करने का मतलब है मार्क्सवाद का ए.बी.सी. भूल जाना।''** (''लेनिन ग्रंथावली'', चीनी संस्करण, ग्रंथ 32, पृष्ठ 72) लेनिन ने यह भी बताया था कि राजनीति को अर्थतंत्र के समकक्ष रखने का मतलब भी **''मार्क्सवाद का ए.बी.सी. भूल जाना ही है।''** (वही पृष्ठ) राजनीति अर्थतंत्र की केन्द्रित अभिव्यक्ति है। अगर ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में क्रान्ति न चलाई जाये, व्यापक मजदूर-किसान जन-समुदाय को जागृत न किया जाये, संशोधनवादी कार्यदिशा का खण्डन न किया जाये, मुट्ठी भर गद्दारों, जासूसों, पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले कर्ताधर्ता लोगों और प्रतिक्रान्तिकारियों का पर्दाफाश न किया जाये, सर्वहारा वर्ग की नेतृत्वकारी सत्ता सुदृढ़ न बनाई जाये, तो समाजवाद के आर्थिक आधार को और ज्यादा मजबूत कैसे बनाया जा सकता है? समाजवादी उत्पादक शक्ति का और ज्यादा विकास कैसे किया जा सकता है? यह क्रान्ति को उत्पादन की जगह पर बिठाना नहीं है, बल्कि उत्पादन को क्रान्ति की कमान में रखना है और क्रान्ति से उत्पादन को बढ़ावा और प्रेरणा देना है। हमें **''भरपूर शक्ति से, दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते हुए, ज्यादा से ज्यादा, जल्दी से जल्दी, अच्छे से अच्छा और कम से कम खर्च में समाजवाद का निर्माण करने''** की अध्यक्ष माओ की आम कार्यदिशा के अनुसार, **''युद्ध का मुकाबला करने के लिए तैयारी, प्राकृतिक संकट का मुकाबला करने के लिए तैयारी और सब कुछ जनता के लिए''** के उनके महान रणनीतिक विचार के अनुसार, **''कृषि को आधार बनाने, उद्योग को प्रधानता देने''** के उनके सिलसिलेवार निर्देशक उसूलों के अनुसार जांच-पड़ताल और अध्ययन करना चाहिए तथा आर्थिक मोर्चे पर संघर्ष-आलोचना व खण्डन-रूपान्तर के कार्य में बहुत से नीति सम्बन्धी सवालों को सक्रिय और समुचित रूप से हल करना चाहिए। विभिन्न जातियों के जन-समुदाय की क्रान्तिकारी पहलकदमी और सृजनशीलता का पूर्ण विकास करना चाहिए, दृढ़ता के साथ क्रान्ति चलाना और जोरदार तरीके से उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए तथा राष्ट्रीय अर्थतंत्र का विकास करने की योजना को पूरा करना या उसके निर्धारित लक्ष्यों को पार करना चाहिए। यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में प्राप्त महान विजय की प्रेरणा से आर्थिक मोर्चे पर और हमारे समाजवादी

निर्माण के तमाम कार्यों में जरूर लगातार नई छलांग के नजारे नजर आते रहेंगे।

5. हमारे देश में क्रान्ति की आखिरी विजय के बारे में

यह सच है कि हमारे देश की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की विजय महान है, लेकिन यह हरगिज नहीं समझना चाहिए कि अब हम लम्बी तान कर सो सकते हैं। अक्टूबर 1968 में अध्यक्ष माओ ने अपनी बातचीत के दौरान बताया था: "हम महान विजय प्राप्त कर चुके हैं। लेकिन पराजित वर्ग अवश्य ही हाथ-पैर मारेगा। ये लोग अब भी मौजूद हैं और यह वर्ग अब भी मौजूद है। इसलिए हम आखिरी विजय नहीं कह सकते। यहां तक कि कई दशाब्दियों तक हम यह नहीं कह सकते। हमें अपनी सतर्कता को नहीं खो बैठना चाहिए। लेनिनवादी दृष्टिकोण के अनुसार, किसी एक समाजवादी देश की आखिरी विजय के लिए न सिर्फ इस बात की जरूरत होती है कि उसी देश का सर्वहारा वर्ग और विशाल जन-समुदाय प्रयत्न करे, बल्कि यह तकाजा भी है कि विश्व-क्रान्ति भी विजय प्राप्त करे, पूरी पृथ्वी पर मानव द्वारा मानव का शोषण करने की व्यवस्था का खात्मा हो, जिससे कि सारी मानव जाति मुक्त हो जाये। इसलिए बिना सोचे-समझे हमारे देश की क्रान्ति की आखिरी विजय के बारे में कहना गलत है, लेनिनवाद के खिलाफ है और तथ्यों से भी मेल नहीं खाता।" वर्ग-संघर्ष में पुनरावृत्ति अवश्य होगी। हमें वर्ग-संघर्ष हरगिज नहीं भूलना चाहिए। इस वक्त नीतियों को कार्यान्वित करने के दौरान दो कार्यदिशाओं के बीच का संघर्ष फिर भी मौजूद रहता है और उसमें "वामपंथ" की तरफ से या दक्षिणपंथ की तरफ से बाधाएं आयेंगी। संघर्ष-आलोचना व खण्डन-रूपान्तर की विभिन्न मंजिलों से सम्बन्धी कार्यों को अच्छी तरह पूरा करने के लिए और भी ज्यादा कोशिशें करने की जरूरत है। हमें चाहिए कि अध्यक्ष माओ का घनिष्ठता के साथ अनुसरण करें, विशाल क्रान्तिकारी जन-समुदाय पर पूरा भरोसा रखें, तथा आगे के रास्ते में घुमावों और कठिनाइयों को दूर करते हुए, समाजवादी कार्य में और भारी विजय प्राप्त करें।

6. पार्टी को सुदृढ़ बनाने और उसका निर्माण करने के बारे में

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की विजय से हमें यह मूल्यवान अनुभव प्राप्त हुआ है कि सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थिति में पार्टी का निर्माण कैसे किया जाये। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने समूची पार्टी को बताया है : **"पार्टी-संगठन को सर्वहारा वर्ग में से आगे बढ़े हुए तत्वों से बनना चाहिए; उसे ओजस्विता व जीवन-शक्ति से भरपूर एक ऐसा हिरावल संगठन होना चाहिए जो वर्ग-शत्रु के खिलाफ लड़ने में सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जन-समुदाय का नेतृत्व कर सके।"** अध्यक्ष माओ की इस हिदायत ने हमारी पार्टी को सुदृढ़ बनाने और हमारी पार्टी का निर्माण करने की राजनीतिक दिशा तय की है।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ की शिक्षा-दीक्षा में पली-बढ़ी पार्टी है। 1921 में अपना जन्म होने के बाद हमारी पार्टी सशस्त्र शक्ति से राजनीतिक सत्ता छीनने और सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने के दीर्घकालीन संघर्ष से गुजरी है। अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में हमारी पार्टी शुरू से ही सदा क्रान्तिकारी युद्ध और क्रान्तिकारी संघर्ष के सबसे अग्रिम मोर्चे पर डटी रहती है। अध्यक्ष माओ की सही कार्यदिशा के ही मार्गदर्शन में हमारी पार्टी ऐसी हालत में जब कि देश-विदेश के दुश्मन बेहद शक्तिशाली थे और परिस्थिति बेहद पेचीदा थी, चीन के सर्वहारा वर्ग और व्यापक जन-समुदाय का नेतृत्व करके, **स्वतंत्रता** व **पहलकदमी** और **स्वावलम्बन** के निर्देशक उसूलों पर डटी रहकर और सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवाद पर डटी रहकर, शहीदों के हाथों से झण्डा लेकर उसे लगातार बुलन्द रखते हुए वीरता के साथ संघर्ष करती आई है, तब जाकर हमारी यह पार्टी, शुरू के केवल चन्द दर्जन सदस्यों वाले कम्युनिस्ट ग्रुपों से विकसित होकर आज शक्तिशाली चीन लोक गणराज्य का नेतृत्व करने वाली महान; गौरवमय और सही पार्टी बन गई है। हम गहराई के साथ यह समझते हैं कि जनता के सशस्त्र संघर्ष के बिना न आज की चीनी कम्युनिस्ट पार्टी रहती, न आज का चीन लोक गणराज्य रहता। हमें सदा अध्यक्ष माओ की यह शिक्षा याद रखनी चाहिए : **"खून बहाकर प्राप्त यह अनुभव सारी पार्टी के कामरेडों को नहीं भूलना चाहिए।"**

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की तमाम कामयाबियां अध्यक्ष माओ के विवेकपूर्ण नेतृत्व का फल हैं और माओ त्से-तुङ विचारधारा की विजय है। पिछली आधी शताब्दी में अध्यक्ष माओ ने चीन की सभी जातियों की जनता के नव-जनवादी क्रान्ति को पूरा करने के महान संघर्ष का नेतृत्व करने में, अपने देश की समाजवादी क्रान्ति व समाजवादी निर्माण के महान संघर्ष का नेतृत्व करने में, तथा साम्राज्यवाद, आधुनिक संशोधनवाद और विभिन्न देशों के प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ मौजूदा युग के अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के महान संघर्ष में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विश्वव्यापी सच्चाई को क्रान्ति के ठोस व्यवहार के साथ मिलाया है, राजनीतिक, सैनिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक क्षेत्रों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद को विरासत के रूप में ग्रहण किया है, उसकी रक्षा की है और उसका विकास किया है, तथा उसे पहले से ज्यादा ऊंची एक बिलकुल नई मंजिल में पहुंचा दिया है। माओ त्से-तुङ विचारधारा एक ऐसे युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद है जिसमें साम्राज्यवाद अपने पूर्ण विनाश की ओर जा रहा है और समाजवाद विश्वव्यापी विजय की ओर अभियान कर रहा है। हमारी पार्टी के सारे इतिहास ने यह सच्चाई जाहिर की है कि अध्यक्ष माओ के नेतृत्व और माओ त्से-तुङ विचारधारा से अलग होने पर हमारी पार्टी को असफलताओं का सामना करना पड़ता और हार खानी पड़ती है; अध्यक्ष माओ का घनिष्ठता के साथ अनुसरण करने और माओ त्से-तुङ विचारधारा के अनुसार आचरण करने पर वह आगे बढ़ती और विजयी होती रहती है। हमें इस अनुभव को सदा याद रखना चाहिए। किसी भी समय, किसी भी स्थिति में, जो कोई अध्यक्ष माओ का विरोध करे, तो सारी पार्टी व सारा देश उसकी कड़ी निंदा करेगा और उसको धराशायी कर देगा।

पार्टी के सुदृढ़ीकरण व निर्माण का जिक्र करते समय अध्यक्ष माओ ने यह कहा है : **"आदमी के शरीर में धमनियां और शिराएं होती हैं जिनके जरिए हृदय खून का संचार करता है, और वह फेफड़ों के जरिए सांस लेता है, कार्बन-डाइआक्साइड छोड़ता है और ताजा आक्सीजन लेता है। यह है फालतू व बेकार को त्याग देना और नए व ताजे को ग्रहण करना। इसी तरह, एक सर्वहारा पार्टी तब ही ओजस्विता व जीवन-शक्ति से भरपूर हो सकती है, जब वह भी फालतू व बेकार को त्याग दे और नए व ताजे को ग्रहण करे। फालतू कचरे को त्याग किये बगैर और नया खून ग्रहण किये बगैर पार्टी ओजपूर्ण नहीं हो सकती।"** अध्यक्ष माओ ने इस सजीव उपमा से पार्टी के भीतर अन्तरविरोध के द्वंद्ववाद की व्याख्या की है। **"वस्तुओं में अन्तरविरोध का नियम, यानी विपरीत तत्वों की एकता का नियम; भौतिकवादी द्वंद्ववाद का सबसे बुनियादी नियम है।" पार्टी के भीतर** दो कार्यदिशाओं के बीच विरोध और संघर्ष समाज में वर्गों के अन्तरविरोधों और नए व पुराने के अन्तरविरोधों को पार्टी में प्रतिबिम्बित करता है। अगर पार्टी के अन्दर अन्तरविरोध न हों और उन्हें हल करने के लिए संघर्ष न चलाए जायें, तथा फालतू व बेकार को त्याग न दिया जाये और नए व ताजे को ग्रहण न किया जाये, तो पार्टी की जिन्दगी खत्म हो जायेगी। पार्टी के भीतर अन्तरविरोध के बारे में अध्यक्ष माओ का सिद्धान्त पार्टी के सुदृढ़ीकरण व निर्माण का मूल निर्देशक विचार है और रहेगा।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास अध्यक्ष माओ की मार्क्सवादी-लेनिनवादी

कार्यदिशा के द्वारा पार्टी के भीतर दक्षिणपंथी और "वामपंथी" अवसरवादी कार्यदिशाओं के खिलाफ संघर्ष करने का ही इतिहास है। अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में हमारी पार्टी ने छन तू-श्यू की दक्षिणपंथी अवसरवादी कार्यदिशा को, छ्वी छ्यू-पाए और ली ली-सान की "वामपंथी" अवसरवादी कार्यदिशाओं को, वाङ मिङ की पहले "वामपंथी" बाद में दक्षिणपंथी अवसरवादी कार्यदिशाओं को, लाल सेना को छिन्न-भिन्न करने की चाङ क्वो-थाओ की कार्यदिशा को, तथा फङ त-ह्वाय, काओ काङ, राओ शू-श आदि लोगों के पार्टी-विरोधी दक्षिणपंथी अवसरवादी गिरोह को पराजित किया, और लम्बे अरसे तक संघर्ष करने के बाद ल्यू शाओ-ची की प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी कार्यदिशा को भी चकनाचूर कर दिया है। हमारी पार्टी ठीक दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष में ही विशेष रूप से छन तू-श्यू, वाङ मिङ और ल्यू शाओ-ची के तीन गद्दार गुटों को, जो पार्टी के लिए सबसे अधिक हानिकारक थे, पराजित करने के संघर्ष में मजबूत, विकसित और शक्तिशाली हो गई है।

सर्वहारा अधिनायकत्व के नए ऐतिहासिक काल में सर्वहारा वर्ग अपना अधिनायकत्व और तमाम कार्यों में अपना नेतृत्व अपने हिरावल दस्ते – कम्युनिस्ट पार्टी – के जरिए लागू करता है। सर्वहारा अधिनायकत्व से अलग होकर, सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने से अलग होकर पार्टी-निर्माण के सवाल को, यानी इस सवाल को कि किस तरह की पार्टी का निर्माण किया जाये और पार्टी का निर्माण कैसे किया जाये, सही ढंग से हल करना नामुमकिन है।

पार्टी-निर्माण के बारे में ल्यू शाओ-ची की संशोधनवादी कार्यदिशा ने सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा के और पार्टी निर्माण के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के मूल तत्व से ही गद्दारी की है। जब चीन की समाजवादी क्रान्ति गहराई के साथ विकसित होती जा रही थी और वर्ग-संघर्ष बेहद तीव्र हो रहा था, इसी महत्वपूर्ण समय पर ल्यू शाओ ची ने फिर एक बार अपनी "आत्म-उत्थान" के बारे में लिखी गई जहरीली पुस्तक प्रकाशित की। उसका उद्देश्य था हमारे देश के सर्वहारा अधिनायकत्व को उलट देना और बुर्जुआ अधिनायकत्व की पुनर्स्थापना करना। ल्यू शाओ ची ने सर्वहारा अधिनायकत्व की आवश्यकता के बारे में लेनिन की रचना से उस पैराग्राफ को, जिसका हवाला हम इस रिपोर्ट के शुरू में ही दे चुके हैं, उद्धृत करते समय जानबूझकर फिर एक बार इस सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष को कि **"सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करना जरूरी हो जाता है"** काट दिया। इससे सर्वहारा अधिनायकत्व से गद्दारी करने का उसका प्रतिक्रान्तिकारी चेहरा स्पष्ट रूप से बेनकाब हो गया। इसके अलावा, ल्यू शाओ-ची ये प्रतिक्रियावादी बेहूदा दलीलें भी फैलाता रहता था, जैसे **"वर्ग-संघर्ष बुझ गया है"** का सिद्धान्त, "आज्ञाकारी साधन" का सिद्धान्त, **"जन-समुदाय पिछड़ा है"** का सिद्धान्त, "अफसर बनने के लिए पार्टी में शामिल होने" का सिद्धान्त, "पार्टी के भीतर शान्ति" का सिद्धान्त, **"सार्वजनिक हितों और व्यक्तिगत हितों का मिलन"** का सिद्धान्त (यानी "बड़े लाभ की खातिर छोटा हित त्याग देने" का सिद्धान्त), वगैरह-वगैरह। उसकी नाकाम कोशिश यह थी कि हमारी पार्टी को नष्ट-भ्रष्ट और छिन्न-भिन्न किया जाये, पार्टी सदस्य जितना ज्यादा "आत्म उत्थान" करें उतना ज्यादा संशोधनवादी बनें, मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी "शान्तिपूर्ण विकास" के जरिए संशोधनवादी पार्टी में बदल जाये, सर्वहारा अधिनायकत्व "शान्तिपूर्ण विकास" के जरिए बुर्जुआ अधिनायकत्व में बदल जाये। हमें लगातार जनव्यापी क्रान्तिकारी खण्डन करके उसकी सिलसिलेवार प्रतिक्रियावादी बेहूदा दलीलों के बुरे असर को पूरी तरह मिटा देना चाहिए।

मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति हमारी पार्टी के इतिहास में पार्टी को सुदृढ़ बनाने का एक सबसे व्यापक और सबसे गहरा आन्दोलन है। विभिन्न स्तरों के पार्टी-संगठन और व्यापक पार्टी-सदस्य दो कार्यदिशाओं के बीच के तीव्र संघर्ष में तपे-तपाये हैं, बड़े पैमाने के वर्ग-संघर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं, तथा पार्टी के अन्दर और बाहर के क्रान्तिकारी जन-समुदाय की कसौटी पर पूरे-पूरे खरे उतरे हैं। इस प्रकार पार्टी-सदस्यों और कार्यकर्ताओं को तूफान का मुकाबला करने और दुनिया का सामना करने का मौका मिला और उनकी वर्ग-चेतना व दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष के बारे में उनकी चेतना उन्नत हो गई है। इस महान क्रान्ति ने हमें यह बताया है कि सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत हमें व्यापक पार्टी-सदस्यों को वर्गों, वर्ग-संघर्ष और दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष के बारे में तथा क्रान्ति जारी रखने के बारे में शिक्षा देनी चाहिए, पार्टी के भीतर और बाहर संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष करना चाहिए, गद्दारों, जासूसों और शोषक वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले तत्वों को पार्टी से निकाल बाहर कर देना चाहिए, और सर्वहारा वर्ग के उन सच्चे आगे बढ़े हुए तत्वों को जो क्रान्तिकारी तूफान की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं, पार्टी-सदस्य बनाना चाहिए। हमें प्रयत्नपूर्वक इस बात की गारण्टी करनी चाहिए कि विभिन्न स्तरों के पार्टी-संगठनों का नेतृत्व सचमुच मार्क्सवादियों के हाथों में रहे। हमें पार्टी-सदस्यों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वे सचमुच सिद्धान्त को ठोस व्यवहार के साथ मिलाएं, जन-समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम रखें और आलोचना व आत्मालोचना करने का साहस बांधें। हमें पार्टी-सदस्यों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वे हमेशा नम्र और विवेकशील होने, घमण्ड व उतावलेपन से बचने की कार्यशैली तथा सादा जीवन बिताने व कठोर संघर्ष करने की कार्यशैली बनाये रखें। केवल ऐसा करने से ही पार्टी सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जन-समुदाय का नेतृत्व करके समाजवादी क्रान्ति को अन्त तक चला सकेगी।

अध्यक्ष माओ ने हमें शिक्षा दी है : **"ऐतिहासिक अनुभव ध्यान देने योग्य हैं। कार्यदिशा और दृष्टिकोण की अक्सर व बारम्बार चर्चा की जानी चाहिए। केवल चंद लोगों को बताने से काम नहीं चलेगा; उनसे विशाल क्रान्तिकारी जन-समुदाय को वाकिफ कराना चाहिए।"** मौजूदा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बुनियादी अनुभव का अध्ययन और प्रचार, दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष के इतिहास का अध्ययन और प्रचार, तथा सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने के बारे में अध्यक्ष माओ के सिद्धान्त का अध्ययन और प्रचार केवल एक ही बार नहीं, बल्कि हर साल, हर महीने और हर रोज बार-बार किया जाना चाहिए। केवल ऐसा करने से ही, गलत कार्यदिशा और गलत रुझान का उदय होते ही व्यापक पार्टी-सदस्य और जन-समुदाय इनका खण्डन और बहिष्कार कर सकेंगे और यह गारण्टी की जा सकेगी कि हमारी पार्टी सदा अध्यक्ष माओ द्वारा निर्दिष्ट सही मार्ग पर विजयपूर्वक आगे बढ़ती जायेगी।

पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यसूची में एक महत्वपूर्ण विषय पार्टी-संविधान का संशोधन करना है। पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने पार्टी-संविधान के मसौदे को कांग्रेस में विचार-विनिमय करने के लिए पेश किया है। यह मसौदा समूची पार्टी और सारे देश के क्रान्तिकारी जन-समुदाय ने एक साथ मिलकर तैयार किया है। नवम्बर 1967 में अध्यक्ष माओ ने राय दी कि बुनियादी पार्टी-संगठन पार्टी-संविधान का संशोधन करने के काम में भाग लें। तब से पार्टी की केन्द्रीय कमेटी को हजारों मसौदे प्राप्त हुए। इस बुनियाद पर पार्टी की आठवीं केन्द्रीय कमेटी के विस्तृत बारहवें पूर्ण अधिवेशन ने पार्टी-संविधान का मसौदा तैयार किया। इसके बाद सारी पार्टी, सारी सेना और सारे देश के व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय ने फिर एक बार उत्साह और संजीदगी के साथ विचार-विनिमय किया। यह कहा जा सकता है कि पार्टी के नए-संविधान का मसौदा महान नेता अध्यक्ष माओ के विवेकपूर्ण नेतृत्व के व्यापक जन-समुदाय के साथ मिलने की उपज है। वह सारी पार्टी, सारी सेना और सारे देश के व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय का संकल्प प्रतिबिम्बित करता है, और जनवादी केन्द्रीयता और जनदिशा का, जिन्हें पार्टी हमेशा से ही अविचल रूप से लागू करती आई है, एक सजीव प्रतीक भी है। खास महत्वपूर्ण बात यह है कि पार्टी के संविधान के मसौदे में फिर एक बार स्पष्ट रूप से यह तय किया गया है कि पार्टी के विचार का मार्गदर्शन करने वाला सैद्धान्तिक आधार मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा है। यह

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति द्वारा ल्यू शाओ-ची की पार्टी-निर्माण की संशोधनवादी कार्यदिशा को चकनाचूर करने में प्राप्त महान विजय है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा की महान विजय है। पार्टी की केन्द्रीय कमेटी को यह विश्वास है कि कांग्रेस में नए पार्टी-संविधान पर विचार-विनिमय करने और इसे स्वीकृत करने के बाद हमारी पार्टी इसके नियमों के अनुसार निश्चय ही अपने आप को पहले से और ज्यादा महान, और ज्यादा गौरवमय, और ज्यादा सही पार्टी के रूप में निर्मित कर लेंगी।

7. विदेशों के साथ हमारे देश के सम्बन्धों के बारे में

यहां हम विदेशों के साथ हमारे देश के सम्बन्धों के बारे में विशेष रूप से कुछ बताना चाहते हैं।

विश्व सर्वहारा वर्ग और उत्पीड़ित जनता व उत्पीड़ित राष्ट्रों के क्रान्तिकारी संघर्ष हमेशा एक दूसरे का समर्थन करते हैं। अलबानियाई श्रमिक पार्टी और तमाम अन्य सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी बिरादराना पार्टियों व बिरादराना संगठनों, सारी दुनिया के व्यापक सर्वहारा वर्ग व क्रान्तिकारी जनता, तथा बहुत से मित्र-देशों, मित्र-संगठनों और मैत्रीपूर्ण व्यक्तियों ने हमारे देश की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की गर्मजोशी के साथ तारीफ और समर्थन किया है। यहां मैं महान नेता अध्यक्ष माओ और पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस की तरफ से उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं। साथ ही हम दृढ़ता से यह विश्वास दिलाते हैं कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी जनता निश्चय ही अपने सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवादी कर्तव्य को निभायेंगी तथा उनके साथ साम्राज्यवाद, आधुनिक संशोधनवाद और विभिन्न देशों के प्रतिक्रियावादियों का विरोध करने के महान संघर्ष को अन्त तक चलायेंगी।

आज की दुनिया की आम प्रवृत्ति वैसी ही है जैसे अध्यक्ष माओ ने वर्णन किया था : **"दुश्मन दिन-ब-दिन सड़ते-गलते जा रहे हैं, जबकि हमारे लिए स्थिति दिन-ब-दिन बेहतर होती जा रही है।"** एक तरफ, सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग और विभिन्न देशों की जनता के क्रान्तिकारी आंदोलन प्रचण्ड रूप से उभरते जा रहे हैं। वियतनाम के दक्षिणी भाग, लाओस, थाइलैण्ड, बर्मा, मलाया, इण्डोनेशिया, भारत, फिलीस्तीन और एशिया, अफ्रीका तथा लातिन अमेरिका के अन्य देशों और क्षेत्रों की जनता के सशस्त्र संघर्ष दिन-ब-दिन विकसित होते जा रहे हैं। **"राजनीतिक सत्ता का जन्म बन्दूक की नली से होता है।"** इस सच्चाई को व्यापक उत्पीड़ित जनता और उत्पीड़ित राष्ट्र दिन-ब-दिन और ज्यादा आत्मसात करते जा रहे हैं। जापान, पश्चिमी यूरोप और उत्तर अमरीका में, जो पूंजीवाद के "हृदय" क्षेत्र हैं, अभूतपूर्व बड़े पैमाने के क्रान्तिकारी जन-आंदोलन छिड़ गये हैं। अधिकाधिक जनता जागृत होती जा रही है। सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी बिरादराना पार्टियां और बिरादराना संगठन मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अपने-अपने देश के ठोस क्रान्तिकारी व्यवहार के साथ मिलाने के दौरान कदम-ब-कदम विकसित होते जा रहे हैं। दूसरी तरफ, अमरीकी साम्राज्यवाद और सोवियत संशोधनवादी सोशल-साम्राज्यवाद राजनीतिक और आर्थिक संकटों में फंस गये हैं, और घरेलू व बाहरी विपत्तियों के दो पाटों में पिसते हुए बेबसी की हालत में पड़ गये हैं। दुनिया को नये सिरे से बांटने की कुचेष्टा से जहां वे एक दूसरे के साथ सांठगांठ करते हैं, वहां वे एक-दूसरे से छीना-झपटी भी करते हैं। वे चीन, कम्युनिज्म और जनता का विरोध करने, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का दमन करने और हमलावर युद्ध छेड़ने में एक दूसरे का साथ देते हैं और आपस में सांठगांठ कर दुष्कर्म करते हैं। कच्चे माल, मण्डी, अधीन देश और महत्वपूर्ण रणनीतिक स्थान छीनने तथा प्रभाव-क्षेत्र बांटने में वे एक-दूसरे के खिलाफ दांव-पेंच खेलते हैं और एक-दूसरे को परास्त करने की हरचंद कोशिश करते हैं। अपनी-अपनी कुआकांक्षा पूरी करने की नाकाम कोशिश में वे सैन्य-विस्तार और युद्ध की तैयारी कर रहे हैं।

लेनिन ने बताया है कि साम्राज्यवाद का मतलब है युद्ध। **"ऐसी आर्थिक व्यवस्था में जब कि उत्पादक साधन में निजी मिलकियत मौजूद रहती है, साम्राज्यवादी युद्ध सर्वथा अनिवार्य होता है।"** ("लेनिन ग्रंथावली", चीनी संस्करण, ग्रंथ 22, पृष्ठ 182) लेनिन ने आगे चलकर यह भी बताया है : **"साम्राज्यवादी युद्ध समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववेला है।"** ("लेनिन ग्रंथावली", चीनी संस्करण, ग्रंथ 25, पृष्ठ 349) लेनिन के ये वैज्ञानिक निष्कर्ष पुराने कतई नहीं हुए हैं।

हाल ही में अध्यक्ष माओ ने यह बताया है : **"जहां तक विश्वयुद्ध का ताल्लुक है, उसकी केवल दो सम्भावनाएं हैं : एक तो यह कि युद्ध क्रान्ति को उभार दे, और दूसरी यह कि क्रान्ति युद्ध को रोक दे।"** इसका कारण यह है कि आज की दुनिया में चार बड़े अन्तरविरोध मौजूद हैं। एक तरफ उत्पीड़ित राष्ट्रों और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद व सोशल-साम्राज्यवाद के बीच का अन्तरविरोध; पूंजीवादी और संशोधनवादी देशों में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का अन्तरविरोध; साम्राज्यवादी देशों और सोशल-साम्राज्यवादी देश के बीच का तथा विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के बीच का अन्तरविरोध; तथा एक तरफ समाजवादी देशों और दूसरी तरफ साम्राज्यवादी देशों व सोशल-साम्राज्यवादी देश के बीच का अन्तरविरोध। इन अन्तरविरोधों के अस्तित्व और विकास के कारण अनिवार्य रूप से क्रान्ति छिड़ जाती है। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध के ऐतिहासिक अनुभवों को देखते हुए निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि साम्राज्यवादी, संशोधनवादी और प्रतिक्रियावादी दुनिया की जनता के सिर पर जबरदस्ती तीसरा विश्वयुद्ध थोप दें, तो नतीजा केवल यही होगा कि उपरोक्त अन्तरविरोध बहुत तेजी से विकसित हो जायेंगे; सारी दुनिया की जनता उठकर क्रान्ति चलायेगी और साम्राज्यवादियों, संशोधनवादियों व प्रतिक्रियावादियों के पूरे गिरोह को दफना देगी।

अध्यक्ष माओ हमें शिक्षा देते हैं : **"तमाम प्रतिक्रियावादी कागजी बाघ हैं।" "रणनीति की दृष्टि से हमें सभी दुश्मनों को नाचीज समझना चाहिए, और कार्यनीति की दृष्टि से हमें सभी दुश्मनों का पूरा-पूरा ब्यौरा नजर में रखना चाहिए।"** अध्यक्ष माओ द्वारा प्रतिपादित इस महान सच्चाई से सारी दुनिया की जनता के क्रान्तिकारी जुझारू संकल्प को बढ़ावा मिलता है और उसके मार्गदर्शन में हम साम्राज्यवाद, संशोधनवाद और प्रतिक्रियावाद के खिलाफ संघर्ष में लगातार विजय प्राप्त करते जा रहे हैं।

अमरीकी साम्राज्यवाद की कागजी बाघ होने की प्रकृति का भण्डाफोड़ सारी दुनिया की जनता बहुत पहले ही कर चुकी है। सारी दुनिया की जनता का यह सबसे क्रूर दुश्मन, अमरीकी साम्राज्यवाद दिन-ब-दिन पतनोन्मुख होता जा रहा है। सत्तारूढ़ होने के बाद, निक्सन को जगह-जगह हंगामों और मायूसी से भरी स्थिति का और ऐसे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा है जिससे बचने के लिए कोई उपाय नहीं है, उसे सारी दुनिया की जनता और अपने देश के जन-समुदाय के जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा है, और साम्राज्यवादी देशों के छिन्न-भिन्न होने तथा अमरीकी साम्राज्यवाद के डण्डे का जोर अधिकाधिक कम होने की कठिन हालत का सामना करना पड़ा है। सवाल हल करने के लिए निक्सन को कोई उपाय नहीं है। बेबस होकर वह अपने पूर्वाधिकारियों के समान लगातार प्रतिक्रान्तिकारी दुरंगी चाल चलने लगता है। दिखावट में वह तो "शान्तिप्रिय" होने का रूप धारण करता है, वास्तव में वह और ज्यादा बड़े पैमाने पर सैन्य विस्तार और युद्ध छेड़ने की तैयारी कर रहा है। अमरीका का सैन्य-व्यय साल पर साल बढ़ता जा रहा है। अमरीकी साम्राज्यवादी आज तक हमारे देश की प्रादेशिक भूमि थाइवान पर कब्जा किये बैठे हैं। उन्होंने अपनी हमलावर सेना को बहुत से देशों में भेज दिया है और दुनिया के विभिन्न स्थानों में सैकड़ों-हजारों फौजी अड्डे और सैनिक संस्थान कायम किये हैं। उन्होंने इतने ज्यादा विमान, तोपें, इतने ज्यादा न्यूक्लीयन बम और गाइडेड मिसाइल तैयार कर रखे हैं। ये सब आखिर किसलिए? जनता को भयभीत करने, जनता का दमन करने, जनता का कत्लेआम करने और दुनिया में अपना प्रभुत्व जमाने के लिए है। इस तरह करने का

नतीजा यह हुआ है कि वे जगह-जगह अपने को जनता के दुश्मन बनाते हैं और अपने को सारी दुनिया के व्यापक सर्वहारा वर्ग व जन-समुदाय के घेरे में फंसे और बुरी तरह पिटे हुए पाते हैं, तथा आगे चलकर सारी दुनिया में जरूर और ज्यादा बड़े पैमाने की क्रान्ति छिड़ जायेगी।

सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट भी कागजी बाघ है। उसकी सोशल-साम्राज्यवाद की सूरत अधिकाधिक स्पष्ट रूप से जाहिर हो गई है। जब ख्रुश्चेवी संशोधनवाद शुरू-शुरू उभरा था, तभी हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ ने देख लिया कि आधुनिक संशोधनवाद विश्व-क्रान्ति को गम्भीर हानि पहुंचायेगा। अध्यक्ष माओ ने हमारी समूची पार्टी का नेतृत्व करते हुए अलबानियाई श्रमिक पार्टी, जिसके नेता महान मार्क्सवादी-लेनिनवादी कामरेड अनवर होजा हैं, और सारी दुनिया के सच्चे मार्क्सवादी-लेनिनवादियों के साथ मिलकर विचारधारात्मक, सैद्धान्तिक और राजनीतिक क्षेत्रों में आधुनिक संशोधनवाद, जिसका केन्द्र सोवियत संशोधनवाद है, के खिलाफ दृढ़ संघर्ष किया, जिससे सारी दुनिया की जनता ने अपने संघर्ष में कदम-ब-कदम असली व नकली मार्क्सवाद-लेनिनवाद और असली व नकली समाजवाद की पहचान सीख ली तथा ख्रुश्चेवी संशोधनवाद का दिवाला भी निकल गया। इसके साथ-साथ अध्यक्ष माओ ने हमारी पार्टी का नेतृत्व करके साम्राज्यवाद, संशोधनवाद और प्रतिक्रियावादियों के सामने आत्मसमर्पण करने तथा विभिन्न देशों के क्रान्तिकारी आंदोलन की आग को बुझाने की ल्यू शाओ-ची की संशोधनवादी कार्यदिशा का दृढ़ता के साथ खण्डन किया और ल्यू शाओ-ची के प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी गुट को नेस्तनाबूद कर दिया। इस तरह हमारी पार्टी ने अपने सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवादी कर्तव्य का पालन किया।

ब्रेजनेव के सत्तारूढ़ होने के बाद, सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट के डण्डे का जोर उत्तरोत्तर कम होता गया और देश के भीतर व बाहर की कठिनाइयां उत्तरोत्तर गम्भीर होती गईं। इन वजहों से सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट पहले से और ज्यादा पागलपन के साथ सोशल साम्राज्यवाद और सोशल-फासिज्म को लागू करने लगा। अपने देश में, वह जोरों के साथ सोवियत जनता का दमन करता है और चौतरफा रूप से पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने की रफ्तार तेज करता है। अन्तरराष्ट्रीय मामलों में, वह अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ जोरों से सांठगांठ करता है, विभिन्न देशों की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों का जोरों से दमन करता है, विभिन्न पूर्वी यूरोपीय देशों और मंगोलिया लोक गणराज्य पर जोरों से नियंत्रण रखता है और उनका शोषण करता है, तथा अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ मध्य पूर्व और अन्य क्षेत्रों में जोरों से छीना-झपटी करता है और हमारे देश को जोरों से आक्रमण की धमकी देता है। उसने अपने लाखों सैनिक भेजकर चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा किया है और हमारे देश की प्रादेशिक भूमि चनपाओ द्वीप में अनाधिकार प्रवेश कर हमारे देश के प्रति सशस्त्र उत्तेजनाएं फैलाई हैं. ये हाल ही में सोवियत संशोधनवाद के दो बेहूदा अभिनय हैं। अपने आक्रमण और लूट खसोट की वकालत करने के लिए उसने "सीमित प्रभुसत्ता", "अन्तरराष्ट्रीय अधिनायकत्व" और "सोशलिस्ट कम्युनिटी" वाली दलीलों का ढोल पीटा। इन सब अनाप-शनाप का क्या मतलब है? मतलब यह है कि तुम्हारी प्रभुसत्ता "सीमित" है, मगर उसकी तो असीमित। क्या तुम उसकी आज्ञा न मानोगे? तो वह तुम पर "अन्तरराष्ट्रीय अधिनायकत्व" लागू करेगा, यानी विभिन्न देशों की जनता पर अधिनायकत्व लागू करेगा, ताकि नये जारशाहों के शासन तले "सोशलिस्ट कम्युनिटी" यानी सोशल साम्राज्यवादी उपनिवेश स्थापित किया जाये, जो हिटलर की "यूरोप की नई व्यवस्था", जापानी सैन्यवाद के "महा पूर्वी एशिया में सह-समृद्धि क्षेत्र" और अमरीका के "स्वतंत्र विश्व कम्युनिटी" की ही तरह है। लेनिन ने दूसरी इन्टरनेशनल के गद्दारों की कड़ी निन्दा करते हुए कहा था कि **"कथनी में समाजवाद है, करनी में साम्राज्यवाद है, यानी अवसरवाद साम्राज्यवाद के रूप में बदल गया है।"** ("लेनिन ग्रंथावली", चीनी संस्करण, ग्रंथ 29, पृष्ठ 458) लेनिन की यह बात आज के पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले मुट्ठी भर कर्ताधर्ता लोगों से संगठित सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट पर बिल्कुल लागू होती हैं। हमें यह पक्का विश्वास है कि सोवियत संघ का सर्वहारा वर्ग और व्यापक जनता, जिनकी गौरवमय क्रान्तिकारी परम्परा है, उठ खड़े होकर इन मुट्ठी भर गद्दारों के गुट का तख्ता जरूर उलट देंगे। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने बताया है : **"सोवियत संघ पहला समाजवादी राज्य था, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी लेनिन के हाथों स्थापित की गई थी। हालांकि सोवियत संघ की पार्टी और राज्य का नेतृत्व अब संशोधनवादियों द्वारा हथिया लिया गया है, फिर भी मैं कामरेडों को यह सलाह देता हूं कि वे इस बात पर पक्का विश्वास रखें कि सोवियत संघ की विशाल जनता, विशाल पार्टी-सदस्य और कार्यकर्ता अच्छे हैं, वे क्रान्ति करना चाहते हैं। संशोधनवादी शासन ज्यादा दिन नहीं रहेगा।"**

सोवियत सरकार ने अपने ही हाथों हमारे देश की प्रादेशिक भूमि चनपाओ द्वीप पर सशस्त्र अतिक्रमण करने की वारदात खड़ी कर दी है, इसी कारण चीन-सोवियत सीमा-सवाल ने सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींच लिया है। हमारे देश और हमारे अन्य पड़ोसी देशों के बीच की सीमा-समस्याओं की ही तरह चीन-सोवियत सीमा-सवाल भी इतिहास द्वारा छोड़ा गया है। इन सवालों के प्रति हमारी पार्टी और सरकार का हमेशा से यह मत रहा है कि इन्हें न्यायोचित ढंग से हल करने के लिए राजनयिक रास्ते के जरिए वार्ता की जाये। हल किये जाने के पहले, मुठभेड़ से बचने के लिए सीमावर्ती इलाके की यथापूर्व स्थिति बरकरार रखी जाये। इस मत के मुताबिक हमारे देश ने क्रमशः बर्मा, नेपाल, पाकिस्तान, मंगोलिया, अफगानिस्तान आदि पड़ोसी देशों के साथ सीमा-सवालों को संतोषजनक तौर पर व सफलतापूर्वक हल किया। केवल सोवियत संघ और चीन के बीच तथा भारत और चीन के बीच के सीमा-सवाल आज तक हल नहीं हो पाये हैं।

चीन-भारत सीमा-सवाल के बारे में चीन सरकार ने भारत सरकार के साथ अनेक बार वार्ताएं की हैं। मगर चूंकि प्रतिक्रियावादी भारत सरकार ने बरतानवी साम्राज्यवाद की आक्रमणकारी नीति विरासत के रूप में ग्रहण कर ली, इसलिए वह इस बात पर अड़ी रही कि हम गैरकानूनी "मैकमोहन लाइन" मान लें, जिसे पुराने चीन की विभिन्न शासन-काल की प्रतिक्रियावादी सरकारों तक ने भी नहीं माना था, इतना ही नहीं, उसने एक कदम और आगे बढ़कर चीन के प्रशासन में हमेशा से रहने वाले आक्साइ छिन इलाके पर भी कब्जा करने की नाकाम कोशिश की। इस तरह उसने चीन-भारत सीमा वार्ता को भंग कर दिया। यह बात तो सब लोग जानते हैं।

चीन-सोवियत सीमा-सवाल चीन के खिलाफ जारशाही रूस के साम्राज्यवादी आक्रमण की उपज है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जबकि चीन और रूस, दोनों देशों की जनता के हाथ में राजसत्ता नहीं थी, जारशाही सरकार ने चीन का बंटवारा करने के लिए साम्राज्यवादी आक्रमणकारी हरकतें कीं, चीन पर सिलसिलेवार असमान संधियों को जबरदस्ती थोप दिया, चीन की विशाल प्रादेशिक भूमि को छीन लिया, बहुत सी जगहों में असमान संधियों द्वारा निर्धारित सीमा-रेखा तक को भी पार किया तथा और एक कदम आगे बढ़कर चीन की प्रादेशिक भूमि को हड़प लिया। इस तरह की लूटेरों की हरकतों की निन्दा मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने रोष के साथ की थी। 27 सितम्बर 1920 को महान लेनिन के नेतृत्व में चलने वाली सोवियत सरकार ने बड़ी गम्भीरता के साथ यह ऐलान किया था : "विभिन्न शासन काल की भूतपूर्व रूसी सरकारों ने चीन के साथ जो भी संधियां की थीं, वे सबकी सब रद्द व अप्रभावी हो गई हैं, और वह तमाम छीनी गई चीनी भूमि व चीन में रूस द्वारा लिए गये सभी रियायती इलाकों को त्याग देती है और जारशाही सरकार व रूसी पूंजीपति वर्ग द्वारा चीन से क्रूरता के साथ लूटी गई हर चीज को बिना किसी मुआवजे के और सदा के लिए चीन को लौटा देती है।" (देखिए, **"चीन सरकार के प्रति रूसी समाजवादी संघीय सोवियत गणराज्य की सरकार का घोषणा-पत्र"**) उस समय की ऐतिहासिक स्थिति की ही वजह से, लेनिन की इस सर्वहारा नीति को साकार नहीं किया जा सका।

22 अगस्त और 21 सितम्बर 1960 को ही चीन सरकार ने सीमा-सवाल के प्रति अपने हमेशा के रुख के अनुसार चीन-सोवियत सीमा-सवाल को हल करने के लिए दो बार पहलकदमी से सोवियत सरकार के सामने वार्ता करने का प्रस्ताव रखा था। 1964 में, चीन और सोवियत संघ दोनों पक्षों ने पेकिङ में वार्ता शुरू की। हालांकि चीन और सोवियत संघ की मौजूदा सीमा से सम्बन्धित संधियां ऐसी असमान संधियां हैं जो जारशाहों ने चीनी जनता पर जबरदस्ती थोपी थीं, फिर भी चीन और सोवियत संघ दोनों देशों की जनता की क्रान्तिकारी दोस्ती की हिफाजत करने की इच्छा से प्रेरित होकर हमने इस बात का पक्षपोषण किया कि ये संधियां सीमा-सवाल को हल करने के आधार के रूप में मानी जायें। लेकिन, सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट ने लेनिन की सर्वहारा नीति के साथ गद्दारी कर दी, वह नये जारशाह के सोशल-साम्राज्यवाद के रुख पर अड़ा रहा, और इस बात से इनकार किया कि ये संधियां असमान संधियां हैं। इतना ही नहीं, उसने बड़ी धृष्टता के साथ हठधर्मी की कि चीन अपनी उस तमाम प्रादेशिक भूमि पर, जिसे उन्होंने इन संधियों तक का उल्लंघन करके कब्जे में रखा है या कब्जे में रखने की कोशिश की है, सोवियत संघ का स्वामित्व माने। सोवियत सरकार के इस महाराष्ट्र शोविनिज्म व सोशल-साम्राज्यवादी रुख की वजह से वार्ता भंग हो गई।

ब्रेजनेव के सत्तारूढ़ होने के बाद, सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट ने दुगुनी ताकत लगाकर सीमावर्ती इलाके की यथापूर्व स्थिति को भंग करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने बारम्बार सीमा-वारदातें खड़ी कर दीं, हमारे निहत्थे मछुओं और किसानों को गोली से मार डाला, और हमारे देश की प्रभुसत्ता का उल्लंघन किया। हाल ही में उसने दो हाथ और आगे बढ़कर बार-बार हमारे देश की प्रादेशिक भूमि चनपाओ द्वीप पर सशस्त्र अतिक्रमण किया। ऐसी हालत में जब कि मामला बर्दाश्त के बाहर हो गया, तब हमारी सीमा रक्षक टुकड़ियों ने आत्मरक्षार्थ जवाबी प्रहार कर हमलावरों को समुचित आघात पहुंचाया और विजय के साथ अपने देश की पवित्र प्रादेशिक भूमि की हिफाजत की। सांप छछूंदर की सी कठिन हालत से छुटकारा पाने के लिए 21 मार्च को कोसीगिन ने हमारे नेताओं से फोन के जरिए सम्पर्क करने की मांग पेश की। जवाब में 22 मार्च को हमारी सरकार ने फौरन एक मेमोरेंडम दे दिया जिसमें साफ बताया गया कि **"चीन और सोवियत संघ के बीच के मौजूदा सम्बन्धों को देखते हुए फोन के जरिए सम्पर्क करना अनुचित है, अगर सोवियत सरकार कुछ कहना चाहती हो, तो वह राजनयिक रास्ते के जरिए औपचारिक रूप से चीन सरकार को बताए।"** 29 मार्च को सोवियत सरकार ने एक बयान जारी किया जिसमें वह एक तरफ अपने कट्टर हमलावरों के रुख पर अड़ी रही, दूसरी तरफ तो उसने "सलाह-मशविरा" फिर से शुरू करने की इच्छा जाहिर की। इसका जवाब देने का हमारी सरकार विचार कर रही है।

हमारी पार्टी और सरकार की विदेश नीति हमेशा से इस प्रकार रही है: सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवाद के उसूल पर समाजवादी देशों के साथ मैत्री, आपसी सहायता व सहयोग के सम्बन्धों का विकास करना; तमाम उत्पीड़ित जनता व उत्पीड़ित राष्ट्रों के क्रान्तिकारी संघर्षों का समर्थन व सहायता करना; प्रादेशिक भूमि की अखण्डता व प्रभुसत्ता का आपसी सम्मान करने, एक दूसरे पर आक्रमण न करने, एक दूसरे के घरेलू मामलों में दखल न देने, समानता व आपसी लाभ और शान्तिपूर्ण सहजीवन, इन पांच सिद्धान्तों के आधार पर भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के साथ शान्तिपूर्ण सहजीवन के लिए कोशिश करना तथा साम्राज्यवाद की आक्रमणकारी नीति और युद्ध-नीति का विरोध करना। हमारी सर्वहारा विदेश नीति किसी एक समय के लिए अपनाई जाने वाली काम चलाऊ नीति नहीं है, बल्कि वह एक दीर्घकालीन नीति है जिस पर हम डटे रहते हैं। पहले हमने ऐसा किया था और भविष्य में भी ऐसा करने पर डटे रहेंगे।

हम हमेशा से इस बात का पक्षपोषण करते आये हैं कि विभिन्न देशों के अन्दरूनी मामले विभिन्न देशों की जनता द्वारा खुद ही निपटाये जाने चाहिए। सभी देशों को, चाहे वे बड़े हों या छोटे, और पार्टियों को, चाहे वे बड़ी हों या छोटी, पारस्परिक सम्बन्धों को समानता व एक दूसरे के अन्दरूनी मामलों में दखल न देने के उसूलों के आधार पर कायम करना चाहिए। इन मार्क्सवादी-लेनिनवादी उसूलों की हिफाजत करने के लिए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने लम्बे अरसे से सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट के घृणित महाराष्ट्र शोविनिज्म के खिलाफ संघर्ष किया है। यह सर्वविदित तथ्य है। सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट "बिरादराना पार्टियों" और "बिरादराना देशों" की जाप करता है, लेकिन असल में वह अपने को पितृ-पार्टी समझता है; और अपने को एक ऐसा नया जारशाह समझता है जो मनमाने तौर पर दूसरे देशों की प्रादेशिक भूमि पर आक्रमण कर सकता है और कब्जा जमा सकता है। ये गद्दार न केवल चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और अलबानियाई श्रमिक पार्टी आदि सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों के खिलाफ तोड़फोड़ व उन्मूलनकारी कार्यवाही करते हैं, बल्कि उन सभी पार्टियों के प्रति और तथाकथित "बड़ी समाजवादी कम्युनिटी" में से उन सभी देशों के प्रति जो उनसे थोड़ा-बहुत मतभेद रखते हैं, उन्हें अपना खूंखार चेहरा दिखाते हुए डराते-धमकाते हैं और दमन, तोड़फोड़ व उन्मूलनकारी कार्यवाही करते हैं, यहां तक कि अपने तथाकथित "बिरादराना देशों" में फौज भेजकर अधिकार करने, अपनी तथाकथित "बिरादराना पार्टियों" के सदस्यों का अपहरण करने तक के सभी काले करतूत कर सकते हैं। उन्हें अपनी इन फासिस्ट डकैती-कार्यवाहियों से अनिवार्य रूप से सर्वनाश का फल भुगतना ही पड़ेगा।

अमरीकी साम्राज्यवाद और सोवियत संशोधनवाद हमेशा चीन को अलगाव में डालने की हरचंद कोशिश करते हैं, यह चीन के लिए गौरव की बात है। उनके द्वारा पागलपन के साथ चीन का विरोध किये जाने से हमारा बाल तक बांका नहीं होता, इसके ठीक विपरीत, इससे हमारे देश की जनता में स्वतंत्रता व पहलकदमी और स्वावलम्बन कायम रखने और देश की समृद्धि के लिए कठोर संघर्ष करने की भावना उभर आती है; इससे सारी दुनिया के सामने यह साबित हो जाता है कि चीन ने अपने और अमरीकी साम्राज्यवाद व सोवियत संशोधनवाद के बीच एक स्पष्ट विभाजन-रेखा खींची है। आज, जो दुनिया का भाग्य तय करता है, वह साम्राज्यवाद, संशोधनवाद और प्रतिक्रियावाद नहीं, बल्कि सभी देशों के सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनता ही है। विभिन्न देशों की सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियां व संगठन, जो सर्वहारा वर्ग में से आगे बढ़े हुए तत्वों से बने हैं, एक ऐसी उदीयमान नवजात शक्ति है, जिसका अत्यन्त उज्ज्वल भविष्य है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दृढ़तापूर्वक उनके साथ एकता पर कायम रहेगी और कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष करती रहेगी। हम साम्राज्यवाद और संशोधनवाद के खिलाफ अलबानियाई जनता के संघर्ष का दृढ़ समर्थन करते हैं, अमरीकी आक्रमण का मुकाबला करने और देश को बचाने के युद्ध को अन्त तक चलाने में वियतनामी जनता का दृढ़ समर्थन करते हैं, लाओस, थाइलैण्ड, बर्मा, मलाया, इण्डोनेशिया, भारत, फिलीस्तीन और एशिया, अफ्रीका व लातिन अमरीका के अन्य देशों व क्षेत्रों की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों का दृढ़ समर्थन करते हैं, अमरीकी सर्वहारा वर्ग, नौजवान विद्यार्थियों और अफ्रो-अमरीकी जन-समुदाय द्वारा अमरीकी शासक गुट के खिलाफ चलाये गये न्यायोचित संघर्ष का दृढ़ समर्थन करते हैं, सोवियत संघ के सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता द्वारा सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट को उखाड़ फेंकने के लिए चलाये गये न्यायोचित संघर्ष का दृढ़ समर्थन करते हैं, चेकोस्लोवाकिया और अन्य सभी देशों की जनता द्वारा सोवियत संशोधनवादी सोशल-साम्राज्यवाद के विरुद्ध चलाये गये न्यायोचित संघर्षों का दृढ़ समर्थन करते हैं, जापान, पश्चिमी यूरोप और ओशेनिया के विभिन्न देशों की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों का दृढ़ समर्थन करते हैं, दुनिया के सभी देशों की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों का दृढ़ समर्थन करते हैं, तथा अमरीकी साम्राज्यवाद और सोवियत संशोधनवाद के आक्रमण व उत्पीड़न के खिलाफ सभी न्यायोचित संघर्षों का दृढ़ समर्थन करते हैं। अमरीकी साम्राज्यवाद व सोवियत संशोधनवाद

के आक्रमण, नियंत्रण, हस्तक्षेप और अत्याचार के शिकार सभी देशो व लोगो, एक हो जाओ, सबसे व्यापक संयुक्त मोर्चा कायम करो और अपने मुश्तरका दुश्मनों को नष्ट करो!

विजय हासिल करने पर हमें ऐसा हरगिज नहीं करना चाहिए कि अपनी क्रान्तिकारी सतर्कता में ढील आने दें और अमरीकी साम्राज्यवाद व सोवियत संशोधनवाद द्वारा बड़े पैमाने पर आक्रमणकारी युद्ध छेड़ने के खतरे को नजरअन्दाज कर दें। इस सिलसिले में हमें हर तरह की पूरी-पूरी तैयारियां करनी चाहिए कि वे युद्ध बड़े पैमाने पर छेड़ें, या फौरन ही छेड़ें, या नियमित युद्ध छेड़ें या बड़े पैमाने का न्यूक्लीयर युद्ध छेड़ें। **सारांश यह कि हमें हमेशा तैयार रहना चाहिए।** अध्यक्ष माओ ने बहुत पहले ही कहा था : **जब तक हम पर हमला न हो, तब तक हम हमला नहीं करेंगे, अगर हम पर हमला किया गया, तो हम जरूर जवाबी हमला करेंगे।** यदि वे लड़ने पर जिद करें, तो हम उनके खिलाफ अन्त तक लड़ेंगे। चीनी क्रान्ति की विजय लड़ने से ही प्राप्त की गई है। माओ त्से-तुङ विचारधारा से लैस और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में तपी-तपाई दसियों करोड़ चीनी जनता और चीनी जन-मुक्ति सेना पक्का इरादा कर चुकी हैं और वे विजय पाने का पूरा विश्वास लिये हुए जरूर अपनी पवित्र प्रादेशिक भूमि थाइवान को मुक्त कराके ही रहेंगी और चीन पर आक्रमण करने का दुस्साहस बांधने वाले सभी हमलावरों का **दृढ़तापूर्वक, सर्वांगीण रूप से, समग्र रूप से और सम्पूर्ण रूप से सफाया करके ही रहेंगी।**

हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ ने बताया है : "**सोवियत संशोधनवाद और अमरीकी साम्राज्यवाद एक दूसरे के साथ सांठगांठ करके इतने ज्यादा बुरे व गंदे काम कर चुके हैं कि सारी दुनिया की क्रान्तिकारी जनता उन्हें सजा दिये बिना नहीं छोड़ेगी। दुनिया के सभी देशों की जनता उठ खड़ी हो रही है। अब अमरीकी साम्राज्यवाद व सोवियत संशोधनवाद के खिलाफ एक नया ऐतिहासिक काल शुरू हो गया है।**" चाहे युद्ध क्रान्ति को उभार दे या क्रान्ति युद्ध को रोक दे, अमरीकी साम्राज्यवाद और सोवियत संशोधनवाद के दिन अब इनेगिने ही रह गये हैं! सारी दुनिया के मजदूरो, एक हो जाओ! सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग और उत्पीड़ित लोगो व उत्पीड़ित राष्ट्रो, एक हो जाओ! अमरीकी साम्राज्यवाद, सोवियत संशोधनवाद और उनके गुर्गों को दफना दो!

8. और अधिक महान विजय प्राप्त करने के लिए समूची पार्टी, सारे देश की जनता, एक हो

पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस हमारी पार्टी के ऐतिहासिक विकास के महत्वपूर्ण समय पर, हमारे देश के सर्वहारा अधिनायकत्व के सुदृढ़ और विकसित होने के महत्वपूर्ण समय पर, तथा विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन और विश्व-क्रान्ति के विकास के महत्वपूर्ण समय पर बुलाई गई है। हमारी कांग्रेस के प्रतिनिधियों में पुरानी पीढ़ी के सर्वहारा क्रान्तिकारी हैं और बड़ी संख्या में ताजा खून भी है। औद्योगिक मजदूरों में से आने वाले पार्टी-सदस्यों के प्रतिनिधि, गरीब और निम्न-मध्यम किसानों में से आने वाले पार्टी-सदस्यों के प्रतिनिधि तथा पार्टी-सदस्याओं की प्रतिनिधि, इन प्रतिनिधियों की तादाद इतनी ज्यादा है जितनी हमारी पार्टी की भूतपूर्व कांग्रेसों में कभी नहीं थी। जन-मुक्ति सेना से आने वाले पार्टी-सदस्यों के प्रतिनिधियों में पुराने लाल सेना के योद्धा भी हैं और नये योद्धा भी। लाल रक्षकों में से आने वाले पार्टी-सदस्यों के प्रतिनिधि तो पहली बार पार्टी की राष्ट्रीय कांग्रेस में शिरकत कर रहे हैं। इतने ज्यादा प्रतिनिधियों का पार्टी और राज्य के महत्वपूर्ण मामलों पर एक साथ विचार-विमर्श और निर्णय करने के लिए देश के कोने-कोने से पेकिङ आना और हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ के पास इकट्ठा होना इस बात का प्रतीक है कि हमारी यह कांग्रेस एक ओजस्विता व जीवन-शक्ति से ओतप्रोत कांग्रेस है, एक एकता की कांग्रेस है और एक विजय की कांग्रेस है।

अध्यक्ष माओ ने हमें शिक्षा दी है : "**देश का एकीकरण, जनता की एकता और हमारी विभिन्न जातियों की एकता – ये सब हमारे कार्य की निश्चित विजय की बुनियादी गारण्टी है।**" महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के जरिए, माओ त्से-तुङ विचारधारा के महान लाल झण्डे तले हमारी मातृभूमि अभूतपूर्व रूप से एकीकृत हो गई है और हमारे देश की जनता में अत्यन्त व्यापक रूप से एक महान क्रान्तिकारी एकता कायम हो गई है। यह महान एकता सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के मातहत है और मजदूर-किसान संश्रय पर आधारित है; इस महान एकता में विभिन्न बिरादराना जातियां, देशभक्त जनवादी व्यक्ति, जिन्होंने लम्बे अरसे तक मातृभूमि की क्रान्ति और निर्माण-कार्य के लिए अच्छे काम किये हैं, व्यापक देशभक्त प्रवासी चीनी और हाङकाङ व मकाओ के व्यापक देशभक्त बंधु, थाइवान में अमरीकी साम्राज्यवादियों व च्याङ काई-शेक प्रतिक्रियावादियों द्वारा दलित देशभक्त बंधु तथा समाजवाद का समर्थन करने और समाजवादी मातृभूमि से प्यार करने वाले तमाम लोग भी शामिल हैं। हमें विश्वास है कि पार्टी की इस राष्ट्रीय कांग्रेस के बाद हमारे देश की विभिन्न जातियों की जनता, महान नेता अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में, निश्चय ही और ज्यादा घनिष्ठता के साथ एक हो जायेगी तथा अपने मुश्तरका दुश्मन के खिलाफ संघर्ष में शक्तिशाली समाजवादी मातृभूमि के निर्माण-कार्य में और ज्यादा बड़ी विजय प्राप्त करेगी।

अध्यक्ष माओ ने 1962 में यह बताया था : "**अब से शुरू होने वाले अगले पचास से सौ साल तक का दौर दुनिया भर में सामाजिक व्यवस्था के पूर्ण परिवर्तन का एक महान युग होगा, धरती को हिलाकर रख देने वाला एक ऐसा युग होगा जिसका मुकाबला पहले का कोई भी ऐतिहासिक काल नहीं कर सकेगा। ऐसे युग में रहते हुए हमें ऐसे महान संघर्ष करने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो रूप की दृष्टि से भूतकाल के संघर्षों से बहुत सी भिन्न विशेषताएं रखेंगे।**" अध्यक्ष माओ का यह महान दूर-दर्शन और शानदार भविष्यवाणी आगे बढ़ने के हमारे रास्ते को रोशन करती है, साथ ही कम्युनिज्म के महान आदर्श को साकार बनाने के लिए वीरतापूर्वक संघर्ष करने वाले तमाम सच्चे मार्क्सवादी-लेनिनवादियों को प्रेरित करती है।

समूची पार्टी एक हो जाओ, सारे देश की जनता एक हो जाओ, माओ त्से-तुङ विचारधारा के महान लाल झण्डे को बुलन्द रखो, विजय प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प रखो, कुरबानियों से न डरो, और हर तरह की कठिनाइयों को दूर करो!

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की महान विजय जिन्दाबाद!
सर्वहारा अधिनायकत्व जिन्दाबाद!
पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस जिन्दाबाद!
महान, गौरवमय और सही चीनी कम्युनिस्ट पार्टी जिन्दाबाद!
महान मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा जिन्दाबाद!
हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ जिन्दाबाद! जिन्दाबाद!

क्रान्तिकारी मजदूरों, कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं, जन संगठनकर्ताओं के लिए एक बेहद जरूरी, विचारोत्तेजक व मार्गदर्शक पुस्तिका

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा

• लेनिन

बिगुल पुस्तिका-एक **मूल्य - 5 रुपये**

प्रतियों के लिए लिखें : **जनचेतना**
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010

दुनिया के मजदूरों के पूंजीवाद-विरोधी विश्व-ऐतिहासिक महासमर का रणघोष, विश्व सर्वहारा क्रान्ति की मार्गदर्शक पुस्तक: 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र'

○ आलोक रंजन

घोषणापत्र में निरूपित सिद्धान्त अमर हैं!

फरवरी, 1998 में अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग के प्रथम नेता और शिक्षक, वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धान्त के जन्मदाता **कार्ल मार्क्स** और **फ्रेडरिक एंगेल्स** की अमर कृति **'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र'** के प्रकाशन के डेढ़ सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। यह महीना दुनिया भर के मजदूरों और सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए एक अत्यन्त प्रेरणादायी महीना है।

'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' और हमारा समय

यह भी एक ऐतिहासिक संयोग ही है कि जिस अमर रचना ने पिछली शताब्दी के मध्य में पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध युद्ध की शुरुआत के समय एक प्रचण्ड रणघोष की भूमिका निभाई थी, उसकी डेढ़ सौवीं जयन्ती हम एक ऐसे महत्वपूर्ण समय में मना रहे हैं, **जब इतिहास फिर एक नाजुक मोड़-बिन्दु पर खड़ा है।**

1976 में **माओ त्से-तुङ** की मृत्यु के बाद चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के साथ ही समाजवाद का अन्तिम दुर्ग भी ढह गया। पूर्वी यूरोप की संशोधनवादी सत्ताओं के पतन और सोवियत संघ के टूटने का एक सकारात्मक पहलू यह रहा कि समाजवाद का चोला ओढ़े जो राजकीय पूंजीवाद दुनिया के मेहनतकशों को भरमा-बरगला रहा था, वह रास्ते से हट गया। वह धोखे की टट्टी हट गई, जिसकी ओट का इस्तेमाल पूंजीवादी शिकार के लिए होता था, साथ ही समाजवाद को बदनाम भी किया जाता था और जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को भटकाया-भरमाया भी जाता था। **अब पूरी दुनिया में एक बार फिर पूंजी और श्रम एकदम आमने-सामने खड़े हैं।**

आज समाजवाद की फौरी पराजय पर विश्व पूंजीवाद जब विजय की हुंकार भरने का दिखावा कर रहा है तो उसके मुंह से मात्र मृत्युभय की घुटी-घुटी चीखें ही निकल पा रही हैं। इतिहास की सबसे लम्बी मन्दी और दुश्चक्रीय निराशा इसका ढांचागत संकट बन चुकी है। खुद पूंजीवाद के सिद्धान्तकारों को भी इसके रोग अन्तकारी प्रतीत हो रहे हैं। पश्चिम के धनी देशों में भी बेरोजगारी बढ़ रही है और जनान्दोलन हो रहे हैं। रूस और पूर्वी यूरोप के जिन देशों को "पश्चिमी स्वर्ग" का स्वप्न दिखाया गया, वह नारकीय जीवन की कटु सच्चाई के रूप में सामने आया है। इन देशों का मज़दूर वर्ग बेरोजगारी-मंहगाई से बेहाल गत पांच वर्षों से लगातार आन्दोलन कर रहा है। यहां अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण के बीज पड़ चुके हैं।

उधर तीसरी दुनिया के जिन पिछड़े देशों के पूंजीपतियों की बांह मरोड़कर और लालच देकर इनके बाज़ार को साम्राज्यवादियों ने अपनी पूंजी का अम्बार झोंकने के लिए पूरी तरह खोला है, वहां भी अन्तरविरोध तीखे हो उठे हैं। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के विरुद्ध मजदूर और किसान आन्दोलन से बगावत की राह पर आगे बढ़ रहे हैं और नये दौर की नई क्रान्तियों की न सिर्फ जमीन तैयार हो रही है, बल्कि रूपरेखा भी।

पूरी दुनिया के स्तर पर पूंजीपति वर्ग और मेहनतकश वर्ग भूमण्डलीकरण और आर्थिक नवउपनिवेशवाद के नये साम्राज्यवादी चरण में, एक बार फिर आमने-सामने खड़े हैं। **युद्ध-रेखा पहले हमेशा से अधिक स्पष्ट है। साम्राज्यवाद की कमजोर कड़ियां दबाव से कड़क-तिड़क रही हैं। दक्षिण और पूरब के देशों में विस्फोट की संभावनाएं सुनिश्चित हो रही हैं। इतिहास संकेत दे रहा है कि पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर का दूसरा चक्र शुरू हो चुका है।**

ऐसे समय में **'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र'** के प्रकाशन की डेढ़ सौवीं वर्षगांठ दुनिया भर के मेहनतकशों के लिए नई प्रेरणा और उत्साह का संकेत लेकर आयी है।

"यूरोप को एक भूत आतंकित कर रहा है–कम्युनिज्म का भूत। इस भूत को भगाने के लिए पोप और जार, मेटर्निख और गीज़ो, फ्रांसीसी उग्रवादी और जर्मन खुफिया पुलिस—बूढ़े यूरोप की सभी शक्तियों ने पुनीत गठबंधन बना लिया है।"

('कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की शुरुआती पंक्तियां)

आज समाजवाद की मृत्यु के तमाम दावों के बावजूद बूढ़े साम्राज्यवादियों और उनके पिछलग्गू एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के शासक पूंजीपतियों को भी वही भूत लगातार आतंकित किये हुए है जिस भूत की चर्चा 'घोषणा पत्र' की उपरोक्त शुरुआती लाइनों में की गई है। और उनका यह आतंक वास्तविक है।

पूंजीवाद के विरुद्ध विश्व सर्वहारा के ऐतिहासिक वर्ग-महासमर के इस दूसरे चक्र में भी 'घोषणा पत्र' का उतना ही महत्व है और यह महत्व तबतक बना रहेगा जबतक सर्वहारा वर्ग पूंजी की सभी किलेबन्दियों को ध्वस्त करके विश्व स्तर पर फैसलाकुन जीत नहीं हासिल कर लेता। विश्व सर्वहारा क्रान्ति के इतिहास में 'घोषणा पत्र' का ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि इसमें निरूपित वर्ग संघर्ष और वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धान्त और कार्यक्रम सर्वहारा क्रान्ति के पूरे दौर में प्रासंगिक बने रहेंगे।

'घोषणापत्र' के 1882 के दूसरे रूसी संस्करण की भूमिका में **फ्रेडरिक एंगेल्स** ने लिखा था : *"'घोषणापत्र' ने आधुनिक पूंजीवादी स्वामित्व के आसन्न विघटन की उद्घोषणा को अपना लक्ष्य बनाया था।"* और यही इसकी आज भी मौजूद प्रासंगिकता का मूल कारण है। 1872 के जर्मन संस्करण की भूमिका में लिखी गयी एंगेल्स की यह पंक्तियां आज के लिए भी लागू होती हैं :

"पिछले पचीस वर्षों में परिस्थिति चाहे कितनी भी बदल गई हो, इस 'घोषणा पत्र' में निरूपित आम सिद्धान्त समग्र रूप में आज भी उतने ही सही हैं, जितने कि पहले थे।

'घोषणापत्र' : जन्म का इतिहास

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा के मुख्य सर्जक **मार्क्स** और उनके अनन्य सहयोगी **एंगेल्स** के दृष्टिकोण महान ऐतिहासिक घटनाओं के माहौल में विकसित हुए। 19वीं सदी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति ला चुकी भाप मशीनें यूरोप के अन्य देशों में भी पूंजीवाद को विकसित कर रही थीं और सामंतवाद अब अन्तिम सांसें गिन रहा था। बड़े पैमाने पर पूंजीवादी उद्योग के विकास से किसान और दस्तकार उजड़ रहे थे और उत्पादन-साधनों से वंचित उजरती मजदूर बन रहे थे।

यूरोपीय देशों में पूंजीवाद के पैर जमने के साथ ही वर्ग-संघर्ष तेज हो रहा था, पूंजीवादी जनवादी और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन फैल रहे थे तथा पूंजीवाद का फिलहाल स्वतःस्फूर्त, अचेतन विरोध करने वाला सर्वहारा वर्ग इतिहास के रंगमंच पर उतर रहा था। 1831 और 1834 में फ्रांस के एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र **लियों** में मजदूरों के विद्रोह भड़क उठे। इसी दशक के उत्तरार्द्ध में इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग का पहला जनव्यापी राजनीतिक क्रान्तिकारी आन्दोलन—**चार्टिस्ट आन्दोलन**—चला। जर्मनी और यूरोप के पिछड़े हिस्सों में टूटते सामन्तवाद के खिलाफ उभरता पूंजीपति वर्ग और मध्यवर्ग क्रान्तिकारी संघर्ष कर रहे थे जिनमें शिरकत करने के साथ ही मजदूर वर्ग पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठाने लगा था। यही क्रान्तिकारी काल, जनसमूहों के प्रचण्ड ऐतिहासिक कार्यकलाप का यही दौर मार्क्सवाद के विकास की जमीन बना।

सबसे पहले 1844 में **मार्क्स** ने पूंजीवादी समाज के आर्थिक सम्बन्धों और सामाजिक-वैचारिक ढांचे की चीर-फाड़ शुरू करते हुए अपना यह विचार प्रस्तुत किया कि **ऐतिहासिक रूप से सर्वहारा वर्ग ही समाजवादी समाज का निर्माण कर सकता है। उधर एंगेल्स भी** स्वतंत्र रूप से इन्हीं नतीजों पर पहुंच रहे थे जब दोनों की 1844 में मुलाकात हुई और मानव इतिहास की एक महानतम मैत्री और अपूर्व वैचारिक-रचनात्मक साझेदारी की शुरुआत हुई।

उस समय मजदूर आन्दोलन में तमाम ऐसे हवाई और काल्पनिक समाजवाद की धारणाएं प्रचलित थीं जो ऐतिहासिक प्रगति के भौतिक आधार को नहीं समझती थीं, पूंजीवादी समाज में प्रत्येक वर्ग की भूमिका को पहचानने में असमर्थ थीं और वर्ग-संघर्ष की ऐतिहासिक वास्तविकता को समझने के बजाय "समता", "न्याय" आदि की काल्पनिक सोच रखती थीं। सितम्बर, 1844 में एंगेल्स पेरिस आये और दोनों मित्रों ने साथ मिलकर द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवादी विश्व-दृष्टिकोण को आगे विकसित करते हुए पूंजीवादी समाज के आर्थिक-सामाजिक सम्बन्धों को समझने के काम को आगे बढ़ाया तथा वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को विकसित करते हुए समाजवाद के रंग-बिरंगे बकवासी, दिखावटी और काल्पनिक स्वरूपों पर जबर्दस्त चोट करते हुए उनकी बखिया उधेड़ डाली। यह करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस के क्रान्तिकारी ग्रुपों की राजनीतिक-आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों में सक्रिय भागीदारी की। 1844 से 1848 के बीच की रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि इस दौरान मार्क्स ने एंगेल्स के साथ मिलकर *"मध्यमवर्गीय समाजवाद के भांति-भांति के सिद्धान्तों से डटकर संघर्ष करते हुए क्रान्तिकारी सर्वहारावर्गीय समाजवाद, अथवा कम्युनिज्म (मार्क्सवाद) के सिद्धान्तों और कार्यनीति की रूपरेखा तैयार की"* (लेनिन : *'कार्ल मार्क्स'*)।

"प्रशा की सरकार के निरन्तर अनुरोध के कारण 1845 में मार्क्स को एक खतरनाक क्रान्तिकारी करार देकर पेरिस से निकाल दिया गया। वे ब्रुसेल्स चले गये। 1847 की बसन्त ऋतु में मार्क्स और एंगेल्स ***'कम्युनिस्ट लीग'*** *नामक एक गुप्त प्रचार सोसाइटी के सदस्य बन गये; लीग की दूसरी कांग्रेस (लन्दन: नवम्बर, 1847) में उन्होंने प्रमुख भाग लिया और उसी के अनुरोध पर उन्होंने अपना प्रसिद्ध* ***'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'*** *तैयार किया। फरवरी, 1848 में वह प्रकाशित हुआ। इस रचना में अद्भुत प्रतिभाशाली स्पष्टता और ओजस्विता से एक नये विश्वदर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उसमें सुसंगत भौतिकवाद की, जिसके दायरे में सामाजिक जीवन का क्षेत्र भी आ जाता है, व्याख्या की गई है; विकास के सर्वव्यापी तथा प्रगाढ़ सिद्धान्त, यानी द्वंद्ववाद का परिचय दिया गया है, वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त तथा नये, कम्युनिस्ट समाज के सृष्टा—सर्वहारा वर्ग की विश्व-ऐतिहासिक क्रान्तिकारी भूमिका का निरूपण किया गया है।"* (लेनिन : *'कार्ल मार्क्स'*)

'घोषणापत्र' का इतिहास एक तरह से उन्नीसवीं सदी के सर्वहारा संघर्षों का ही इतिहास बन गया। इसका उल्लेख स्वयं एंगेल्स के ही शब्दों में बेहतर होगा: *"**'घोषणापत्र'** का अपना एक अलग इतिहास रहा है। प्रकाशन के साथ ही उसका वैज्ञानिक समाजवाद के हरावलों द्वारा, जिनकी संख्या अभी बिल्कुल ही अधिक न थी, उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ (जैसा कि पहली भूमिका में उल्लिखित अनुवादों द्वारा स्पष्ट है), किन्तु थोड़े ही समय बाद, जून 1848 में पेरिस के मजदूरों की पराजय (इस विद्रोह को एंगेल्स ने 1888 के अंग्रेजी संस्करण की भूमिका में "सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के मध्य पहली बड़ी लड़ाई" कहा था) से शुरू होने वाली प्रतिक्रिया के साथ उसे पृष्ठभूमि में ढकेल दिया गया, और अंत में जब नवम्बर 1852 में कोलोन में कम्युनिस्टों को सजा दी गई तो वह "कानूनी तौर पर" बहिष्कृत कर दिया गया। फरवरी क्रान्ति के साथ जिस मजदूर आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था, उसके सार्वजनिक रंगमंच से ओझल हो जाने के बाद 'घोषणा पत्र' भी पृष्ठभूमि में चला गया"* (**1890 के जर्मन संस्करण की भूमिका**)।

आगे एंगेल्स ने बताया है कि यूरोपीय मजदूर वर्ग ने शासक वर्ग पर एक और प्रहार करने के लिए जब पर्याप्त शक्ति जुटा ली तो 1864 में **अन्तरराष्ट्रीय मजदूर संघ** (प्रथम इण्टरनेशनल) का गठन हुआ। इण्टरनेशनल ने अपना कार्यक्रम घोषणा पत्र में निरूपित सिद्धान्तों को नहीं बनाया था, पर इस दौरान के संघर्षों और हारों-जीतों ने यूरोपीय मजदूर वर्ग को अपनी मुक्ति की वास्तविक शर्तों को समझने में काफी मदद की। 1874 में जब इण्टरनेशनल भंग हुआ तो मजदूर वर्ग 1864 से सर्वथा भिन्न स्थिति में था और 1887 आते-आते यूरोपीय मजदूर आन्दोलन का बड़ा और मुख्य हिस्सा 'घोषणा-पत्र' में निरूपित सिद्धान्तों को अपना मार्गदर्शक सिद्धान्त बना चुका था। 1889 में दूसरे इण्टरनेशनल का गठन हुआ। इस समय तक घोषणा पत्र का प्रकाशन न सिर्फ यूरोप की सभी भाषाओं में और अमेरिका में हो चुका था बल्कि यह लातिन अमेरिकी देशों के मजदूर आन्दोलन तक भी पहुंच चुका था। जैसा कि एंगेल्स ने 1890 में लिखा था : *"'घोषणापत्र' का इतिहास 1848 के बाद से आधुनिक मजदूर आन्दोलन के इतिहास को एक हद तक प्रतिबिम्बित करता है। आज तो निस्सन्देह 'घोषणापत्र' समस्त समाजवादी साहित्य की सबसे अधिक प्रचलित, सबसे अधिक अन्तरराष्ट्रीय कृति है और वह साइबेरिया से लेकर कैलिफोर्निया तक सभी देशों के करोड़ों मजदूरों का समान कार्यक्रम है।"*

वर्तमान सदी के दूसरे दशक तक 'घोषणा पत्र' चीन, भारत सहित एशिया के अधिकांश देशों तक भी पहुंच चुका था। पांचवें दशक तक भारत की अधिकांश प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका था और **यह भारतीय मजदूर वर्ग की भी बुनियादी पाठ्य पुस्तक और मार्गदर्शक किताब बन चुका था।**

'घोषणापत्र' में निरूपित बुनियादी सिद्धान्त और प्रमुख शिक्षाएं

मार्क्स और एंगेल्स की यह अमर रचना उदात्त प्रेरणा और प्रबल क्रान्तिकारी जोश से ओतप्रोत है, जो मेहनतकशों के दिमाग के साथ ही दिल से भी अपील करती हुई संघर्ष का संकल्प जगाती है, क्रान्तिकारी पराक्रम का आह्वान करती है। यह अनुपम कृति वैज्ञानिक कम्युनिज्म का पहला कार्यक्रममूलक दस्तावेज है जिसमें विचारों की असाधारण गहनता, तर्क

की अकाट्य शक्ति तथा सुघड़-सजीव शैली एवं साहित्यिक सौष्ठव का बेजोड़ संगम है। इसमें मार्क्स और एंगेल्स के उस समय तक के समस्त सैद्धान्तिक कार्यों का निचोड़ है जो समाजवाद को कल्पना से विज्ञान की जमीन पर ला उतारता है और सर्वहारा वर्ग का समग्र क्रान्तिकारी विश्व दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसमें मार्क्स और एंगेल्स ने पहली बार अपनी शिक्षा, उसके तीनों संघटकों—दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र और वैज्ञानिक समाजवाद के मूलभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त, सुव्यवस्थित और समग्रतापूर्ण विवरण दिया।

मार्क्स के निधन के बाद एंगेल्स ने 'घोषणा पत्र' की रचना में उनकी भूमिका का उल्लेख करते हुए इस कृति के निचोड़ की भी चर्चा इन शब्दों में कर डाली है : "चूंकि 'घोषणा पत्र' हमारी संयुक्त रचना है, इसलिए मैं यह कहने के लिए अपने को वचनबद्ध समझता हूं कि इसमें आधारभूत प्रस्थापना, जो इसका नाभिक है, मार्क्स की ही है। वह प्रस्थापना यह है कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग का आर्थिक उत्पादन तथा विनिमय का प्रचलित ढंग तथा उससे अनिवार्यतः उत्पन्न होने वाली सामाजिक संरचना उस आधार का निर्माण करती है जिस पर उस युग के राजनीतिक तथा बौद्धिक इतिहास का निर्माण होता है और जिसके बल पर ही उस पर प्रकाश डाला जा सकता है; कि इसके परिणामस्वरूप मानव जाति का पूरा इतिहास (आदिम कबायली समाज के, जिसमें भूमि पर सबका स्वामित्व होता था, विघटन से लेकर) वर्ग संघर्षों, शोषकों और शोषितों, शासकों तथा शासितों के बीच संघर्षों का इतिहास रहा है; कि इन वर्ग संघर्षों का इतिहास अपने विकास क्रम की एक ऐसी मंजिल में पहुंच चुका है जहां शोषित तथा उत्पीड़ित वर्ग —सर्वहारा वर्ग—पूरे समाज को शोषण, उत्पीड़न, वर्ग विभेदों तथा वर्ग संघर्षों से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त किये बिना उत्पीड़न तथा शोषण करने वाले वर्ग—पूंजीपति वर्ग के जूए से अपने को मुक्त नहीं कर सकता।" (1888 के अंग्रेजी संस्करण की भूमिका)

अब हम 'घोषणापत्र' की मूल अन्तर्वस्तु की कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।

"अभी तक आविर्भूत (कबायली आदिम समाज के विघटन के बाद से) समस्त समाज का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है।" यहां से प्रारम्भ करते हुए 'घोषणापत्र' के रचयिताओं ने यह सिद्धान्त निरूपित किया है कि सभी वर्ग समाजों में अनिवार्यतः वर्ग संघर्ष लगातार जारी रहता है और वही विकास की चालक शक्ति होता है। पुस्तक का पहला अध्याय 'बुर्जुआ और सर्वहारा' इसी प्रश्न पर केन्द्रित है। मार्क्सवाद के प्रवर्तक यह दिखाते हैं कि शोषक समाजों के विकास और विनाश के जिस नियम का उन्होंने पता लगाया है वह पूंजीवादी समाज पर भी लागू होता है।

समाज-विकास की गतिकी के आम नियमों को लागू करते हुए और अपने देश-काल की घटनाओं के सूक्ष्म अध्ययन एवं सामान्यीकरण के आधार पर मार्क्स-एंगेल्स ने पूंजीवादी समाज की उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डाला है तथा इसके उन अन्दरूनी अन्तरविरोधों को उजागर किया है जो इसे अनिवार्यतः विनाश की ओर अग्रसर करते हैं। उन्होंने बताया है कि विकास की एक खास मंजिल में पहुंचकर स्वामित्व के सामंतवादी सम्बन्ध विकसित हो गई उत्पादक शक्तियों के अनुरूप नहीं रहे। *"उत्पादन को आगे बढ़ाने के बजाय वे उसे अवरुद्ध करते थे। वे बहुत सारी बेड़ियां बन गये। उन्हें तोड़ फेंकना आवश्यक हो गया और उन्हें तोड़ फेंका गया।"* इस तरह पूंजीवादी समाज अस्तित्व में आया जिसमें शासक-शासित के रूप में दो ध्रुवों पर पूंजीपति और सर्वहारा खड़े होते हैं। पूंजीपति उत्पादन के सभी साधनों का मालिक होता है और उजरती मजदूर उनसे पूरी तरह वंचित होता है और जीने के लिए अपनी श्रम-शक्ति बेचता है।

पूंजीपति वर्ग ने सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष में क्रान्तिकारी भूमिका निभाई थी और उससमय इतिहास-चक्र को आगे गति दी थी। मशीनों और फैक्टरियों के आविर्भाव के साथ उत्पादक शक्तियों का भव्य विकास हुआ और साथ ही बौद्धिक-वैचारिक प्रगति भी। पर विकास की एक निश्चित मंजिल पर पहुंचकर बुर्जुआ उत्पादन-सम्बन्ध उत्पादक-शक्तियों को और आगे विकसित करने में अक्षम और बाधक बन गये। कारखानों में हजारों-हजार मजदूरों को जमा करते हुए पूंजीवाद उत्पादन की प्रक्रिया को सामाजिक स्वरूप प्रदान करता है। किन्तु उत्पादन का सामाजिक स्वरूप यह मांग करता है कि उत्पादन-साधनों पर स्वामित्व भी सामाजिक हो, जबकि वह निजी ही बना रहता है। उत्पादन-साधनों पर निजी स्वामित्व उत्पादक शक्तियों के विकास की राह का रोड़ा बन जाता है।

उत्पादक शक्तियों और पूंजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों के बीच अधिकाधिक उग्र होता अन्तरविरोध उन संकटों को जन्म देता है जो समय-समय पर पूंजीवादी समाज को झकझोरते रहते हैं। पूंजीपति वर्ग इनसे निजात पा ही नहीं सकता क्योंकि ये पूंजीवाद से अभिन्न रूप से जुड़ी उत्पादन की अराजकता का परिणाम होते हैं।

अन्ततोगत्वा सिर्फ सर्वहारा क्रान्ति ही उत्पादक शक्तियों की तबाही रोक सकती है, सभ्यता को विनाश से बचा सकती है और मानव जाति को उज्ज्वल भविष्य की ओर आगे बढ़ा सकती है। **यही सर्वहारा वर्ग का विश्व-ऐतिहासिक मिशन है** जिसे 'घोषणापत्र' में आगे तफसील से समझाया गया है।

पूंजीवादी समाज का सबसे अधिक उत्पीड़ित वर्ग होने के साथ ही सर्वहारा सर्वाधिक क्रान्तिकारी वर्ग भी होता है। बुर्जुआ वर्ग के साथ उसका संघर्ष विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ अलग-थलग, स्वतःस्फूर्त संघर्ष की मंजिल से आगे ज्यादा से ज्यादा सचेतन व व्यापक वर्ग-संघर्ष बनता जाता है। *"प्रत्येक वर्ग-संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष होता है।"* यह समूचे पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध लक्षित होता है तथा उसके राज्य के विरुद्ध भी, जो *"पूरे पूंजीपति वर्ग के सम्मिलित हितों का प्रबंध करने वाली कमेटी के अलावा और कुछ नहीं है।"*

एक मंजिल पर पहुंचकर मजदूर वर्ग का संघर्ष क्रान्ति का रूप ले लेगा जिसमें सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग को सत्ताच्युत करके अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करेगा। सर्वहारा इतिहास का एकमात्र ऐसा वर्ग है जो अपने को मुक्त करते हुए समस्त मानवजाति को भी हर तरह के शोषण से मुक्त करेगा। 'घोषणा पत्र' का पहला अध्याय बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध इस कठोर ऐतिहासिक निर्णय के साथ समाप्त होता है :

"इस तरह आधुनिक उद्योग का विकास पूंजीपति वर्ग के पैरों के नीचे से उस जमीन को ही खिसका देता है जिसके आधार पर वह उत्पादन करता है और पैदावार को हड़प लेता है। अतः पूंजीपति वर्ग सर्वोपरि अपनी कब्र खोदने वालों को पैदा करता है। उसका पतन और सर्वहारा वर्ग की विजय दोनों समान रूप से अनिवार्य हैं।"

'घोषणापत्र' के दूसरे अध्याय **'सर्वहारा और कम्युनिस्ट'** में सर्वहारा पार्टी की स्थापना की आवश्यकता, इसकी भूमिका, ध्येय और कार्यभार समझाये गये हैं। यहां मार्क्स-एंगेल्स ने सर्वहारा पार्टी विषयक अपनी शिक्षा की नींव रखी है जिसे वे लगातार आगे विकसित करते रहे और जिसे और अधिक उन्नत मंजिल पर ले जाकर लेनिन ने वर्तमान सदी के प्रारम्भ में **बोल्शेविक पार्टी** की स्थापना की।

घोषणापत्र के शब्दों में, कम्युनिस्ट *"हर देश की मजदूर पार्टियों के सबसे उन्नत और कृतसंकल्प हिस्से होते हैं, ऐसे हिस्से जो औरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं; दूसरी ओर, सैद्धान्तिक दृष्टि से, वे सर्वहारा वर्ग के विशाल जन-समुदाय की अपेक्षा इस अर्थ में श्रेष्ठ हैं कि वे सर्वहारा आंदोलन के आगे बढ़ने के रास्ते की, उसके हालात और साधारणतः उसके अन्तिम नतीजे की सुस्पष्ट समझ रखते हैं।"*

पूंजीवादी भाड़े के टट्टू मार्क्स के समय से लेकर आजतक शहर-देहात के मध्यम वर्गीय लोगों और किसानों को कम्युनिज्म के खिलाफ

भड़काते रहते हैं कि स्वामित्व खत्म करने के नाम पर कम्युनिस्ट उन सबकी सम्पत्ति का अपहरण कर लेंगे। मार्क्स-एंगेल्स ने तीखे व्यंग्य के साथ इस फरेब का पर्दाफाश करते हुए कहा है कि छोटे मालिकाने को कम्युनिज्म नहीं बल्कि पूंजीवाद और बड़े उद्योगों का विकास ही क्रमशः तबाह कर डालता है। कम्युनिस्ट आधुनिक पूंजीवादी निजी स्वामित्व को नष्ट करना चाहते हैं, आम तौर पर स्वामित्व को नहीं। वे समाजवादी स्वामित्व के रूपों को कायम करना चाहते हैं। उजरती श्रम श्रमजीवी के लिए कोई सम्पत्ति नहीं बल्कि पूंजी पैदा करता है। पूंजी एक सामूहिक उपज, एक सामाजिक शक्ति होती है जो पूंजीपति के कब्जे में होती है। *''इसलिए पूंजी जब आम स्वामित्व बना दी जाती है, जब उसे समाज के तमाम सदस्यों के स्वामित्व का रूप दे दिया जाता है, तब वैयक्तिक स्वामित्व सामाजिक स्वामित्व में नहीं बदल जाती। तब स्वामित्व का केवल सामाजिक रूप बदल जाता है। उसका वर्ग-रूप मिट जाता है।''*

कम्युनिस्टों पर पूंजीवाद के प्रचारक यह लांछन लगाते हैं कि वे व्यक्ति की स्वतंत्रता समेत हर तरह की स्वतंत्रता मिटाना चाहते हैं। इसका खण्डन करते हुए मार्क्स-एंगेल्स बताते हैं कि पूंजीवाद के अंतर्गत व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ सिर्फ खरीद-फरोख्त की स्वतंत्रता होता है; *''बुर्जुआ समाज में पूंजी स्वतंत्र है और उसका व्यक्तित्व होता है, किन्तु जीवित व्यक्ति परतंत्र है और उसका कोई व्यक्तित्व नहीं होता।''*

''फिर भी पूंजीपति वर्ग कहता है कि इस परिस्थिति को खत्म कर देने का मतलब व्यक्तित्व और स्वतंत्रता को खत्म कर देना है। और यह ठीक ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम बुर्जुआ व्यक्तित्व, बुर्जुआ स्वतंत्रता और बुर्जुआ स्वाधीनता को जड़-मूल से खत्म कर देना चाहते हैं।''

पूंजीवादी शोषण-उत्पीड़न का नाश करके ही व्यक्ति की सच्ची स्वतंत्रता सुनिश्चित की जा सकती है।

आगे मार्क्स-एंगेल्स पाखण्डपूर्ण, घिनौनी पूंजीवादी नैतिकता का तीखे व्यंग्य के साथ पर्दाफाश करते हुए बताते हैं कि वह महज **''सोने की खनक''** में ही सिमटी होती है। वे बताते हैं कि कम्युनिज्म की नैतिकता ही समतामूलक समाज की सच्ची मानवतावादी, वैज्ञानिक, स्वार्थमुक्त नैतिकता हो सकती है।

बुर्जुआ राष्ट्रप्रेम और ''मातृभूमि-प्रेम'' का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए 'घोषणापत्र' बताता है कि पूंजीपतियों और उनके विचारकों का राष्ट्रवाद बाजार में जन्मा होता है, मातृभूमि से उनका मतलब उनकी शोषक व्यवस्था से ही होता है तथा ''मातृभूमि की रक्षा'' के झूठे नारे की आड़ में वे दूसरे देशों पर कब्जा करने और दूसरे जनगण को दास बनाने की ओर लक्षित लुटेरे युद्ध चलाते हैं। *''श्रमजीवियों का कोई स्वदेश नहीं है। जो उनके पास है ही नहीं उसे उनसे कौन छीन सकता है? चूंकि सर्वहारा वर्ग को सबसे पहले राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करना है, राष्ट्र में प्रधान वर्ग का स्थान ग्रहण करना है, खुद अपने को राष्ट्र के रूप में संगठित करना है, अतः इस हद तक वह स्वयं राष्ट्रीय चरित्र रखता है, गोकि इस शब्द के पूंजीवादी अर्थ में नहीं।''*

साथ ही, राष्ट्रीय प्रश्न पर नकारात्मक रुख से दूर रहते हुए 'घोषणापत्र' में कहा गया है: *''पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सर्वहारा वर्ग का संघर्ष, यद्यपि अंतर्वस्तु की दृष्टि से नहीं, तथापि रूप की दृष्टि से शुरू में राष्ट्रीय संघर्ष होता है। हर देश के सर्वहारा वर्ग को, जाहिर है, पहले अपने ही पूंजीपतियों से निबटना होगा।''*

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में मार्क्सवादी सिद्धान्त के एक सबसे बुनियादी तत्व सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद का भी स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है। मार्क्स-एंगेल्स के अनुसार, सर्वहारा की विजय के साथ ही हर तरह की जातीय फूट का, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे को दास बनाये जाने के सिलसिले का और मानवता पर युद्धों द्वारा लादी जाने वाली विपदाओं-यातनाओं का भी अन्त हो जायेगा।

राजनीतिक सत्ता-प्राप्ति के बाद सर्वहारा वर्ग के आम कार्यभारों को 'घोषणा-पत्र' इन शब्दों में निरूपित करता है: *''सर्वहारा वर्ग अपना राजनीतिक प्रभुत्व पूंजीपति वर्ग से धीरे-धीरे कर सारी पूंजी छीनने के लिए, उत्पादन के सारे औजारों को राज्य, अर्थात शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग, के हाथों में केन्द्रीकृत करने के लिए तथा समग्र उत्पादक शक्तियों में यथाशीघ्र वृद्धि के लिए इस्तेमाल करेगा।''*

यह इंगित करते हुए कि 'घोषणापत्र' की इस प्रस्थापना में राज्य के प्रश्न पर मार्क्सवाद का सर्वाधिक बुनियादी और सर्वाधिक अनूठा सिद्धान्त निरूपित किया गया है, **लेनिन** ने उसे इन शब्दों में स्पष्ट किया है : **''राज्य, अर्थात शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग'—यही सर्वहारा अधिनायकत्व है।''**

यद्यपि ''सर्वहारा अधिनायकत्व'' शब्दों का 'घोषणा पत्र' में उपयोग नहीं हुआ था, तथापि यह धारणा यहां पहली बार ठोस रूप में प्रकट हुई। इसे मार्क्स-एंगेल्स ने अपनी आगे की रचनाओं में क्रमशः ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, शोषकों के प्रतिरोध को कुचलने के लिए और कम्युनिज्म की दिशा में यात्रा को जारी रखने के लिए राज्य के एक संक्रमणकालीन रूप के तौर पर एक लम्बी अवधि तक सर्वहारा को अपना अधिनायकत्व लागू करना होगा। यह बुर्जुआ तत्वों पर अंकुश लगायेगा और सम्पूर्ण मेहनतकश जनता के जनवाद पर आधारित अबतक की सारी सत्ताओं से अधिक जनवादी होगा।

भावी कम्युनिस्ट समाज की आम रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए 'घोषणापत्र' बताता है कि इस समाज में उत्पादक शक्तियों के विकास के मार्ग में कोई बाधाएं नहीं होंगी, और, परिणामतः उसकी कोई सीमा भी नहीं होगी। हर तरह के शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति व्यक्ति और समाज की सामंजस्यपूर्ण एकता के लिए, व्यक्ति की सच्ची स्वतंत्रता और मानव के चहुंमुखी विकास के लिए भौतिक आधार बनेगी।

''वर्ग और वर्ग-विरोधों से बिंधे पुराने पूंजीवादी समाज के स्थान पर एक ऐसे संघ की स्थापना होगी जिसमें व्यष्टि की स्वतंत्र प्रगति समष्टि की स्वतंत्र प्रगति की शर्त होगी।''

'घोषणा पत्र' के तीसरे अध्याय में समाजवाद के नाम पर तत्कालीन यूरोप में प्रचारित भांति-भांति की गैर सर्वहारा शिक्षाओं की आलोचना प्रस्तुत की गई है। यद्यपि ये विचार आज मर चुके हैं, पर सैद्धान्तिक दृष्टि से इनकी आलोचना आज भी सही और उपयोगी है क्योंकि आज भी भारत और अन्य तमाम देशों के बुर्जुआ वर्ग के कुछ सुधारवादी धड़े ऐसे भांति-भांति के ''समाजवाद'' का झण्डा लहराते रहते हैं और आम जनता को गुमराह करते रहते हैं।

'घोषणापत्र' में आलोचनात्मक-काल्पनिक समाजवाद और कम्युनिज्म का गहन द्वंद्वात्मक मूल्यांकन किया गया है। अपने समय में पूंजीवादी समाज की तीव्र आलोचना करते हुए **सेंट साइमन, फूरिए, ओवेन** आदि ने जो भूमिका अदा की, उसका मार्क्स-एंगेल्स ऊंचा मूल्यांकन करते हैं। किन्तु काल्पनिक समाजवाद चूंकि वर्गों से ऊपर उठने की कोशिश करता है तथा राजनीतिक संघर्ष और हर तरह की क्रान्तिकारी कार्रवाई के प्रति नकारात्मक रुख अपनाता है, अतः ज्यों-ज्यों मजदूर आन्दोलन आगे बढ़ता है और वर्ग-संघर्ष तीखा होता जाता है, त्यों-त्यों काल्पनिक समाजवाद अपनी सकारात्मक भूमिका खोकर प्रतिगामी बनता जाता है।

'वर्तमान काल की विभिन्न विरोधी पार्टियों के संबंध में कम्युनिस्टों की स्थिति' शीर्षक 'घोषणापत्र' का चौथा अध्याय तफसील के नजरिए से हालांकि उतना प्रासंगिक नहीं है, लेकिन इसमें उल्लिखित कम्युनिस्टों की कार्यनीति के सैद्धान्तिक मूलाधार आज भी प्रासंगिक हैं। विशेष तौर पर ये पंक्तियां आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक का काम करती हैं : *''कम्युनिस्ट मजदूरों के तात्कालिक लक्ष्यों के लिए लड़ते हैं, उनके सामयिक हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं; किन्तु वर्तमान के आन्दोलन में वे इस आन्दोलन के भविष्य का भी प्रतिनिधित्व करते हैं और उसका ध्यान रखते हैं।''*

विभिन्न देशों के संदर्भ में इस प्रस्थापना को ठोस रूप देते हुए मार्क्स एंगेल्स यह शिक्षा देते हैं : "*संक्षेप में, कम्युनिस्ट सर्वत्र मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ हर क्रान्तिकारी आंदोलन का समर्थन करते हैं।*"

अन्त में 'घोषणापत्र' इन शब्दों में सर्वहारा क्रान्ति का खुला, ओजस्वी, और गर्वपूर्ण आह्वान करता है : "**कम्युनिस्ट क्रान्ति के भय से शासक वर्ग कांपते हैं तो कांपें! सर्वहाराओं के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है।**

"दुनिया के मजदूरो, एक हो!"

'घोषणापत्र' का उद्घोष अमर है! स्वर्ग पर फिर से धावा बोला जायेगा!!

उपरोक्त महान उद्घोष को आज डेढ़ सौ वर्ष गुजर चुके हैं। सर्वहारा क्रान्ति ने इस दौरान डग भरते हुए पूरी दुनिया और एक पूरे युग को नाप डाला है तथा चार महान क्रान्तियों—**पेरिस कम्यून (1871), सोवियत क्रान्ति (1917), चीनी नई जनवादी क्रान्ति (1949) और चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति** (1966-76) के रूप में इतिहास में चार मील के पत्थर स्थापित किये हैं जो सर्वहारा शौर्य और कम्युनिज्म के कीर्तिस्तम्भ के रूप में विश्व-पूंजीवाद की छाती पर खड़े हैं।

इस सदी के प्रारम्भ में वित्तीय पूंजी के प्रभुत्व के साथ पूंजीवाद के विश्वव्यापी प्रसार और विकास की चरम अवस्था का नया दौर शुरू हुआ, जिसे **लेनिन** ने व्याख्यायित किया और **साम्राज्यवाद** नाम दिया। उन्होंने विश्व सर्वहारा क्रान्ति की नई आम दिशा पेश की और बताया कि क्रान्तियों के तूफान के केन्द्र अब पिछड़े देशों में खिसक आये हैं। अक्टूबर क्रान्ति के बाद समाजवाद ने रूस में 1917 से 1953 तक 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में निरूपित सिद्धान्तों को सिद्ध किया और आगे विस्तार दिया। **चीन** में **माओ त्से-तुङ** ने **नई जनवादी क्रान्ति** के बाद समाजवादी निर्माण को आगे गति दी और **सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति** के दौरान ये सिद्धान्त विकसित किये कि पूंजीवादी पुनर्स्थापना के खतरों को समाप्त करके समाजवाद कम्युनिज्म की मंजिल तक किस प्रकार आगे बढ़ेगा!

पूरे विश्व में इस दौरान जारी वर्ग संघर्ष 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में निरूपित सिद्धान्तों को सत्यापित करते रहे। राष्ट्रीय मुक्ति-युद्धों की जीत ने उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद के दौरों को समाप्त कर दिया। वियतनाम, कोरिया, क्यूबा आदि कई देशों में ये मुक्ति युद्ध सर्वहारा पार्टियों की अगुवाई में लड़े गये और अन्यत्र भी सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टियों की भूमिका अहम रही। सोवियत संघ के हाथों दूसरे विश्वयुद्ध में फासीवाद की पराजय और पूर्वी यूरोप में सर्वहारा सत्ताओं की स्थापना ने सर्वहारा वर्ग की शक्ति से पूरी दुनिया को परिचित करा दिया।

विश्व-पूंजीवाद ने अपनी समग्र भौतिक बौद्धिक शक्ति लगाकर फिलहाल समाजवादी क्रान्तियों को विफल कर दिया है। इसमें समाजवादी समाज और सर्वहारा पार्टियों के भितरघातियों ने अहम भूमिका निभाई है। **पर यह हार अन्तिम नहीं है। जैसा कि इतिहास में पूर्ववर्ती क्रान्तियों के साथ हुआ है, सर्वहारा क्रान्ति के भी नये संस्करण अवश्यम्भावी हैं।**

आर्थिक नव उपनिवेशवाद के दौर में विश्व पूंजीवाद के चतुर्दिक, सर्वव्यापी, ढांचागत, अन्तकारी, असमाधेय संकट यही बता रहे हैं कि पूंजीवाद अजर अमर नहीं है। इतिहास का अन्तिम शोषक वर्ग आज वर्ग समाज के सीमान्तों पर खड़ा मेहनतकश अवाम पर हर तरह का कहर बरपा कर रहा है, पर साथ ही वह दुनिया के कोने कोने से उठ रहे जनसंघर्षों और क्रान्तिकारी सर्वहारा के हिरावल दस्तों के फिर से संगठित होने की कोशिशों से भयाक्रान्त भी है।

सर्वहारा वर्ग के लिए आज भी यह आह्वान सर्वथा प्रासंगिक है कि 'कम्युनिस्ट क्रान्ति के भय से शासक वर्ग कांपते हैं तो कांपें! सर्वहाराओं के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है।'

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' आज भी दुनिया के मजदूरों की पूंजीवाद- विरोधी विश्व ऐतिहासिक महाक्रान्ति का घोषणापत्र है।

'घोषणापत्र' के प्रकाशन की डेढ़ सौंवीं जयन्ती हमें अपने शौर्यपूर्ण अतीत की विस्मृति के विरुद्ध संघर्ष के लिए, अपने वर्तमान, भविष्य और कल्पनालोक की मुक्ति के लिए ललकार रही है तथा 'स्वर्ग' पर फिर से धावा बोलने के लिए आह्वान कर रही है।

हमें अपने संकल्पों को फौलादी बनाना है और नई मजदूर क्रान्ति के रणघोष से पूरे भूमण्डल को एक बार फिर कंपा देना है।

('बिगुल' से साभार)

समकालीन

तीसरी दुनिया फिर से आपके बीच

मई '98 अंक की महत्वपूर्ण सामग्री

- अब साम्प्रदायिकता नहीं फासीवाद का खतरा
- गोलवलकर और हिटलर के विचारों में आश्चर्यजनक साम्य है– मधु लिमये
- हिंदू राष्ट्रवाद का वैचारिक दर्शन
- रोंगथोंग कुनले दोरजी की गिरफ्तारी : भारतीय लोकतंत्र की अग्निपरीक्षा
- किसानों की आत्महत्या से उपजे सवाल / क्यों कर रहे हैं किसान आत्महत्या
- बेलछी की वेदना—बीस साल बाद
- चुनाव में मुद्दा सिर्फ जात-पांत ही थोड़ी सी परने वालों —डी. प्रेमपति
- कैसी-कैसी पत्रकारिता! कैसे-कैसे एन.जी.ओ!!
- मानव अधिकारों की रक्षा का सवाल
- नेपाली कम्युनिस्ट : 'शेल्टर' से सीधे संसद में पहुंचने की त्रासदी
- पंकज सिंह और शशिप्रकाश की कविताएं
- आलोक धन्वा की कविता का सफर : वाम प्रतिरोध से वाम प्रतिष्ठान की ओर

समकालीन तीसरी दुनिया
आपकी अपनी पत्रिका है
इसके प्रचार और प्रसार में सहयोग करके
वैकल्पिक मीडिया की अवधारणा को
ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने में
सहयोग करें।

संपादक : **आनंदस्वरूप वर्मा**
संपादकीय संपर्क : **क्यू-63, सेक्टर-12, नोयडा (गौतम बुद्ध नगर)**

एक प्रति : 10 रुपए
वार्षिक : 100 रुपए
आजीवन : 2000 रुपए

पेरिस कम्यून (18 मार्च) की वर्षगांठ और अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) के अवसर पर

कैसे पहुंची पेरिस कम्यून की चिंगारी चियापास की पहाड़ियों में

) सत्यप्रकाश

मुक्ति के स्वप्न, मुक्ति के विचार, अमर होते हैं। उन्हें दबाया जा सकता है, धूल और राख की सात परतों के नीचे दफन किया जा सकता है, स्मृतियों से ओझल किया जा सकता है, निर्वासित किया जा सकता है। पर उन्हें कभी मिटाया नहीं जा सकता। लहरों में बहकर या हवाओं में उड़कर किसी कठोर चट्टान की नन्हीं सी दरार में जा गिरे बीज की तरह वे फिर अंखुवाते हैं, छनकर पहुंची सूरज की जरा सी रोशनी और थोड़ी सी नमी से भी वे पोषण लेकर बढ़ते रहते हैं और फिर एक दिन चट्टान का सीना फाड़कर बाहर आ जाते हैं।

सवा सौ साल पहले 1871 के पेरिस कम्यून की चिंगारी आज मेक्सिको के चियापास की पहाड़ियों में लड़ रहे गुरिल्ला योद्धाओं तक कैसे पहुंची, यह एक बेहद रोमांचक, हैरतअंगेज और साथ ही आशा से भर देने वाली कहानी है।

अमेरिकी इजारेदार पूंजीपतियों द्वारा "खुली (बाजार) डकैती" को और तेज करने के लिए थोपे गये 'उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते' (नाफ्टा) के लागू होने वाले दिन ही मेक्सिको में भड़के सशस्त्र किसान उभार ने सारे विश्व को चौंका दिया था। चियापास की पहाड़ियों में लड़ रहे विद्रोहियों में शामिल स्त्री योद्धाएं स्त्रियों में नई जागृति का संकेत दे रही थीं।

यहां हम इतिहास की एक अनोखी घटना की चर्चा करेंगे जो हमें पेरिस के बैरिकेड्स से चियापास की घने जंगलों से ढंकी पहाड़ियों तक ले जाती है—एक लाल झण्डे और एक "लाल दिल" वाली महिला के पदचिन्हों के सहारे।

पेरिस कम्यून की स्त्रियां

18 मार्च, 1871। शहर के मजदूरों और आम जनता के सशस्त्र दस्ते पेरिस नेशनल गार्ड का पेरिस पर अधिकार हो गया। थियेर के नेतृत्व में राष्ट्रीय सरकार भागकर वर्साई के महलों में जा छुपी। दस दिन बाद पेरिस कम्यून की स्थापना की घोषणा कर दी गयी। इतिहास में पहली बार सर्वहारा अधिनायकत्व कायम हुआ। यह एक अभूतपूर्व घटना थी।

यूरोप की पूर्ववर्ती क्रान्तियों में, खासकर 1848 की क्रान्ति में सर्वहारा ने भाग लिया था और प्रायः मुख्य लड़ाकू शक्ति वही था लेकिन पहली बार उसने खुद अपने लिए सत्ता पर कब्जा किया था। कम्यून सिर्फ दो महीने टिका रहा, लेकिन बुर्जुआ समाज के ताने-बाने को तोड़कर एक नये प्रकार की क्रान्ति जन्म ले चुकी थी।

इस नयी क्रान्ति के सभी क्षेत्रों में स्त्रियां अग्रिम मोर्चों पर थीं। उन्होंने कम्यून के नेतृत्व में मौजूद प्रूधों जैसे रूढ़िवादियों को चुनौती दी जो स्त्रियों को दबाकर रखने की वकालत करते थे। उन्होंने चर्च की खुली मुखालफत की। और राजनीति में तथा रणभूमि में उनके दुस्साहसिक कारनामों से पेरिस के बुर्जुआ जेंटिलमैनों और उनके जनरलों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

कम्यून के लाल झण्डे की तरह लाल कमरबंद और लाल स्कार्फ पहने कम्यून की स्त्रियां बुर्जुआ हलकों में कुख्यात थीं। दुश्मन सैनिकों की बढ़त रोकने के लिए केरोसिन से लैस उनके दस्ते जगह जगह आग लगा देते थे। जब वर्साई की सेनाओं ने पेरिस पर फिर कब्जे के लिए हमला बोला तो बड़ी तादाद में स्त्रियों को फायरिंग स्क्वाड के सामने भेजा गया। शहरी गरीब वर्ग की कोई भी स्त्री टोकरी या बोतल लिए हुए दिख गई तो उसे 'फूंक-ताप दस्ते' की सदस्य मानकर फौरन गोली मार दी जाती थी।

हमले की पहली रात। अंधेरे का फायदा उठाकर फ्रांसीसी सरकार के सैनिक चुपचाप पेरिस में घुस आये थे। वे उन तोपों को वापस ले जाने की फिराक में थे जिन्हें जनता ने छीन लिया था। लेकिन उन्हें देख लिया गया और थोड़ी ही देर में वहां स्त्री-पुरुषों की भीड़ उमड़ पड़ी। स्त्रियों ने तोपों को अपने शरीर से ढंक दिया। सिपाहियों ने अफसरों का गोली चलाने का आदेश मानने से इंकार कर दिया। सैनिक वापस लौट गये, पर अनेक कम्युनार्डों से आ मिले। ऐसी घटनाएं अनगिनत थीं।

पेरिस कम्यून की इन वीरांगनाओं में एक थीं **लुइस मिशेल**। 1830 में जन्मी लुइस की मां एक किसान स्त्री थी और पिता एक बिगड़ा हुआ जागीरदार जिसने उसे अपनी पुत्री मानने से इंकार कर दिया था। कम्यून के समय वह 41 वर्ष की थी।

ग्रामीण शिक्षिका का काम अपनाने वाली लुइस 1851 में मां के साथ पेरिस आ गईं जहां उन्होंने 'सोसायटी फार दि रिक्लेमेशन ऑफ विमेन्स राइट्स' और 'स्त्री अधिकार' नामक अखबार की शुरुआत में अहम भूमिका निभाई। प्रशा की सेना द्वारा पेरिस की घेरेबन्दी के दौरान उन्होंने मॉतमार्त्र में "सतर्कता समिति" गठित की और 'वीस अरोंदिस्मेंट्स की केन्द्रीय कमेटी' में डेलीगेट चुनी गईं जिसने ट्रेड यूनियन फेडरेशन तथा कार्ल मार्क्स के इंटरनेशनल की पेरिस शाखा के साथ मिलकर "...बुर्जुआ वर्ग के विशेषाधिकारों के खात्मे, एक शासक जाति के रूप में इसकी समाप्ति और राजनीतिक सत्ता मजदूरों को सौंपे जाने" की मांग उठाई थी।

कम्यून के दौरान मिशेल चारों तरफ दिखाई देती थीं। कभी वह स्त्रियों को नर्सों और योद्धाओं के रूप में संगठित करती नजर आतीं, कभी राजनीतिक बैठकों में भाषण करती तो कभी सैनिक लड़ाइयों की अग्रिम पंक्ति में मोर्चा लेती दिखतीं।

कम्यून की घोषणा के बाद लुइस मिशेल वर्साई जाकर प्रतिक्रियावादी सरकार के नेता थियेर को खत्म कर देना चाहती थीं। इसे नामंजूर करने के पीछे एक तर्क यह दिया गया कि ऐसा कर पाना व्यावहारिक नहीं था। लुइस भेष बदलकर दुश्मन सेनाओं के बीच से होती हुई वर्साई पहुंच गईं, सैनिकों के बीच राजनीतिक प्रचार किया, अपना वर्साई पहुंचना साबित करने के लिए वहां के कुछ अखबार खरीदे और सुरक्षित लौट आईं। एक बार जब घेरेबन्दी से भयभीत हो कम्यून का एक पदाधिकारी क्लैमार्त स्टेशन को दुश्मन के सुपुर्द कर देना चाहता था, तो लुइस मिशेल जलती मोमबत्ती लेकर गोला-बारूद से भरे कमरे के दरवाजे पर बैठ गईं और धमकी दी कि यदि उसने समर्पण किया तो वह पूरे स्टेशन को उड़ा देंगी।

कम्यून के अन्तिम सप्ताह में वह मॉतमार्त्र की कब्रगाह के बैरिकेड पर तबतक लड़ती रहीं जब तक 50 में से सिर्फ 15 योद्धा बचे रह गये।

मॉतमार्त्रे को बचाने की असफल कोशिश के बाद मिशेल बचे हुए साथियों को लेकर दूसरे बैरिकेड पर आ गईं और वहां भी दुश्मन सैनिकों का कब्जा हो जाने पर वह भेस बदलकर अपनी बूढ़ी मां को देखने घर पहुंचीं पर तबतक वर्साई पुलिस ने लुइस के बदले उनकी मां को गिरफ्तार कर लिया था। लुइस ने अपनी मां की रिहाई के बदले खुद को गिरफ्तार करा दिया।

उनपर मुकदमा चलाकर दूसरे कम्युनार्डों के साथ उन्हें आस्ट्रेलिया के पास फ्रांसीसी उपनिवेश न्यू कैलिडोनिया के टापू पर निर्वासित कर दिया गया। 1878 में जब वहां पालिनेशियाई लोगों की बगावत फूट पड़ीं तो कुछ कम्युनार्डों ने उसे दबाने में फ्रांसीसी सेना का साथ दिया। लेकिन सच्ची अन्तरराष्ट्रीयतावादी लुइस मिशेल ने पालिनेशियाई मूल निवासियों का पक्ष लिया और गुप्त रूप से उनकी मदद करती रहीं।

अपने संस्मरणों में मिशेल ने लिखा है : *कनक लोगों (पालिनेशियाई मूल निवासी) के दिलों में मुक्ति और रोटी की वही आशा थी। मुक्ति और सम्मान की चाह में उन्होंने 1878 में विद्रोह कर दिया। मेरे दूसरे कामरेड उस शिद्दत से इसका समर्थन नहीं करते थे जिस तरह मैं करती थी।... कनक लोग उसी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे जो हम कम्यून से लाना चाहते थे। एक रात मुझे अपने लाल स्कार्फ को दो टुकड़ों में बांटना पड़ा जिसे मैं हर तलाशी से छुपाकर बचाती आई थी। गोरों के विरुद्ध लड़ने के लिए विद्रोहियों से मिलने जा रहे दो कनक मुझसे विदा लेने आये थे।*

वे तूफानी समुद्र में उतर गये। हो सकता है वे खाड़ी पार ही नहीं कर पाये हों, या शायद लड़ते हुए मारे गये हों। मैंने उन्हें फिर नहीं देखा।

लेकिन कम्यून का लाल स्कार्फ और उसके साथ मुक्ति और समानता के कम्यून के विचार जीवित रहे और हजारों मील का सफर करके दुनिया के दूसरे छोर पर पहुंच गये।

पकड़े गये कनक विद्रोहियों को गुलामों के रूप में बेच दिया गया था जिनमें से कुछ खेतों पर काम करने के लिए मेक्सिको ले जाये गये। मेक्सिको के लेखक **अंतोनियो गार्सिया डि लियोन** की पुस्तक *रेजिस्टेंसिया यूटोपिया* इस अद्‌भुत कहानी के आगे के सूत्र ढूंढ़ती है :

मेक्सिको में 1888 में बस गई हेलेन सार्जेंट नामक अमेरिकी महिला ने अपनी डायरी में लिखा : ...अपने ''आदिम कृषि कम्युनिज्म'' और चियापास के (रेड) इण्डियन्स से मिलते-जुलते ऐतिहासिक अनुभवों के साथ कनक लोग पेरिस कम्यून की धुंधली स्मृतियां भी लाये थे। यह एक ऐसी विचित्र घटना थी जिसे विश्व पूंजीवाद के बर्बर विस्तार के सन्दर्भों में ही समझा जा सकता है। पेरिस कम्यून के ये स्मृति चिन्ह सोनोकुस्को (दक्षिण चियापास का क्षेत्र) में अराजकतावादी आन्दोलन और सामाजिक संघर्ष का यूटोपियाई प्रतीक बन गये। कनक विद्रोह के समय न्यू कैलिडोनिया फ्रांसीसियों के कब्जे में था जहां सजायाफ्ता लोगों को निर्वासित कर दिया जाता था। बंदी कम्युनार्डों की पहली टोली सितम्बर 1872 में वहां पहुंची थी। छह वर्ष बाद जब वहां के मूल निवासियों ने विद्रोह कर दिया तो कुछ निर्वासितों ने मूल निवासियों के आक्रोश का दमन करने में मदद की। लेकिन बहुतों ने, जिनमें अविस्मरणीय लुइस मिशेल भी थीं, विद्रोहियों का पक्ष लिया। कनक लोगों के ''कम्यून'' की हार के पहले मिशेल ने उन्हें ''पेरिस कम्यून का लाल झण्डा'' थमाया था। कुचल दिये जाने के बाद जब उन्हें गुलामों के रूप में बेचा गया तो वे उस झण्डे को पहने हुए थे। जब उन्हें प्रशांत महासागर पारकर दक्षिण अमेरिका के तट पर उतार गया तो वे उस झण्डे को और इसके साथ जुड़ी कम्यून की स्मृतियों और मुक्ति के स्वप्नों को भी ले आये। सोनोकुस्को में यह बीज फिर अंखुवाया और लाल कमरबन्द चामुला मूल निवासियों की लड़ाई का अंग बन गया। ●

('रिवोल्यूशनरी वर्कर में प्रकाशित लेख के आधार पर प्रस्तुत)

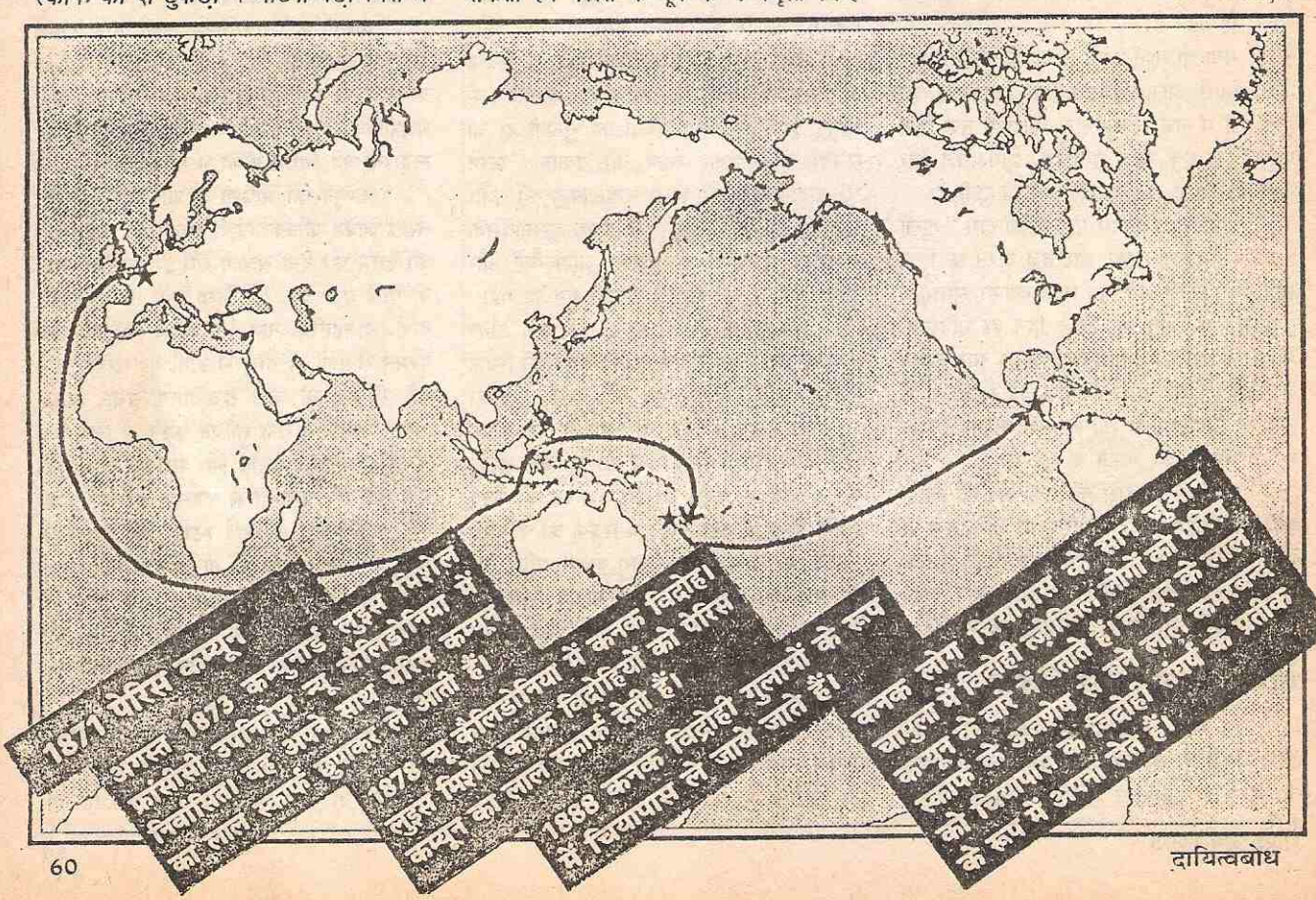

अध्याय 14

समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध कायम करो

समाजवादी उत्पादन में लोगों की स्थिति और उनके आपसी सम्बन्ध

उत्पादन में लोगों की स्थिति और उनके बीच कायम आपसी सम्बन्ध उत्पादन सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण संघटक होता है। समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना के बाद उत्पादन में लोगों के बीच ऐसे आपसी सम्बन्ध कायम करना बहुत महत्वपूर्ण होता है जो स्वामित्व के इस स्वरूप के अनुकूल हों। यदि उत्पादन सम्बन्धों की इस बीच की कड़ी पर ठीक से पकड़ रखी जाये और इसे निरंतर बेहतर बनाया जाये तो समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली और वितरण के इसके सम्बन्ध उत्तरोत्तर सुदृढ़ और विकसित होते रहेंगे।

उत्पादन में लोगों की स्थिति और उनके आपसी सम्बन्धों में मूलभूत परिवर्तन हो चुका है

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली समाजवादी आपसी सम्बन्धों की स्थापना की पूर्वशर्त है

इतिहास में, उत्पादन में लोगों की स्थिति और उनके आपसी सम्बन्ध हमेशा ही उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की प्रणाली से निर्धारित होते रहे हैं। दास स्वामित्व की प्रणाली दास स्वामी और उसके दासों के बीच के सम्बन्ध का निर्धारण करती थी। सामन्ती भूस्वामियों के स्वामित्व की प्रणाली भूस्वामी और किसान के बीच का सम्बन्ध निर्धारित करती थी। पूंजीवादी स्वामित्व की प्रणाली पूंजीपति और मजदूर के बीच सम्बन्ध का निर्धारण करती है। दास और सामन्ती समाजों में उत्पादन में लोगों के आपसी सम्बन्ध नग्न रूप से असमान सम्बन्ध होते हैं; शोषक और शोषित के, उत्पीड़क और उत्पीड़ित के सम्बन्ध होते हैं, यह बिलकुल स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन पूंजीवादी समाज में पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच शोषक और शोषित होने के, शासक और शासित होने के सम्बन्धों पर समानता के मिथ्या रूप का पर्दा पड़ा होता है। इसके अलावा, प्रायः इन सम्बन्धों में वस्तुएं शामिल होती हैं और ये वस्तुओं के बीच सम्बन्धों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। लम्बे समय तक बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों ने लोगों के बीच वर्ग शत्रुता की सच्चाई पर पर्दा डालने के प्रयास में वस्तुओं के बीच सम्बन्धों के बारे में ग्रंथ लिखे हैं और तरह-तरह के सिद्धान्त गढ़े हैं। "जहां बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों ने वस्तुओं के बीच सम्बन्ध देखा (एक वस्तु (माल) के बदले दूसरी वस्तु का विनिमय), वहां मार्क्स ने *लोगों के बीच के सम्बन्ध* को उजागर किया।"[1] "अर्थशास्त्र का नाता वस्तुओं से नहीं बल्कि लोगों के बीच, और अन्ततः वर्गों के बीच के सम्बन्धों से होता है।"[2]

समाजवादी उत्पादन में लोगों के आपसी सम्बन्ध तभी कायम होते हैं जब सर्वहारा वर्ग और व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय बुर्जुआ राज्य मशीनरी को बलपूर्वक उखाड़ फेंककर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व तथा उत्पादन के साधनों के समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली स्थापित करते हैं।

पुराने समाज में शासक और शासित के बीच का वह सम्बन्ध समाजवादी समाज में उलट दिया जाता है जिसमें एक ओर व्यापक मजदूर-किसान आबादी तथा दूसरी ओर बुर्जुआ वर्ग, भूस्वामी और धनी किसान होते हैं। इस परिवर्तन की पूर्वशर्त यह होती है कि उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व की प्रणाली समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली में रूपान्तरित हो जाये। समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली एक बलात् आर्थिक उपाय है। इस प्रणाली के तहत, शोषक वर्ग को मेहनतकशों का शोषण करने के साधनों से वंचित कर दिया जाता है और उसे सर्वहारा तथा मेहनतकश जनसमुदाय के हक में रूपान्तरित होने के लिए बाध्य किया जाता है। दूसरी ओर समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना के साथ, पुराने समाज में गुलाम रहे सर्वहारा और मेहनतकश लोग, नये समाज के स्वामी बन जाते हैं। इसके साथ ही, सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में शासक की स्थिति में आ जाती है जबकि बुर्जुआ और सभी शोषक वर्गों की स्थिति शासित की हो जाते है। इसी आधार पर समाजवादी आपसी सम्बन्ध कायम होते हैं।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली मेहनतकश लोगों को सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में उत्पीड़ित और शासित की स्थिति से उठकर शासकों की स्थिति में आने के लायक बनाती है। हजारों वर्ष पूर्व दास व्यवस्था के आविर्भाव के बाद से उत्पादन में लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों में आया यह सबसे बड़ा परिवर्तन है। मजदूर सामाजिक उत्पादन के स्वामी बन जाते हैं, इस पहलू से आपसी सामाजिक सम्बन्धों में एक कम्युनिस्ट तत्व तो निहित होता है, लेकिन समाजवादी स्वामित्व और वितरण के समाजवादी सम्बन्धों की ही तरह लोगों के बीच समाजवादी सम्बन्ध भी अभी पुराने समाज की परम्पराओं और जन्मचिन्हों से मुक्त नहीं होते हैं। मेहनतकश लोगों के बीच भी, बुर्जुआ अधिकार—यानी सतह पर समानता पर वास्तविकता में असमानता—अब भी गम्भीर सीमा तक मौजूद रहता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि समाजवादी सामाजिक उत्पादन में, हालांकि सभी मेहनतकश लोग स्वामी होने की स्थिति में होते हैं, पर फिर भी महत्वपूर्ण विभेद मौजूद रहते हैं : मजदूर और किसान के बीच भौतिक/सांस्कृतिक/जीवनस्तर पर और कार्यदशाओं में अन्तर मौजूद रहते हैं और मेहनतकश लोगों में अब भी मानसिक व शारीरिक श्रम के बीच श्रम विभाजन रहता है। आम तौर पर, मानसिक श्रम करने वाले को शारीरिक श्रमिक की तुलना में बेहतर कार्यदशाएं और जीवनस्तर उपलब्ध होते हैं। इसके अलावा, उद्योग व कृषि के बीच तथा शहर व देहात के बीच आर्थिक सम्बन्धों को अब भी माल विनिमय के समर्थन की दरकार होती है, जबकि राजकीय उद्यमों के बीच सहकार के सम्बन्ध अब भी समान विनिमय के आधार पर चलते हैं। ये सभी उत्पादन और विनिमय के क्षेत्र में बुर्जुआ अधिकार

की अभिव्यक्तियां हैं और इनकी जड़ तीन मुख्य विभेदों * तथा उनके साथ जुड़े पुराने सामाजिक श्रम विभाजन में हैं।

आपसी सम्बन्धों के सन्दर्भ में बुर्जुआ अधिकार पर रोक और इसके विरोध के बीच संघर्ष समाजवाद के दौर में दो वर्गों, दो रास्तों तथा दो लाइनों के बीच संघर्ष का एक महत्वपूर्ण घटक है। समाजवाद की पूरी ऐतिहासिक अवधि में सर्वहारा वर्ग और व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय समाजवादी उत्पादन में अपनी शासक स्थिति की हिफाजत करने और उसे सुदृढ़ बनाने तथा बुर्जुआ अधिकारों को प्रतिबंधित करने की जीतोड़ कोशिश करेंगे, ताकि समाजवादी आपसी सम्बन्धों को सुदृढ़ एवं सम्पूर्ण बनाया जा सके। बुर्जुआ वर्ग और सभी शोषक वर्ग मेहनतकश जनता पर प्रभुत्व की अपनी अतीत की स्थिति को, उन ''पुराने अच्छे दिनों'' को कभी भूल नहीं सकते जब वे बिना काम किये फल पाते थे। वे अपने को शासित तथा सुधारे जाने की स्थिति से आजाद करने की कोशिश करते हैं तथा बुर्जुआ अधिकारों का विस्तार करने व पूंजीवादी आपसी सम्बन्धों को फिर से स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। लिन पियाओ ने कनफ्यूशियस के इस बेहद प्रतिक्रियावादी राजनीतिक प्रस्ताव का समर्थन किया कि ''लुप्त राज्यों को पुनर्जीवित करो, (समाज में) अपना स्थान गंवा चुके परिवारों को पुनर्स्थापित करो और पृष्ठभूमि में चले गये लोगों को फिर से पदों पर बैठाओ।'' यह सभी हारे हुए शोषक वर्गों को बहाल करने, समाज के नये स्वामियों की स्थिति से मेहनतकश जनता को हटा देने और पूंजीवादी आपसी सम्बन्धों को पुनर्स्थापित करने का एक षड्यंत्र था। इसलिए, समाजवादी आपसी सम्बन्धों को सुदृढ़ और विकसित करने की प्रक्रिया अपरिहार्यतः सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच संघर्ष की प्रक्रिया होती है।

समाजवादी आपसी सम्बन्धों पर अब भी वर्ग का ठप्पा होता है

वर्ग समाज में, लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध अन्ततः वर्गों के बीच सम्बन्धों के रूप में मौजूद होते हैं। फिर समाजवादी उत्पादन में लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध वर्ग सम्बन्धों के रूप में कैसे अभिव्यक्त होते हैं?

समाजवादी उत्पादन में वर्ग सम्बन्धों को बेहतर ढंग से समझने के लिए यह जरूरी है कि अर्द्ध सामन्ती और अर्द्ध औपनिवेशिक चीन में वर्ग सम्बन्धों पर एक नजर डाल ली जाये। पुराने चीन के आर्थिक मूलाधार ने इन वर्गों को जन्म दिया : सर्वहारा, किसान, शहरी निम्नमध्य वर्ग, राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग, नौकरशाह पूंजीपति वर्ग और भूस्वामी वर्ग। उस समय इन वर्गों की स्थिति और उनके अन्तरसम्बन्धों की निम्नलिखित अभिलाक्षणिकताएं थीं। उत्पादन के प्रमुख साधनों और प्रतिक्रियावादी राज्य मशीनरी को नियंत्रित करने वाले भूस्वामी और नौकरशाह पूंजीपति वर्ग, साम्राज्यवाद से सांठ-गांठ करके सामाजिक उत्पादन में प्रभुत्वशाली स्थिति पर काबिज थे। वे सर्वहारा और किसानों का तथा शहरी निम्नमध्य वर्ग का बुरी तरह शोषण-उत्पीड़न करते थे। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के पास भी भारी मात्रा में उत्पादन के साधन थे। एक ओर, यह वर्ग समग्र उत्पादन प्रक्रिया में साम्राज्यवाद, भूस्वामियों और नौकरशाह पूंजीपति वर्ग के साथ जुड़ा हुआ था और सर्वहारा तथा मेहनतकश जनता के शोषण में हिस्सा बंटाता था। दूसरी ओर, यह भूस्वामियों और नौकरशाह पूंजीपतियों से घिरा और जकड़ा हुआ भी था। सर्वहारा वर्ग और गरीब किसानों की व्यापक आबादी सामाजिक उत्पादन में असहाय स्थिति में थे। साम्राज्यवादियों, सामन्ती शक्तियों और पूंजीपति वर्ग के हाथों उनका तिहरा शोषण होता था।

''पुरानी सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंककर एक नयी व्यवस्था, समाजवाद की व्यवस्था स्थापित करना, एक महान संघर्ष है, सामाजिक व्यवस्था में और एक-दूसरे से लोगों के सम्बन्धों में एक महान परिवर्तन है।''[3] जब चीन ने कृषि, दस्तकारी उद्योग और पूंजीवादी उद्योग व वाणिज्य के समाजवादी रूपान्तरण का काम बुनियादी तौर पर पूरा करते हुए समाजवादी क्रान्ति की ऐतिहासिक अवधि में कदम रखा और जैसे-जैसे उत्पादन के साधनों का समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व एकमात्र आर्थिक आधार बनता गया, ''देश भर में वर्ग सम्बन्धों में परिवर्तन होने लगा।''[4] भूस्वामी तथा नौकरशाह पूंजीपति वर्ग उखाड़ फेंके गये थे तथा अब वे शासित और सामाजिक उत्पादन के द्वारा रूपान्तरित होने की स्थिति में थे। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के स्वामित्व वाले उत्पादन के साधन सर्वहारा वर्ग तथा समग्रता में मेहनतकश जनसमुदाय के हाथों में आ चुके थे। उद्यमों में अपनी नियंत्रणकारी स्थिति गवां देने के बाद राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग को मजदूर वर्ग के द्वारा शिक्षित और रूपान्तरित होने को स्वीकारना था। किसान (जिनमें निजी दस्तकार भी शामिल थे) निजी उत्पादकों से सामूहिक श्रमिकों में रूपान्तरित हो चुके थे और मजदूर वर्ग के साथ, समाजवादी अर्थव्यवस्था के स्वामी बन गये थे। शहरी निम्न मध्यवर्ग समाजवादी रूपान्तरण की प्रक्रिया के जरिए समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों में आत्मसात हो चुका था। मजदूर वर्ग देश का नेतृत्वकारी वर्ग बन गया था जो समाजवादी अर्थव्यवस्था की प्राणशक्ति को नियोंत्रित करता था और समूची सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में नेतृत्वकारी स्थिति में था। अर्द्धसामन्ती-अर्द्ध औपनिवेशिक समाज के पुराने वर्ग अब भी मौजूद थे, लेकिन इन वर्गों के बीच के सम्बन्ध बुनियादी तौर पर बदल चुके थे।

खुश्चेव और ब्रेझनेव से लेकर ल्यू शाओ-ची और लिन पियाओ व उनके साथियों तक के सभी संशोधनवादी यह सिद्धान्त पेश करते हैं कि जब समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व एकमात्र आर्थिक आधार बन जाता है, तब सभी शोषक वर्ग गायब हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, उत्पादन सम्बन्ध, जिनमें लोगों के बीच सम्बन्ध भी शामिल हैं, अपना वर्ग चरित्र खो देते हैं और लोगों के बीच के सम्बन्ध तथाकथित ''कामरेडों, दोस्तों और बंधुओं'' के बीच आपसी सम्बन्धों में बदल जाते हैं। यह भ्रान्ति मार्क्सवाद के ठीक उलट है और समाजवादी समाज के यथार्थ से कतई मेल नहीं खाती।

समाजवादी समाज में, हालांकि शोषक वर्ग उत्पादन के साधन गवां देता है, पर अब भी वह एक वर्ग के रूप में मौजूद रहता है। उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का समाजवादी रूपान्तरण मूलतः पूरा हो चुकने के बाद, वर्गों की मौजूदगी लोगों के बीच समाजवादी रूपान्तरण से पहले रहे आर्थिक सम्बन्धों तथा समाजवादी एवं पूंजीवादी रास्तों के बीच संघर्ष में उनकी राजनीतिक स्थिति से जुड़ी होती है। इसके अलावा, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि तीन बड़े विभेदों की निरन्तर मौजूदगी तथा पूंजीवाद को पोषित और नये बुर्जुआ तत्वों को पैदा करने वाली जमीन यानी बुर्जुआ अधिकार की निरन्तर मौजूदगी का अर्थ होता है कि वर्ग लम्बे समय तक मौजूद रहेंगे। तथ्य तो यह है कि भूमिसुधार और उत्पादन के साधनों के समाजवादी रूपान्तरण के मूलतः पूरा हो चुकने के बाद भी न केवल भूस्वामी और पूंजीपति वर्ग मौजूद रहते हैं, बल्कि मेहनतकश वर्गों के बीच से नये बुर्जुआ तत्व लगातार पैदा होते रहते हैं। लेनिन ने एक बार बताया था : ''वर्गों को पूरी तरह खत्म करने के लिए शोषकों, भूस्वामियों व पूंजीपतियों को उखाड़ फेंकना काफी नहीं है, स्वामित्व के उनके अधिकार को खत्म करना काफी नहीं है, उत्पादन के साधनों के *समस्त* निजी स्वामित्व को खत्म करना जरूरी है, शहर और देहात के बीच भेद तथा शारीरिक श्रमिक और मानसिक श्रमिक के बीच भेद को खत्म करना जरूरी है। इसके लिए काफी लम्बी अवधि की आवश्यकता होगी।''[5]

हालांकि कुछ लोग यह स्वीकार करते हैं कि समाजवादी समाज में शोषक वर्ग मौजूद रहते हैं, पर वे यह मानने से इंकार करते हैं कि ये वर्ग समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों के भीतर ही जीवित रहते हैं। शोषक वर्गों को उखाड़ फेंकने के बाद सर्वहारा वर्ग के लिए यह जरूरी होता है कि इन वर्गों के सदस्यों की बहुसंख्या को कदम-ब-कदम आत्मनिर्भर श्रमिकों में रूपान्तरित

* तीन मुख्य विभेदों का अर्थ उद्योग व कृषि, शहर व देहात तथा मानसिक व शारीरिक श्रम के बीच के विभेद से है।

किया जाये। ऐसा होने के लिए, उन्हें हर चीज से अलग-थलग, किसी निर्वात में—'सील' कर देना असम्भव है। यह जरूरी है कि उन्हें समाजवादी राज्य तथा सामूहिक उद्यमों में काम में लगाया जाये, ताकि वे सर्वहारा और गरीब तथा निम्न मध्यवर्गीय किसानों से निर्देशन पा सकें और खुद को रूपान्तरित कर सकें। ये सम्बन्ध, जिनमें सर्वहारा वर्ग शोषक वर्गों के सदस्यों पर शासन करता और उन्हें रूपान्तरित करता है, समाजवादी समाज में लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों की मूल अन्तर्वस्तु का एक अनिवार्य अंग होते हैं। यह सोचना कि समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध खुद को ऐसे सम्बन्धों के रूप में प्रकट नहीं करते जिनमें मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय शोषक वर्गों का शासित और रूपान्तरित करते हैं, इस संशोधनवादी निष्कर्ष तक ले जायेगा कि समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध वर्ग मुक्त होते हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि चूंकि हम सब श्रम के द्वारा आजीविका कमाते हैं, इसलिए सभी बराबर हैं, और इसलिए, अब वर्गों का अस्तित्व नहीं रह गया है। इस गलत अवधारणा का समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की वर्ग प्रकृति के सैद्धान्तिक नकार से निकट सम्बन्ध है।

चीन की परिस्थितियों में, दो शोषक वर्ग और दो मेहनतकश वर्ग मौजूद हैं। दो शोषक वर्ग हैं भूस्वामी और दलाल पूंजीपति वर्ग के अवशेष तथा बुर्जुआ वर्ग और उससे सम्बद्ध बुद्धिजीवी। दो मेहनतकश वर्ग हैं मजदूर वर्ग और सामूहिक किसान तथा उनसे सम्बद्ध मेहनतकश बुद्धिजीवी। समाजवादी उत्पादन में आपसी सम्बन्ध मुख्यत: इन्हीं चार वर्गों के बीच के तथा इनके भीतर के सम्बन्ध होते हैं। इन सभी चार वर्गों के बीच के सम्बन्ध समान महत्व के नहीं होते। समाजवाद की पूरी ऐतिहासिक अवधि के दौरान मुख्य अन्तरविरोध सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच रहता है। शासक सर्वहारा और अधीनस्थ पूंजीपति वर्ग के बीच का सम्बन्ध समाजवादी समाज का बुनियादी वर्ग सम्बन्ध होता है। उत्पादन में लोगों के आपसी सम्बन्ध अपरिहार्यत: इसी सम्बन्ध द्वारा नियंत्रित, नियमित और प्रभावित होते हैं। आधुनिक संशोधनवादी उत्पादन में लोगों के आपसी सम्बन्धों के वर्ग चरित्र को नजरअंदाज करते हैं। वे जोर शोर से दावा करते हैं कि लोगों के आपसी सम्बन्ध "कामरेडों, मित्रों और बंधुओं" के बीच के ही सम्बन्ध हैं। लिन प्याओ गुट ने ऐसे नारे उछाले कि "दो संघर्ष सभी लोगों को शत्रुओं में बदल देते हैं, जबकि दो शान्ति सभी लोगों को मित्रों में बदल देती हैं" और "चार समुद्रों के बीच रहने वाले भाई-भाई हैं।" कैसी बेहूदा बात है! मार्क्सवाद-लेनिनवाद से परिचित हर व्यक्ति यह जानता है कि वर्ग समाज में "कामरेडों, मित्रों और बंधुओं" के बीच ऐसा कोई रिश्ता नहीं होता जो वर्ग मुक्त हो। पूंजीपति के लिए सर्वहारा की नफरत का जन्म पूंजीपति द्वारा सर्वहारा के शोषण-उत्पीड़न से हुआ। "दुनिया में बिना कारण या तर्क के प्यार या घृणा जैसी कोई चीज नहीं हैं।"[6] ये दो वर्ग कभी "मित्र" नहीं हो सकते, "भाई" होने का तो प्रश्न ही नहीं। क्या यह कल्पना भी की जा सकती है कि सर्वहारा और मेहनतकश जनसमुदाय अपना शासन छोड़ देंगे और पूंजीपति वर्ग के "भाई" और "मित्र" बन जायेंगे? ऐसी भ्रांतियां फैलाने के पीछे आधुनिक संशोधनवादियों की नीयत स्पष्ट है : बुर्जुआ वर्ग की हिफाजत करना, मेहनतकश जनता को धोखा देना और समाजवादी आपसी सम्बन्धों को पूंजीवादी आपसी सम्बन्धों में बदल देना ताकि पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की जा सके।[7]

समाजवादी उत्पादन में, दोनों शोषक वर्ग अब शासित होने की स्थिति में होते हैं। चीन की परिस्थितियों में, इन दोनों वर्गों के साथ अलग-अलग ढंग से व्यवहार किया जा रहा है। भूस्वामी और दलाल वर्गों तथा जनता के बीच के अन्तरविरोध को शत्रु तथा जनता के बीच अन्तरविरोध के रूप में देखा गया है, जबकि राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग और जनता के बीच के अन्तरविरोध को जनता के बीच के अन्तरविरोध के रूप में लिया गया है। इन दोनों शोषक वर्गों को रूपान्तरण स्वीकार करने के लिए अलग-अलग तरीकों से बाध्य किया गया है, लेकिन मजदूर और किसान के साथ उनके सम्बन्ध अब भी वर्ग विरोध पर ही आधारित हैं। समाजवादी उत्पादन में, प्रभुत्वशाली स्थिति पर काबिज मेहनतकश जनसमुदाय समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों में अग्रणी होते हैं। निरन्तर और दृढ़ संघर्ष के जरिए मजदूर वर्ग और निम्न मध्यम किसान धीरे-धीरे इन दोनों शोषक वर्गों की बहुसंख्या को श्रम द्वारा पुनर्शिक्षित करते हुए एक लम्बी अवधि के बाद इन्हें आत्मनिर्भर श्रमिकों में रूपान्तरित करने में सफल होंगे।

मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय को पुराने समाज में शोषण-उत्पीड़न के एक समान पीड़ादायी अनुभव से गुजरना पड़ा था। समाजवाद में, राज्य अथवा समूह के स्वामित्व वाले उत्पादन के साधनों का प्रयोग करके वे सब, अलग-अलग भूमिकाएं निभाते हुए, नये समाज के लिए काम करते हैं। वे शोषक वर्ग को सुधारने की साझा जिम्मेदारी मिलकर उठाते हैं और उनका लक्ष्य भी एक ही है — कम्युनिज्म के आदर्श के लिए लड़ना। इसलिए, उनके बुनियादी हित एक समान हैं। समाजवादी उत्पादन में मजदूर, किसान और स्वयं को इनसे जोड़ने वाले बुद्धिजीवियों के बीच के सम्बन्ध, तथा इन तीनों ग्रुपों के भीतर के सम्बन्ध समान बुनियादी हितों वाले क्रान्तिकारी कामरेडों के रोज-ब-रोज विकसित हो रहे सम्बन्ध होते हैं। यह एक बुनियादी नुक्ता है जो मेहनतकश जनता के बीच के सम्बन्धों की समाजवादी प्रकृति का निर्धारण करता है।

लेकिन क्या कोई ऐसा राज्य है जिसमें समाजवादी उत्पादन में मेहनतकश जनता के बीच सम्बन्धों में कोई मतभेद नहीं है और किसी किस्म का अन्तरविरोध नहीं है? नहीं! समाजवादी उत्पादन में न केवल मेहनतकश जनता के बीच अन्तरविरोध होते हैं, बल्कि ये अन्तरविरोध अपरिहार्यत: वर्ग अन्तरविरोधों की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं। ऐसा केवल मजदूर और किसान, शहर और देहात तथा मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम के बीच के अन्तरों की मौजूदगी के कारण नहीं होता, ऐसा इसलिए भी होता है कि दोनों मेहनतकश वर्ग, मजदूर और किसान, अब भी दो भिन्न-भिन्न प्रकार के समाजवादी स्वामित्व से आपस में जुड़े होते हैं। इसके अलावा, बुद्धिजीवियों और मजदूर-किसान जनता के बीच के अन्तर भी वर्ग विभेद की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं। साथ ही, सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच वर्ग संघर्ष भी अपरिहार्यत: मेहनतकश जनता के बीच प्रतिबिम्बित होता है। सही और गलत, क्रान्तिकारी और रूढ़िवादी तथा उन्नत और पिछड़े के सभी सवालों व मुद्दों पर वर्ग की मुहर होती है। वे सर्वहारा और पूंजीपति के बीच अन्तरविरोध से नियंत्रित, नियमित तथा प्रभावित होते हैं जो समाज का मुख्य अन्तरविरोध है। जनता के बीच के अन्तरविरोध, अलग-अलग ढंग से समाजवादी रास्ते तथा पूंजीवादी रास्ते के बीच के अन्तरविरोधों और संघर्षों को भी प्रतिबिम्बित करते हैं। इसलिए, अन्तत: मेहनतकश जनता के बीच आपसी सम्बन्ध वर्ग सम्बन्ध होते हैं।

आपसी सम्बन्धों की अत्यधिक सक्रिय भूमिका

उत्पादन में लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की प्रणाली पर आधारित होते हैं। लेकिन आपसी सम्बन्ध, उत्पादन सम्बन्धों के दो अन्य पहलुओं, यानी, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के स्वरूप और इससे मेल खाते वितरण के सम्बन्धों की बाबत अत्यन्त सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

उत्पादन सम्बन्धों के दो अन्य पहलुओं के मामले में लोगों के आपसी सम्बन्धों की भूमिका समाजवादी समाज के आविर्भाव के पहले की ऐतिहासिक अवधि में काफी स्पष्ट थी। उदाहरण के लिए, पूंजीवादी स्वामित्व प्रणाली और इसके वितरण सम्बन्धों को स्थापित एवं सुदृढ़ करने के लिए पूंजीपति वर्ग को पूंजीवादी सिद्धान्तों के आधार पर लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध कायम करने पड़ते थे, यानी, ऐसे सम्बन्ध जिनमें पूंजीपति मजदूर पर शासन करता था। अमेरिकी दास प्रथा के पैरोकारों, जो यह दावा करते थे कि दास मालिकों द्वारा दासों के पर्यवेक्षण और प्रबंधन का काम उनके शोषण-उत्पीड़न को सही ठहराता था, के प्रतिक्रियावादी तर्कों का खंडन करते हुए मार्क्स ने

कहा था, "अब, दास की तरह, उजरती मजदूर का भी एक मालिक होगा जो उसे काम में लगायेगा और उस पर शासन करेगा।"[8] यदि पूंजीपतियों और उनके एजेण्टों के हाथों में मजदूर पर प्रभुत्व की पूर्ण शक्ति नहीं होगी और यदि वे मजदूर को अपनी मर्जी के मुताबिक काम करने के लिए बाध्य नहीं कर सकेंगे, तो पूंजीवादी शोषण होगा ही नहीं और वह पूंजीवादी स्वामित्व प्रणाली तथा पूंजीवादी वितरण सम्बन्ध स्थापित एवं सुदृढ़ नहीं होंगे जिसमें "श्रम करने वाला श्रम के फल नहीं पाता और फल पाने वाला श्रम नहीं करता है।" इसलिए, पूंजीपति वर्ग मजदूर की पूंजी के अधीनस्थ स्थिति को स्थापित एवं सुदृढ़ करने पर बहुत ध्यान देता है, ताकि पूंजीवादी स्वामित्व और वितरण को स्थापित एवं सुदृढ़ किया जा सके।

समाजवादी समाज में आपसी सम्बन्धों का रूपान्तरण उत्पादन सम्बन्धों के रूपान्तरण की महत्वपूर्ण कड़ी भी होता है। इस कड़ी को पकड़कर लगातार विकसित किया जाये तो समाजवादी स्वामित्व प्रणाली और समाजवादी वितरण सम्बन्धों को सुदृढ़ और सम्पूर्ण बनाने में तथा इसके परिणामस्वरूप सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रोत्साहित करने में इसका जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है।

राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वहारा अधिनायकत्व का ऐतिहासिक अनुभव यही बताता है कि समाजवादी व्यवस्था का आगे बढ़ना या पीछे हटना इस बात से नजदीकी तौर पर जुड़ा होता है कि लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध बदले जा सकते हैं या नहीं। सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत जब बुर्जुआ अधिकार पर अंकुश होगा और कम्युनिस्ट तत्वों को प्रोत्साहन मिलेगा जिससे धीरे-धीरे समाजवादी सिद्धान्तों के आधार पर लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध कायम करना सम्भव हो जायेगा, तभी मजदूरों की सक्रियता व सृजनशीलता को पूरी तरह विकसित किया जा सकेगा, उद्यमों की समाजवादी दिशा ज्यादा ठोस ढंग से सुनिश्चित की जा सकेगी, समाजवादी स्वामित्व प्रणाली और सुदृढ़ की जा सकेगी तथा वितरण के सम्बन्धों को और पूर्ण बनाया जा सकेगा। जब बुर्जुआ अधिकार को मजबूती और विस्तार दिया जायेगा, जिसके परिणामस्वरूप पूंजीवादी मुद्रा सम्बन्धों, पूंजीवादी श्रम सम्बन्धों तथा पूंजीवादी प्रतिस्पर्द्धा के सम्बन्धों को खुली छूट मिलेगी और बुर्जुआ तत्वों के लिए समाजवादी आपसी सम्बन्धों का उल्लंघन तथा इनमें तोड़-फोड़ मचाना सम्भव हो जायेगा, तो जनता की नेतृत्वकारी स्थिति खतरे में पड़ जायेगी और उनकी समाजवादी सक्रियता दब जायेगी। परिणामस्वरूप समाजवादी स्वामित्व और वितरण सम्बन्धों को नुकसान पहुंचेगा—यहां तक कि वे क्षरित होकर अपनी प्रकृति भी बदल सकते हैं।

उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व के आधार पर स्थापित और समाजवादी सिद्धान्तों से मेल खाते हुए आपसी सम्बन्ध किसी एक उद्यम तक सीमित नहीं होते। वे सभी उद्यमों, सभी आर्थिक क्षेत्रों, समस्त जनता के स्वामित्व की प्रणाली और सामूहिक स्वामित्व प्रणाली को आच्छादित करते हैं। लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध अन्तर उद्यम गतिविधियों में प्रकट होते हैं, जैसे उत्पादन में सहकार और उन्नत अनुभव एवं उन्नत तकनोलाजी का आदान-प्रदान आदि। उत्पादन में ऐसी आपसी कड़ियों तथा विनिमयों का विकास, जिसमें उद्यमों एवं सेक्टरों के बीच समन्वित नेतृत्व तथा नियोजन शामिल होता है, समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली की श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करता है। लेकिन समाजवादी उद्यमों के बीच सहकार प्रायः माल विनिमय के रूप में होता है और इसमें समान विनिमय के सिद्धान्त का पालन करना पड़ता है—इसी में बुर्जुआ अधिकार निहित होता है और पूंजीवाद को पैदा करने वाली जमीन तैयार होती है। सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत इस किस्म के बुर्जुआ अधिकार पर अंकुश लगाकर ही सर्वहारा वर्ग समाजवादी स्वामित्व के विकास और सुदृढ़ीकरण को प्रोत्साहित कर सकता है, विभिन्न आर्थिक सेक्टरों की शक्तियों को पूरी तरह गतिशील कर सकता है, उत्पादन की सभी सम्भावनाओं को उपयोग में ला सकता है और सामाजिक उत्पादक शक्तियों के तीव्र विकास को प्रोत्साहित कर सकता है।

आपसी सम्बन्धों में कदम-ब-कदम सुधार उत्पादन सम्बन्धों के सुदृढ़ीकरण तथा सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी ओर हमें पूरा ध्यान देना चाहिए। समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली की स्थापना के बाद, आपसी सम्बन्धों के प्रश्न को निरन्तर और कष्टसाध्य प्रयासों से हल किया जाना चाहिए।

समाजवादी आपसी सम्बन्धों को संघर्षों के दौरान सुदृढ़ एवं विकसित करो

उद्योग एवं कृषि के बीच परस्पर समर्थन एवं परस्पर प्रोत्साहन के सम्बन्ध विकसित करो

किसी एक उद्यम की दृष्टि के बजाय समग्र सामाजिक उत्पादन के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने पर आपसी सम्बन्ध प्रथमतः उद्योग एवं कृषि के बीच सम्बन्धों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। उद्योग और कृषि भौतिक उत्पादन के दो बुनियादी सेक्टर हैं। उद्योग में हावी, समस्त जनता का समाजवादी स्वामित्व तथा कृषि में हावी, मेहनतकश जनता का समाजवादी सामूहिक स्वामित्व दो प्रकार के समाजवादी स्वामित्व हैं। वर्ग सम्बन्धों के दृष्टिकोण से यह आर्थिक ढांचा मजदूर व किसान के बीच एक सम्बन्ध है। यह वर्ग सम्बन्ध मेहनतकश वर्ग और शोषक वर्ग के बीच सम्बन्ध से बुनियादी तौर पर अलग है। यह एक मजदूर-किसान संश्रय का सम्बन्ध है जिसमें दोनों के बुनियादी हित एक समान हैं और नेतृत्व मजदूर वर्ग के हाथों में है।

चीन की समाजवादी क्रान्ति में स्वामित्व के दायरे में बुनियादी जीत हासिल हो जाने के बाद माओ त्से-तुङ ने बताया था, "समाजवादी सिद्धान्तों के अनुरूप उत्पादन व विनिमय के सम्बन्ध हमारी अर्थव्यवस्था के विभिन्न विभागों में अब भी धीरे-धीरे स्थापित किये जा रहे हैं और इनके नये-नये, ज्यादा उपयुक्त रूप खोजे जा रहे हैं।"[9] विभिन्न आर्थिक सेक्टरों के बीच अन्तरसम्बन्ध प्रधानतः उद्योग एवं कृषि के बीच, और इसके परिणामस्वरूप, मजदूर एवं किसान के बीच अन्तरसम्बन्ध होते हैं। मजदूर और किसान दोनों उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं। मजदूर समस्त जनता के स्वामित्व के तहत उद्यमों में श्रम करता है। किसान सामूहिक स्वामित्व के तहत उद्यमों में श्रम करता है। सामाजिक उत्पादन को जारी रखने के लिए मजदूर व किसान को आपस में व्यापार करना होता है।

समाजवादी समाज में मजदूर व किसान समाजवादी निर्माण में लगी औद्योगिक सेना होते हैं। क्रान्तिकारी कामरेडों के रूप में उनका सम्बन्ध समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली पर आधारित परस्पर समर्थन और परस्पर प्रोत्साहन का सम्बन्ध होता है। उत्पादन और विनिमय प्रक्रियाओं में मजदूर विभिन्न कृषि मशीनों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों तथा देहात में दैनिक जीवन में उपयोग के लिए अनेक औद्योगिक उत्पादों का उत्पादन करता है जिससे कृषि उत्पादन का विकास तथा किसान की आजीविका में सुधार हो सके। किसान खाद्यान्न, कच्चे माल तथा विभिन्न कृषि एवं सहायक उत्पाद पैदा करते हैं। इसके अलावा किसान समुदाय औद्योगिक उत्पादन के विकास की जरूरतों के लिए श्रमशक्ति मुहैया कराता है, औद्योगिक उत्पादन की भौतिक आवश्यकताएं पूरी करता है और शहरी आबादी की आजीविका सुनिश्चित करने में मदद करता है। मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मजदूर एवं किसान के बीच आपसी समर्थन एवं आपसी प्रोत्साहन इन दोनों वर्गों के बुनियादी हितों के अनुरूप होता है। यह मजदूर-किसान संश्रय को सुदृढ़ करने तथा समाजवादी आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में एक शक्तिशाली बल होता है।

करों के भुगतान * के जरिए राज्य के वित्त संचय में सीधे योगदान के अतिरिक्त, दो प्रकार के समाजवादी स्वामित्व के तहत मजदूरों व किसानों के बीच विनिमय की गतिविधियां प्रधानतः औद्योगिक एवं कृषि उत्पादों के माल विनिमय के रूप में होती थीं। इसलिए, दोनों के बुनियादी हित समान होते हुए भी, औद्योगिक व कृषि उत्पादों के विनिमय में मात्रा, विविधता,

गुणवत्ता और दाम को लेकर कुछ अन्तरविरोध हो सकते हैं। साथ ही बेची जाने और किसान द्वारा खुद रखी जाने वाली कृषि उपज के अनुपात एवं किसान पर करों के बोझ को लेकर भी अन्तरविरोध उत्पन्न हो सकते हैं।

समाजवादी उत्पादन में मजदूर और किसान के बीच सम्बन्ध सर्वहारा एवं पूंजीपति वर्ग के बीच के प्रधान अन्तरविरोध से नियंत्रित, नियमित और प्रभावित होते हैं। समाजवादी सामूहिक अर्थव्यवस्था स्थापित, सुदृढ़ व विकसित करने में, माल विनिमय में बुर्जुआ अधिकार पर अंकुश लगाने में, मजदूर-किसान संश्रय को मजबूत बनाने में और सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ करने में मजदूर वर्ग को (कम्युनिस्ट पार्टी के जरिए) किसानों का नेतृत्व करना चाहिए। बुर्जुआ वर्ग हमेशा ही माल विनिमय में बुर्जुआ अधिकार को विस्तारित करने, किसान को पूंजीवादी रास्ते पर बहकाने, मजदूर-किसान संश्रय को कमजोर करने तथा सर्वहारा अधिनायकत्व को उखाड़ फेंकने की कड़ी कोशिश करता है। इसलिए समाजवादी उत्पादन में मजदूर-किसान सम्बन्धों को विकसित करने की प्रक्रिया अनिवार्यतः सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच संघर्ष की प्रक्रिया होती है। इसलिए, औद्योगिक एवं कृषि उत्पादों के विनिमय के मामले में हम केवल वस्तुओं के बीच सम्बन्धों को नहीं देख सकते। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि किसान समुदाय को अपने पक्ष में करने के लिए मजदूर और किसान के सम्बन्धों को देखने की और सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के संघर्ष को देखने की जरूरत है। सर्वहारा को किसान आबादी के बीच समाजवादी शिक्षा, संशोधनवाद की आलोचना तथा पूंजीवादी प्रवृत्तियों की आलोचना का काम अनवरत चलाना होगा और समाजवादी रास्ता अपनाने में उनका दृढ़तापूर्वक नेतृत्व करना होगा। साथ ही, सर्वहारा को इन दोनों बड़े सेक्टरों, यानी उद्योग और कृषि के बीच विनिमय गतिविधियों पर सख्ती से समाजवादी प्रबंधन लागू करना चाहिए। सर्वहारा को शहर और देहात की उन पूंजीवादी शक्तियों पर खास ध्यान देना चाहिए जो माल उत्पादन और मुद्रा विनिमय के रास्तों का इस्तेमाल गुपचुप समझौते करने, समाजवादी अर्थव्यवस्था में तोड़-फोड़ करने और मजदूर-किसान संश्रय को कमजोर करने के लिए कर रहे हैं। नये बुर्जुआ तत्वों और पूंजीवाद को विकसित करने के लिए बुर्जुआ अधिकार के इस्तेमाल की चाहत रखने वालों पर पार्टी की नीतियों के अनुरूप कड़ा प्रहार किया जाना चाहिए।

"लुङ-चियाङ शैली"* को बढ़ावा दो, समाजवादी सहकार के सम्बन्ध विकसित करो

समाजवादी उत्पादन में लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों का एक और पहलू उद्यमों के बीच, सेक्टरों के बीच तथा क्षेत्रों के बीच के सम्बन्धों में निहित होता है। ये सम्बन्ध मुख्यतः उद्यमों, सेक्टरों और इलाकों के बीच समाजवादी सहकार के सम्बन्धों में अभिव्यक्त होते हैं।

मार्क्स ने कहा है : "जब बहुत से मजदूर एक ही प्रक्रिया में या अलग-अलग, पर आपस में जुड़ी प्रक्रियाओं में साथ-साथ काम करते हैं तो कहा जाता है कि वे एक-दूसरे के साथ सहकार में काम कर रहे हैं।"[10] इस तरह के सहकार का चरित्र और क्षेत्र अलग-अलग उत्पादन सम्बन्धों के अनुसार बदलता रहता है।

पूंजीवादी निजी स्वामित्व के तहत पूंजीवादी उत्पादन में सहकार मुख्यतः किसी एक उद्यम या एकाधिकारी पूंजीवादी घराने के संकीर्ण दायरे में सिमटा रहता है। समूचे पूंजीवादी समाज के स्तर पर विभिन्न उत्पादन सेक्टरों तथा निजी मालिकाने के आधार पर बंटे विभिन्न उद्यमों के बीच सुव्यवस्थित सहकार विकसित करना असम्भव है। समझौतों के जरिए स्थापित किये गये कुछ सहकार-सम्बन्ध भी अत्यधिक अस्थिर होते हैं और प्रायः टूट जाते हैं।

उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व के तहत समाजवादी सहकार न केवल एक उद्यम के भीतर बल्कि पूरे समाज में विभिन्न उद्यमों, सेक्टरों और इलाकों के बीच—नियोजित और संगठित ढंग से लागू किया जा सकता है। "एक संयंत्र के काम करने में एक सौ संयंत्र सहयोग करते हैं। एक संयंत्र के उत्पादन में एक सौ संयंत्र उत्पादन प्रक्रिया में जुड़े होते हैं।" समाजवादी सहकार एक नयी उत्पादक शक्ति का सृजन करता है। ऐसा सहकार उद्यमों में "एक विशिष्टता और कई क्षमताओं" के विकास के अनुकूल है और इस तरह श्रम उत्पादकता को बढ़ाने में और मदद करता है। यह ऐसी उत्पादन या निर्माण परियोजनाओं को पूरा करने के लिए जनशक्ति तथा भौतिक एवं वित्तीय संसाधनों को संकेंद्रित करने के लिए अनुकूल है, जिन्हें एक उद्यम, एक सेक्टर या एक इलाका न तो हाथ में ले सकता था और न पूरा कर सकता था। यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की कमजोर कड़ियों पर विजय पाने के लिए छोटी अवधियों के लिए शक्ति संकेंद्रित करने के अनुकूल है, और इस तरह समग्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास को उत्प्रेरण देता है।

कम्युनिस्ट शैली को प्रोत्साहित करने के साथ ही, समाजवादी सिद्धान्तों का पालन करना भी जरूरी होता है। समाजवादी सहकार को विकसित करने में जिन सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए, वे इस प्रकार हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटकों के बीच बुनियादी हितों का कोई टकराव नहीं होता। समाजवादी सहकार का यह तकाजा होता है कि सर्वहारा राजनीति को कमान में रखा जाये। इसके लिए उद्यमों के बीच, सेक्टरों के बीच और इलाकों के बीच की चारदीवारियों को तोड़ डालने, पूरी स्थिति के प्रति सरोकार रखने, कठिनाइयों के बावजूद विकास करने और जनता के दूसरे हिस्सों का ख्याल रखने की दरकार होती है। समाजवादी सहकार का यह भी तकाजा होता है कि आपूर्ति समझौतों का सख्ती से पालन किया जाये, योजनागत लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सहयोगपूर्ण समन्वय कायम किया जाये और निर्धारित विविधता, विशिष्टताओं, गुणवत्ता, मात्रा तथा कार्यक्रम के अनुसार लक्ष्यों को पूरा करने के लिए प्रभावी कदम उठाये जायें। इन सहकार पूर्ण सम्बन्धों का परस्पर धोखाधड़ी, प्रतिस्पर्द्धा और पूंजीवादी विभागवाद पर आधारित पूंजीवादी आपसी सम्बन्धों से मूलभूत विरोध है। लेकिन, इन सम्बन्धों का आकार ग्रहण करना और कदम-ब-कदम विकसित करना केवल संघर्ष के जरिए सम्भव है। इसके दो बुनियादी कारण हैं। माल व्यवस्था के अस्तित्व के कारण उद्यमों, विभागों और इलाकों के बीच सहकार अनिवार्यतः मुद्रा विनिमय से बंधा होता है और समान विनिमय के सिद्धान्त के अनुसार ही हो सकता है। इसलिए, वस्तुगत तौर पर "मेरा और तुम्हारा" की चारदीवारी तो मौजूद रहती ही है। इसी से जुड़ा दूसरा कारण है कि विभागवाद, जो निजी मालिकाने की व्यवस्था का विचारधारात्मक प्रतिफलन है, अलग-अलग स्तर पर समाजवादी समाज में लम्बे समय तक बना रहेगा। समग्र पर ध्यान देने का अभाव और अन्य विभागों, इलाकों व लोगों के प्रति पूर्ण उदासीनता स्वार्थपूर्ण विभागवाद की अभिलाक्षणिकताएं हैं।"[11] इन दो कारणों के चलते निम्नलिखित गलत अवधारणाएं और कार्रवाइयां समाजवादी सहकारपूर्ण सम्बन्धों में बार-बार अपरिहार्यतः उभरती रहती हैं : राजनीतिक लेखा-जोखा की कीमत पर आर्थिक लेखा को तरजीह देना; समग्र हितों के बजाय आंशिक हितों पर ध्यान देना, यहां तक कि दूसरों की कीमत पर खुद को लाभ पहुंचाना; राज्य की एकीकृत आर्थिक योजना की अवहेलना करते हुए मनमाने फेर-बदल करना; आदि। समाजवादी सहकार लागू करने में इन समस्याओं का उभरना दो वर्गों, दो रास्तों और दो लाइनों के बीच संघर्ष का प्रतिबिम्बन है। समाजवादी सहकार को विकसित करने की प्रक्रिया बुर्जुआ प्रभावों, खासकर बुर्जुआ विभागवाद

---

* सामूहिक अर्थव्यवस्था में भूमि की औसत उपज पर लिया जाने वाला कृषि कर तथा राजकीय अर्थव्यवस्था में उद्यमों पर लागू औद्योगिक कर राजस्व के दो प्रमुख स्रोत थे। क्रान्तिकारी चीन में कोई व्यक्तिगत आयकर नहीं था।

** लुङ-चियाङ फूकिएन प्रांत में एक मॉडल ब्रिगेड था। बाढ़ की समस्या से जूझने के इसके सामूहिक प्रयासों को क्रान्तिकारी ऑपेरा 'लुङ-चियाङ का गीत" में दर्शाया गया था।

के विरुद्ध संघर्ष की प्रक्रिया है।

आनशान लोहा व इस्पात कम्पनी का चार्टर उद्यमों के बीच आपसी सम्बन्धों को चलाने का दिशासूचक है

(उद्योग, कृषि, संचार एवं यातायात, वाणिज्य और सभी उत्पादन एवं वितरण विभागों के) समाजवादी उद्यम मानवीय भौतिक उत्पादन एवं विनिमय की बुनियादी इकाइयां होते हैं। इन उद्यमों के भीतर उत्पादन में लोगों के बीच अनेक प्रकार के आपसी सम्बन्ध मौजूद होते हैं। मेहनतकश जनता की दृष्टि से आपसी सम्बन्ध मुख्यत: दो श्रेणियों में होते हैं : एक श्रेणी में नेतृत्व और जनता के बीच के सम्बन्ध होते हैं और दूसरी श्रेणी में एक ओर प्रबंधनकर्मियों और तकनीशियनों (मानसिक श्रमिकों) तथा दूसरी ओर मजदूरों व किसानों (शारीरिक श्रमिकों) के बीच के सम्बन्ध होते हैं। आपसी सम्बन्धों की इन दोनों श्रेणियों को सही ढंग से सम्हालने के लिए ''एक ऐसी राजनीतिक स्थिति'' का निर्माण करना जरूरी होता है ''जिसमें केन्द्रीयता व जनवाद दोनों हों, अनुशासन व स्वतंत्रता दोनों हों तथा इच्छा की स्वतंत्रता व मानसिक तनावमुक्तता एवं जीवन्तता दोनों हों।''[12] समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों को सुदृढ़ एवं विकसित करने तथा समाजवादी उद्यम प्रबंधन को सुधारने में यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। (उद्यमों में मजदूर-किसान मेहनतकश जनता और दोनों शोषक वर्गों के बीच के सम्बन्ध भी होते हैं। इन सम्बन्धों का पहले ही विश्लेषण किया जा चुका है।)

समाजवादी उद्यम मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता का उद्यम होता है। मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता अपने प्रतिनिधियों के जरिए उद्यम का नेतृत्व करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। इस तरह नेतृत्व और जनता के बीच सम्बन्धों का प्रश्न उठ खड़ा होता है। हालांकि नेतृत्वकर्मी और आम आबादी उद्यम में अलग-अलग काम सम्हालते हैं, लेकिन उत्पादन के साधनों के समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व का तकाजा है कि वे ''एक ही खंदक में कंधे से कंधे मिलाकर लड़ने वाले कामरेडों'' की तरह हों जो उद्यम के सही ढंग से प्रबंध की बड़ी जिम्मेदारी को मिलकर निभाते हों और साझा क्रान्तिकारी लक्ष्य के लिए मेहनत करते हों। शंघाई बंदरगाह के मजदूरों ने इसे बड़ी खूबसूरती से व्यक्त किया : ''हालांकि क्रान्ति में हमारे काम अलग-अलग हैं पर हमारी सोच की लय एक ही होनी चाहिए।'' ये शब्द समाजवादी उद्यमों में नेतृत्व और जनता के बीच सम्बन्धों को बेहतर बनाने का दिशानिर्देश करते हैं।

उद्यमों में कुछ लोगों को विभिन्न प्रबन्धकीय एवं तकनीकी कामों का प्रभारी बनाया जाना जरूरी होता है। और इस तरह प्रबन्धकीय कर्मियों एवं तकनीशियनों तथा मजदूर-किसान मेहनतकश जनता के बीच सम्बन्धों का सवाल उठ खड़ा होता है। चीन में प्रबन्धकीय कर्मियों व तकनीशियनों की दो श्रेणियां हैं। एक श्रेणी में पुराने समाज से बचे रहे प्रबन्धकीय कर्मी व तकनीशियन हैं। समाजवादी समाज के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख रखने वाले कुछ प्रतिक्रियावादी तत्वों के अपवादों को छोड़ दिया जाये तो इनमें से ज्यादातर अपने देश से व हमारे लोक गणराज्य से प्यार करते है। और जनता तथा समाजवादी राज्य की सेवा करने के लिए तैयार हैं। दूसरी श्रेणी में वे बुद्धिजीवी हैं जो संघर्ष के जरिए और समाजवादी क्रान्ति तथा समाजवादी निर्माण के विकास के जरिए सर्वहारा द्वारा शिक्षित हुए हैं। हालांकि इनमें से कुछ की सोच शिक्षा में प्रतिक्रियावादी लाइन के द्वारा दूषित हो सकती है और उनके विश्व दृष्टिकोण को अब भी लगातार रूपान्तरित करने की आवश्यकता है, पर इनकी भारी बहुसंख्या मजदूर-किसान जनता के साथ एकीकृत होने और समाजवाद तथा कम्युनिज्म के लक्ष्य की दिशा में योगदान करने की इच्छा रखती है। इसलिए समाजवादी समाज में, नेतृत्व तथा जनता के बीच और प्रबन्धकीय कर्मियों व तकनीशियनों तथा मजदूर-किसान जनता के बीच के सम्बन्ध साझा हितों वाले क्रान्तिकारी कामरेडों के बीच के रोज-ब-रोज विकसित होने वाले सम्बन्ध भी होते हैं।

लेकिन समाजवादी उद्यमों में नेतृत्व तथा जनता के बीच और प्रबन्धकीय कर्मियों व तकनीशियनों तथा प्रत्यक्ष उत्पादकों के बीच श्रम विभाजन अब भी पुराने समाज के श्रम विभाजन को प्रतिबिम्बित करता है और मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच अब भी मौजूद विभेदों को अभिव्यक्त करता है। उत्पादन के साधनों की सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली की स्थापना के बाद सभी श्रमिक उद्यमों के स्वामी बन जाते हैं। लेकिन नेतृत्व एवं प्रबन्धन के विशिष्टीकृत काम करने वाले मुख्यत: मानसिक श्रमिक होते हैं जो उत्पादन से कटे होते है, जबकि आम आबादी मुख्यत: शारीरिक श्रम करने वालों की होती है। लेनिन ने मानसिक एवं शारीरिक श्रम के विभेद को ''आधुनिक *सामाजिक* असमानता के प्रमुख स्रोतों में से एक'' बताया था।[13] हालांकि समाजवादी समाज मानसिक व शारीरिक श्रम के बीच शत्रुता को खत्म कर देता है, लेकिन यह अब भी मानसिक एवं शारीरिक श्रम के मूल विभेदों को पैदा करता रहता है और लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों में अपरिहार्यत: बुर्जुआ अधिकार शामिल रहता है।

इन परिस्थितियों में, यदि उत्पादन को संगठित और निर्देशित करने के लिए जिम्मेदार नेतृत्वकारी, प्रबन्धकीय एवं तकनीकी कर्मी नियमित रूप से सामूहिक उत्पादक श्रम में भाग नहीं लेते, तो वे मेहनतकश जनता से कट जायेंगे, बुर्जुआ सोच के क्षरणकारी प्रभाव में आ जायेंगे और मेहनतकश जनता के साथ उनके अन्तरविरोध पैदा हो जायेंगे। ये अन्तरविरोध प्राय:, अलग-अलग स्तरों तक, सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के अन्तरविरोधों को प्रतिबिम्बित करते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ नेतृत्वकारी कैडर, प्रबन्धकीय कर्मी और तकनीशियन बुर्जुआ अधिकार के विचारधारात्मक प्रभाव में आकर न तो जनता के प्रति और न ही अपने प्रति सही रवैया अपनाते हैं। वे सोचते हैं कि ''नेतृत्व ज्यादा प्रतिभावान हैं'' और मजदूर-किसान आबादी को उद्यम के स्वामियों के रूप में नहीं देखते। वे संरक्षणवादी तरीके अपनाते हैं और क्रान्तिकारी कामरेडों के बीच के सम्बन्धों को वर्चस्व एवं अधीनता के सम्बन्धों में बदलने की कोशिश करते हैं। ये सब संशोधनवादी लाइन के बचे हुए जहर की अभिव्यक्तियां हैं और अलग-अलग स्तर पर पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा के बीच के अन्तरविरोधों तथा संघर्षों को प्रतिबिम्बित करती हैं। यदि इन अन्तरविरोधों को विकसित होने दिया गया और बुर्जुआ अधिकार पर अंकुश लगाने के बजाय उसे विस्तारित होने दिया गया, तो समाजवादी आपसी सम्बन्ध क्षरित होकर पूंजीवादी सम्बन्धों में बदल जायेंगे और समाजवादी उद्यमों का रंग धीरे-धीरे बदल जायेगा।

माओ त्से-तुङ द्वारा स्वयं सूत्रबद्ध किया गया *आनशान लोहा व इस्पात कम्पनी का चार्टर* तथा उनके द्वारा जारी निर्देशों की श्रृंखला, जैसे ''प्रबन्धन भी समाजवादी शिक्षा है,''[14] वह दिशासूचक यंत्र है जो बुर्जुआ अधिकार पर अंकुश लगाने, बुर्जुआ अधिकार की विचारधारा को समाप्त करने, मानसिक व शारीरिक श्रम के मूल अन्तरों को क्रमश: कम करते जाने और समाजवादी उद्यमों में लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों को सही ढंग से हल करने की राह दिखाता है। *आनशान चार्टर* की मूल भावना है सर्वहारा राजनीति को दृढ़ता से कमान में रखना; पार्टी के नेतृत्व को मजबूत बनाना; ऊर्जस्वी जन आन्दोलन शुरू करना; ''दो भागीदारियों, एक सुधार और एक-में-तीन के संयोजन'' को स्थापित करना (कार्यकर्ताओं द्वारा शारीरिक श्रम में भागीदारी और मजदूरों द्वारा प्रबन्धन में भागीदारी, अतार्किक तथा पुराने पड़ चुके नियम-विधानों में सुधार और मजदूरों, नेतृत्वकारी कैडर तथा तकनीकी कर्मियों के एक-में-तीन संयोजन की स्थापना); और तकनीकी अभिनवीकरण तथा तकनीकी क्रान्ति को पूरे जोर-शोर से आगे बढ़ाना। सर्वहारा राजनीति को दृढ़ता से कमान में रखना तथा पार्टी के नेतृत्व को मजबूत करना आपसी सम्बन्धों को हल करने के बुनियादी सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों के निर्देशन में ''दो भागीदारियों, एक सुधार और एक-में-तीन के संयोजन'' को दृढ़निश्चय एवं सम्पूर्णता से लागू करने पर ही नेतृत्व और जनसमुदाय के बीच तथा प्रबन्धकीय एवं तकनीकी कर्मियों और मजूदर-किसान मेहनतकश आबादी के बीच के सम्बन्ध क्रान्तिकारी कामरेडों के सम्बन्धों के रूप में विकसित होते रह सकेंगे।

कार्यकर्ताओं की उत्पादक श्रम में भागीदारी समाजवादी व्यवस्था में बुनियादी महत्व का एक प्रमुख उपाय है। यह समाजवादी आपसी सम्बन्धों को सही ढंग से हल करने में भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। अध्यक्ष माओ ने बताया है : ''सामूहिक उत्पादक श्रम में कार्यकर्ताओं की भागीदारी की व्यवस्था को चलाते रहना आवश्यक है। हमारी पार्टी और राज्य के कार्यकर्ता साधारण मजदूर हैं न कि लोगों की पीठ पर सवार राजाधिराज। सामूहिक उत्पादक श्रम में भाग लेकर कार्यकर्ता मेहनतकश जनता के साथ व्यापक, निरन्तर और निकट सम्बन्ध कायम करते हैं। एक समाजवादी व्यवस्था के लिए यह बुनियादी महत्व का एक प्रमुख उपाय है; यह नौकरशाही पैदा होने से रोकने तथा संशोधनवाद एवं कठमुल्लावाद की रोकथाम में मदद करता है।''[15] माओ ने अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के ऐतिहासिक अनुभवों और सबकों का समाहार करके यह अचूक सत्य प्रतिपादित किया। वे कार्यकर्ता जो स्वेच्छया और नियमित रूप से सामूहिक उत्पादक श्रम में भागीदारी कर सकते हैं, वे आम तौर पर बुर्जुआ अधिकार पर अंकुश लगाने के प्रति ज्यादा सचेत और ज्यादा जागरूक होते हैं। उनका जनता के प्रति सरोकार और लगाव होता है, वे जनता की आवाज को विनम्रता से सुनते हैं, जनता की आलोचना एवं दिशानिर्देशन के प्रति ग्रहणशील होते हैं और उद्यम की समाजवादी दिशा को दृढ़ता से बनाये रख सकते हैं। वे उत्पादक स्थितियों से ज्यादा अच्छी तरह परिचित होते हैं और आंख मूंदकर आदेश जारी नहीं करते। कुछ महिला कपड़ा मजदूर एक गीत गाती हैं जो सामूहिक उत्पादक श्रम में भागीदारी करने के बाद एक नेतृत्वकारी कार्यकर्ता के रूपान्तरण के बारे में बताता है : ''अतीत में, वह कभी वर्कशाप में नहीं आती थी; अब वह सलाह मांगने मशीन के पास तक आती है। अतीत में, चीजें देर से होती थीं; अब वे तत्काल हल हो जाती हैं। अतीत में, सिर्फ बड़ी-बड़ी रिपोर्टें जारी होती थीं, अब वह जो सोचती है, उसे वर्कशाप में ही बता देती है। अतीत में, उसे क्षुद्र नौकरशाह कहा जाता था, अब वह हमारी बहन जैसी है।'' वास्तविकता यह है कि ऐसे नेतृत्व और इसी तरह के प्रबन्धकीय एवं तकनीकी कर्मियों का जनता स्वागत करती है। यदि उनके बीच अन्तरविरोध भी हैं तो उन्हें समय के साथ सही ढंग से हल किया जा सकता है।

मजदूर-किसान जनता द्वारा प्रबन्धन में भागीदारी समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों की एक जरूरत है। समाजवादी व्यवस्था में यह जनता का अधिकार है। प्रबन्धन में मजदूरों-किसानों की भागीदारी पर जोर देकर ही उद्यम के स्वामी के रूप में मेहनतकश जनता की स्थिति की हिफाजत की जा सकती है और उसे मजबूत बनाया जा सकता है। यह विश्वास कि केवल कुछ बुर्जुआ ''विशेषज्ञ'' ही उद्यमों का प्रबन्ध कर सकते हैं और उन्हीं पर भरोसा किया जाना चाहिए तथा मजदूर-किसान जनता को दबाया जाना चाहिए, निश्चित रूप से समाजवादी आपसी सम्बन्धों को नुकसान पहुंचायेगा और अन्ततः समाजवादी उद्यमों के पतन तक ले जायेगा। समाजवादी आपसी सम्बन्धों को पूर्ण बनाने के लिए और समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व को सुदृढ़ एवं विकसित करने के लिए, ''हमें इस पुराने, बेहूदा, वहशी, निन्दनीय और घृणित पूर्वाग्रह को हर कीमत पर तोड़ डालना होगा कि केवल तथाकथित 'उच्च वर्ग', केवल धनी लोग या धनिकों के स्कूलों में पढ़े लोग ही राज्य का प्रशासन चलाने और समाजवादी समाज के संगठनात्मक विकास को निर्देशित करने में सक्षम है।''[16]

प्रबन्धन में जनता की भागीदारी से आशय मूलतः प्रत्यक्ष उत्पादकों, मजदूर-किसान जनता, की प्रबन्धन में भागीदारी से होता है। उद्यम के प्रबन्धन में भागीदारी करने वाले जनसमुदाय को न केवल उत्पादन, तकनीकी अभिनवीकरण एवं क्रान्ति और आर्थिक लेखा को निर्देशित करना चाहिए; बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि उन्हें पार्टी लाइन तथा इसकी आम एवं विशिष्ट नीतियों को लागू करने में भी कार्यकर्ताओं की सहायता करनी चाहिए तथा उन पर नजर रखनी चाहिए। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में मजदूरों ने उद्यमों के प्रबन्धन में भागीदारी करने के लिए ''चार बड़े हथियारों'' का इस्तेमाल किया। ये थे—बड़े तर्क-वितर्क (अपने-अपने मतों को बेलाग-लपेट व्यक्त करना), बड़े प्रस्फुटन (विचारों को खुलकर व्यक्त करना), बड़े चित्राक्षर वाले पोस्टर और बड़ी बहसें। मजदूर-किसान आबादी के प्रतिनिधि उद्यमों का प्रबन्ध करने वाली क्रान्तिकारी कमेटियों के काम में सीधी भागीदारी करते थे। वे उत्पादन से कटे हुए नहीं थे, पर फिर भी वे पर्यवेक्षण का अपना काम करते थे। यह प्रबन्धन में जनता की भागीदारी में एक नया विकास है।

उत्पादन और वैज्ञानिक प्रयोग के संघर्ष में जनता, कार्यकर्ताओं और तकनीशियनों के ''एक-में-तीन के संयोजन'' को लागू करना उत्पादन की प्रमुख तकनीकी समस्याओं को हल करने का एक साधन है। यह न केवल समस्त जनसाधारण के स्तर पर तकनीकी अभिनवीकरण को उत्प्रेरित करने के अनुकूल है, बल्कि बुद्धिजीवियों को श्रम का और मजदूरों-किसानों को वैज्ञानिक ज्ञान का अभ्यस्त बनाने के भी लिए अनुकूल है। इस तरह यह मानसिक व शारीरिक श्रम के अन्तर को कम करने और समाजवादी आपसी सम्बन्धों को ज्यादा पूर्ण बनाने में मदद करता है।

उद्यम प्रबन्धन के अतार्किक और पुराने पड़ चुके नियम-विधानों और प्रणालियों का सुधार समाजवादी आपसी सम्बन्धों के अनवरत समायोजन और रूपान्तरण का एक और पहलू है। किसी भी तरह के सामाजिक उत्पादन को कुछ निश्चित नियम-विधानों और प्रणालियों की जरूरत होती है।* लेकिन किस तरह के नियम-विधान और प्रणालियां लागू की जाती हैं, यह समाज के मौजूदा उत्पादन सम्बन्धों से तय होता है। पूंजीवादी समाज में उद्यम प्रबन्धन के सन्दर्भ में लेनिन ने इस बात को खास तौर से इंगित किया था, ''लूट-खसोट करते समय प्रशासन करना और प्रशासन करते समय लूट-खसोट करना किसके हित में है।''[17] पूंजीवादी उद्यम के नियम-विधान और प्रणालियों का केवल एक लक्ष्य होता है : मजदूर की स्वतंत्रता को कैसे बेहतर ढंग से बाधित किया जाये और मजदूर से ज्यादा अतिरिक्त मूल्य कैसे निचोड़ा जाये। पूंजीवादी उद्यम के अन्तहीन नियम-विधान पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की हिफाजत करने के लिए बने हैं और उनसे बंधे होते हैं। समाजवाद में, ''प्रणालियों को जनता के हित के अनुकूल होना चाहिए।''[18] समाजवादी नियम-विधानों एवं प्रणालियों तथा पूंजीवादी नियम-विधानों एवं प्रणालियों के बीच यह सर्वाधिक मूलभूत अन्तर है। प्रणालियों को जनता के अनुकूल होना चाहिए, यह कहने का मतलब होता है कि ऐसी प्रणालियों को स्वामी के रूप में जनता की भूमिका के, उद्यमों में लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों के सुधार और विकास के, जनता की समाजवादी पहलकदमी के और वर्ग-संघर्ष, उत्पादन के लिए संघर्ष एवं वैज्ञानिक प्रयोग के तीन क्रान्तिकारी आन्दोलनों के अनुकूल होना चाहिए। जनता के लिए अनुकूल नियम और प्रणालियां निश्चित रूप से उत्पादन के विकास के लिए भी अनुकूल होंगी क्योंकि वे जनता की सक्रियता को निर्बन्ध करेंगी। ल्यू शाओ-ची और लिन प्याओ की संशोधनवादी लाइन के प्रभाव में कुछ उद्यमों के नियम-विधान और प्रणालियां प्रायः जनता पर अंकुश लगाती थीं। मजदूर यह आलोचना करते थे कि ''नियम-विधान जरूरत से ज्यादा ही हैं और वे या तो दण्ड देने के लिए या फिर जोर-जबर्दस्ती के उद्देश्य से बनाये गये हैं।'' अच्छे नेतृत्व के तहत मजदूरों को ऐसे नियम विधान को सावधानी से संशोधित करने के लिए गोलबंद किया जाना चाहिए जो अतार्किक, प्रतिबंधात्मक और उत्पादन के लिए नुकसानदेह हों, और जो मजदूरों के बीच फूट और अलगाव के बीज बोते हों। इसी के साथ, व्यवहार में अर्जित किये गये अनुभव के आधार पर, ऐसे स्वस्थ और तर्कपरक प्रणालियों एवं नियमों का नया सेट स्थापित किया जाना चाहिए जो समाजवादी आपसी सम्बन्धों की जरूरतों तथा उत्पादक शक्तियों के विकास से मेल खाते हों।

* प्रणालियों से आशय प्रबन्धन एवं उत्पादन नियंत्रण की प्रणालियां तथा इनसे जुड़ी दायित्वों की श्रृंखलाओं और संचालन नियमों से है।

आपसी सम्बन्धों के निर्माण पर अधिरचना का जबर्दस्त प्रभाव

उत्पादन में लोगों की स्थिति और उत्पादन में उनके आपसी सम्बन्धों की प्रकृति उत्पादन के साधनों की स्वामित्व प्रणाली से निर्धारित होती है। लेकिन अधिरचना भी उत्पादन में लोगों की स्थिति और उनके आपसी सम्बन्धों के साथ प्रतिक्रिया करती है और उनके स्वरूप तथा विकास दोनों को प्रभावित करती है। वास्तव में, अधिरचना की सक्रिय भूमिका के बिना, उत्पादन में लोगों की स्थिति और उनके आपसी सम्बन्धों का सुसम्बद्ध होना, सुदृढ़ होना और विकसित होना सम्भव नहीं है। किसी भी समाज का शासक वर्ग स्वामित्व की स्थापित प्रणाली की हिफाजत करने और उत्पादन में लोगों की स्थिति एवं आपसी सम्बन्धों तथा इसी के अनुरूप वितरण सम्बन्धों को सुदृढ़ एवं विकसित करने के लिए, अनिवार्यत: अधिरचना की शक्ति का, सभी उपलब्ध साधनों के साथ इस्तेमाल करता है। यह एक आम नियम है।

पूंजीवादी समाज को लें। किसी भी पूंजीवादी देश का बुर्जुआ वर्ग अधिरचना की ताकत का इस्तेमाल उजरती श्रम पर अपना प्रभुत्व कायम करने और बलपूर्वक उसका विस्तार करने के लिए करता है। मार्क्स बताते हैं कि श्रम पर पूंजी के प्रभुत्व को स्थापित और विस्तारित करने के लिए नया उभरता पूंजीपति वर्ग "राज्य की शक्ति चाहता है और इसका इस्तेमाल करता है।"[19] पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध तक, इंग्लैण्ड के पूंजीपति वर्ग ने देहात से बड़ी संख्या में गरीब किसानों को उजाड़ने के लिए हिंसक तरीके अपनाये, जिनमें सर्वप्रमुख था "बाड़ाबंदी आन्दोलन"।[20] ये उजड़े हुए और बेसहारा किसान शहरी इलाकों में पहुंचे जहां वे पूंजी की गिरफ्त में आ गये। हालांकि, शहरी इलाकों में पहुंचने वाले किसान श्रम पर पूंजी के स्वेच्छाचारी शासन के आगे समर्पण करने के बजाय आवारागर्द बन जाना ज्यादा पसन्द करते थे। इन बरबाद किसानों को कारखानों में काम करने के लिए बाध्य करने के लिए ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग ने घुमक्कड़ों और आवारागर्दों के विरुद्ध सख्त कानून बनाये; विकृत रूप से भयानक कानूनों के तहत कोड़े मारकर गर्म लोहे से दागकर और यातनाएं दे-देकर उनमें उजरती मजदूर बनने के लिए जरूरी अनुशासन भरा जाता था।[21] ऐसे क्रूर तरीके अपनाता था पूंजीपति वर्ग उन आपसी सम्बन्धों को स्थापित एवं विकसित करने के लिए जिनमें पूंजी का श्रम पर प्रभुत्व था।

श्रम पर पूंजी के प्रभुत्व का सम्बन्ध बलपूर्वक स्थापित किया जाता है और इसे बलपूर्वक ही नष्ट किया जा सकता है। समाजवादी देशों में सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत इस सम्बन्ध को स्पष्टत: बलप्रयोग के द्वारा ही नष्ट किया गया।

चूंकि समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध केवल सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत ही स्थापित हो सकते हैं, इसलिए समाजवादी अधिरचना की समाजवादी आर्थिक आधार से प्रतिक्रिया स्पष्टत: प्रकट होती है। समाजवादी आर्थिक सम्बन्ध समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली से निर्धारित होते हैं। वे समाजवादी अधिरचना के जबर्दस्त प्रभाव के तहत भी बनते और विकसित होते हैं। अगर हम यह सोचें कि समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना के साथ ही समाजवादी आपसी सम्बन्ध अपने आप आकार ग्रहण कर लेंगे और विकसित हो जायेंगे तो यह एक गम्भीर गलती होगी।

समाजवादी आपसी सम्बन्धों के दायरे में मजदूर वर्ग एवं अन्य मेहनतकश जनता और पूंजीपति वर्ग एवं अन्य शोषक वर्गों के बीच का सम्बन्ध शासक एवं शासित का, रूपान्तरण करने वाले और रूपान्तरित होने वाले का सम्बन्ध होता है। सर्वहारा वर्ग इनमें से कुछ को समाजवादी रूपान्तरण स्वीकार करने पर बाध्य करने में सक्षम इसलिए होता है क्योंकि वह शक्तिशाली राज्य मशीनरी को नियंत्रित करता है। राज्यसत्ता वह पूर्वशर्त है जिसके बिना पूंजीपति वर्ग पर शासन करना और उसका रूपान्तरण असम्भव है।

जहां तक मेहनतकश जनता के बीच के सम्बन्धों का सवाल है, यदि क्रान्तिकारी कामरेडों के रूप में उनके आपसी सम्बन्धों को समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार विकसित होते रहना है तो समाजवादी अधिरचना पर भरोसा करना और उसकी भूमिका को समझना जरूरी है। समाजवादी अधिरचना हमें स्वयं को शिक्षित और रूपान्तरित करने में सक्षम बनाती है ताकि हम खुद को देश के भीतर और बाहर के प्रतिक्रियावादियों के प्रभाव से मुक्त कर सकें। अध्यक्ष माओ ने बताया है : "जनता का राज्य जनता की हिफाजत करता है। जब लोगों के पास ऐसा राज्य हो, तभी वे देशव्यापी पैमाने पर जनवादी तरीकों से खुद को शिक्षित और रूपान्तरित कर सकते हैं और घरेलू तथा बाहरी प्रतिक्रियावादियों के प्रभावों को झटककर दूर कर सकते हैं।"[22] अधिरचना में समाजवादी क्रान्ति जारी रखने, बुर्जुआ विचारधारा पर क्रमश: विजय पाने के लिए सर्वहारा विचारधारा का प्रयोग करने और लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों के दायरे में पूंजीवादी परम्पराओं तथा प्रभावों को अनवरत रूप से उखाड़ते रहने के द्वारा ही मेहनतकश जनता के बीच क्रान्तिकारी और कामरेडाना सम्बन्ध विकसित होते रह सकते हैं। केवल इस आधार पर ही समाजवादी उत्पादन के आपसी सम्बन्धों के निर्माण और विकास का रास्ता साफ हो सकता है।

संक्षेप में, समाजवादी आपसी सम्बन्धों के निर्माण और विकास की प्रक्रिया दो वर्गों के बीच राजनीतिक और विचारधारात्मक संघर्ष की लम्बी प्रक्रिया है। समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों को सुरक्षित और विकसित करने के लिए सर्वहारा वर्ग को समाजवाद की पूरी ऐतिहासिक अवधि के लिए बुनियादी पार्टी लाइन पर दृढ़तापूर्वक अमल करना चाहिए। समाजवादी क्रान्ति में, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के दायरे में, एक बुनियादी विजय पा लेने के बाद, सर्वहारा वर्ग को राजनीतिक एवं विचारधारात्मक दायरों में तीक्ष्ण ढंग से समाजवादी क्रान्ति चलानी चाहिए, बुर्जुआ विचारधारा को उखाड़कर सर्वहारा विचारधारा को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा 'स्व' के विरुद्ध संघर्ष और संशोधनवाद की आलोचना करनी चाहिए। समाजवादी आपसी सम्बन्धों के सुदृढ़ीकरण और उन्हें और पूर्ण बनाने के लिए यह एक मूलभूत मुद्दा है। यदि हम यह सोचते हैं कि समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली की स्थापना के बाद शोषक वर्ग किसी तरह गायब हो जायेंगे, और यदि हम समाजवादी आपसी सम्बन्धों की व्याख्या में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के अन्तरविरोध के मूल दृष्टिकोण से हट जाते हैं, तो हमारी सोच पार्टी की बुनियादी लाइन के विपरीत चली जायेगी और हम "वर्ग संघर्ष के धीरे-धीरे समाप्त हो जाने" के तर्क के शिकार हो जायेंगे। अगर हमने अधिरचना में समाजवादी क्रान्ति जारी रखने पर जोर नहीं दिया और यदि हमने बुर्जुआ विचारधारा को छुट्टा छोड़ दिया, तो समाजवादी आपसी सम्बन्ध पतित होकर पूंजीवादी आपसी सम्बन्धों में तब्दील हो जायेंगे और समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली बिखर जायेगी। सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना नकारात्मक उदाहरण के द्वारा हमें इस सम्बन्ध में मार्क्सवाद के वैज्ञानिक सत्य को समझने की शिक्षा देती है।

अध्ययन के लिए प्रमुख सन्दर्भ

माओ, "जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में"

माओ, "प्रचार कार्य पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण"

समीक्षात्मक प्रश्न

1. यह क्यों कहते हैं कि समाजवादी उत्पादन में लोगों के बीच के आपसी सम्बन्ध अन्तत: वर्ग सम्बन्ध होते हैं?

2. समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली और वितरण के सम्बन्धों को सुदृढ़, सम्पूर्ण और विकसित करने में तथा उत्पादक शक्तियों को आगे बढ़ाने में समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार स्थापित आपसी सम्बन्धों का क्या महत्व है?

3. समाजवादी उत्पादन में आपसी सम्बन्धों को सुदृढ़ व सम्पूर्ण बनाने तथा उनको निरन्तर विकसित करने में अधिरचना की अत्यन्त सक्रिय भूमिका कहां अभिव्यक्त होती है?

टिप्पणियां

1. ''मार्क्सवाद के तीन स्रोत और तीन संघटक अंग'', **लेनिन की संकलित रचनाएं**, खण्ड 2, चीनी संस्करण, 1972, पृ. 444

2. एंगेल्स, ''कार्ल मार्क्स, *राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना*'', **मार्क्स-एंगेल्स की चुनी हुई कृतियां**, खण्ड 2, चीनी संस्करण, पृ. 123

3. ''प्रचार कार्य पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण'', **सेलेक्टेड रीडिंग्स फ्रांम दि वर्क्स आफ माओ त्से-तुङ**, (टाइप ए), चीनी संस्करण, 1965, पृ. 365

4. उपरोक्त, पृ. 365

5. ''महान शुरुआत'', **लेनिन की संकलित रचनाएं**, खण्ड 4, चीनी संस्करण, 1972, पृ. 11

6. ''येनान कला-साहित्य गोष्ठी में भाषण'', **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, खण्ड 3, चीनी संस्करण, 1968, पृ. 827

7. अनेक समकालीन सोवियत संशोधनवदी सांस्कृतिक रचनाएं सोवियत संशोधनवाद द्वारा प्रचारित ''कामरेडों, मित्रों व बंधुओं'' की भ्रान्ति के सार को प्रदर्शित करती हैं। उदाहरण के लिए, 'दि आउटसाइडर' नामक एक नाटक का मुख्य पात्र जो सोवियत संशोधनवादी पार्टी का एक सदस्य और एक उद्यम में इंजीनियर है, एक ढलाई कारखाने के ''पिछड़े स्वरूप'' को बदलने के लिए जाता है। मजदूरों के सामने अहम्मन्यता से भरे तेवर में वह चिल्लाकर भाषण देता है: ''हम नेता हैं। हमारे हाथ कुछ नहीं करते। हम अपने शब्दों और अपने दिमागों से काम करते हैं।'' फोरमैनों को वह मजदूरों पर निगरानी रखने का आदेश देता है, ''उनपर नजर रखो और उनपर चढ़े रहो।'' ''जो कोई भी आदेश न माने, सजा के बतौर उसका आधा बोनस काट लिया जाये।'' ''उनपर रूबलों से चोट करो।'' सोवियत संघ में मेहनतकश जनता एक नये नौकरशाह-एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के क्रूर शोषण-उत्पीड़न का शिकार है। सोवियत संशोधनवादी जिन ''कामरेडों, मित्रों व बन्धुओं'' के बीच सम्बन्धों का ढोल पीटते हैं, उसकी असलियत यही है।

8. मार्क्स, **पूंजी**, खण्ड 3, चीनी संस्करण, 1966, पृ. 440

9. ''जनता के बीच के सम्बन्धों को सही ढंग से हल करने के बारे में'', **सेलेक्टेड रीडिंग्स फ्राम दि वर्क्स आफ माओ त्से-तुङ** (टाइप ए), चीनी संस्करण, 1965, पृ. 337

10. मार्क्स, **पूंजी** खण्ड 1, **मार्क्स-एंगेल्स की सम्पूर्ण कृतियां**, खण्ड 23

11. ''पार्टी की कार्यशैली में सुधार'', **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, खण्ड 3, चीनी संस्करण, 1968, पृ. 762

12. माओ, *दसवीं पार्टी कांग्रेस के दस्तावेजों* में उद्धृत, पृ. 55

13. लेनिन, *राज्य और क्रान्ति*, पृ. 114

14. माओ, किरिन क्रान्तिकारी कमेटी के लेखन ग्रुप द्वारा ''समाजवादी निर्माण और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में वर्ग संघर्ष'' में उद्धृत, *पीकिङ रिव्यू*, 17 अप्रैल, 1970, (अंक 16), पृ. 10

15. माओ, ''ख्रुश्चेव का नकली कम्युनिज्म और विश्व इतिहास के लिए सबक'' में उद्धृत, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी, 1964

16. ''प्रतिस्पर्द्धा कैसे संगठित करें'', **लेनिन की संकलित रचनाएं**, खण्ड 3, चीनी संस्करण, 1972, पृ. 395

17. उपरोक्त।

18. माओ, *रनमिन रिबाओ (पीपुल्स डेली)* में उद्धृत, 31 मई, 1972

19. मार्क्स, **पूंजी**, खण्ड 1, **मार्क्स-एंगेल्स की सम्पूर्ण कृतियां**, खण्ड 23, पृ. 806

20 ''बाड़ाबन्दी आन्दोलन'' आदिम पूंजी संचय के महत्वपूर्ण साधनों में से एक था। पन्द्रहवीं सदी के अन्त में, इंग्लैण्ड में ऊन उद्योग के आविर्भाव ने ऊन के दामों को ऊपर चढ़ा दिया। भेड़ पालन बहुत मुनाफा देने वाला व्यवसाय बन गया। इंग्लैण्ड के कुलीन भूस्वामी वर्ग और बुर्जुआ वर्ग ने साठ-गांठ करके किसानों को उनकी जमीन से बेदखल करने और उस जमीन की बाड़ाबन्दी करके भेड़ पालन शुरू कर दिया। बाड़े के भीतर के मकान पूरी तरह नष्ट कर दिये गये। किसान बेघर कर दिये गये और भीख मांगने और आवारागर्दी करने पर मजबूर हो गये। अठारहवीं सदी में ब्रिटिश बुर्जुआ सरकार ने संसद द्वारा बनाये गये कई ''बाड़ाबन्दी कानूनों'' के जरिए पूंजीपति वर्ग द्वारा किसान की हिंसक लूट-खसोट का समर्थन किया। किसान लगातार बाड़ाबन्दी आन्दोलन का विरोध करते रहे और उन्होंने कई बार इसके खिलाफ विद्रोह किया।

21. मार्क्स, **पूंजी**, खण्ड 1, **मार्क्स-एंगेल्स की सम्पूर्ण कृतियां**, खण्ड 23, पृ. 805

22. ''जनता के जनवादी अधिनायकत्व के बारे में'', **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, खण्ड 4, चीनी संस्करण, 1968, पृ. 1365

(चीन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान तैयार की गई प्रसिद्ध पुस्तक **फंडामेंटल्स आफ पोलिटिकल इकॉनमी** (**द शंघाई टेक्स्टबुक** नाम से मशहूर) के अंग्रेजी संस्करण से हिन्दी अनुवाद : **सत्यम वर्मा**

उत्तर प्रदेश बैंक इम्पलाइज़ क्रेडिट कोआपरेटिव सोसाइटी लि.

रेड गेट, गोलागंज, लखनऊ

जनपद में सहकारी आन्दोलन की वित्तीय संस्था

अपने आपके—योजनाएं हमारी

समिति के निक्षेप कर्ताओं तथा भावी निक्षेप कर्ताओं के सहितार्थ ब्याज की दरों में आशातीत वृद्धि। समिति में दोहरी जमा योजना लागू।

समिति में साविधि-निक्षेप पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा हाल में राष्ट्रीयकृत बैंकों में बढ़ायी गयी ब्याज दरों से 2.5 प्रतिशत ब्याज दर अधिक है जमा राशि की एवज में 75 प्रतिशत ऋण की भी सुविधा उपलब्ध है।

समिति में जमा धन पर ब्याज की दरों में बढ़ोत्तरी

अवधि	अन्य के लिए	सदस्यों के लिए
1. 46 दिन या उससे अधिक, पर 6 माह से कम	10%	11%
2. 6 माह या उससे अधिक, पर तीन वर्ष से कम	11%	12%
3. एक वर्ष तथा उससे अधिक, पर 25 माह से कम	12%	13%
4. 25 माह तथा उससे अधिक	13%	14%

दोहरी जमा योजना

''दोहरी जमा योजना'' में अपना धन लगाकर मात्र पांच साल के अन्दर अपना धन दोगुने से भी अधिक का लाभ प्राप्त करें।

सदस्य आवर्ती जमा खाता - कम से कम रु. 100/- एक वर्ष के लिए खोला जाएगा जिसपर ब्याज दर 14% होगी।

हमारा लक्ष्य बेहतर सेवा एवं अधिक ब्याज
आपके सहयोग एवं सेवा के आकांक्षी

उपाध्यक्ष	सचिव	अध्यक्ष
दीपकुमार बाजपेयी	डी.एस. शुक्ल	राकेश

मदर टेरेसा : मिथक और यथार्थ

○ विजय प्रसाद

मदर टेरेसा जैसे किसी भी व्यक्ति के जीवन को छानबीन के लिए खोलना हमेशा से ही मुश्किल रहा है। इसकी वजह यह है कि एक खास तरह का प्रभामण्डल उनके व्यक्तित्व को घेरे रहता है, जो उनकी किसी भी तरह की आलोचना की अनुमति नहीं देता है। दूसरी वजह यह है कि मदर टेरेसा के सादगीपूर्ण जीवन के समक्ष, जो वास्तविक सेवा भाव से भरा रहा है, लोग प्राय: अपनेआप को अपूर्ण पाते हैं। महात्मा गांधी और मदर टेरेसा में कई मामलों में समरूपता है, जैसे गरीबों के बीच उन्हीं के कपड़ों में बैठकर, अवाच्य चेहरे के साथ मुस्कराना, जिससे भारत जैसे देश में उनकी आलोचना करना बेतुका-सा लगने लगता है। निश्चित रूप से मदर टेरेसा एक असाधारण व्यक्तित्व थीं, वरना उनकी मृत्यु पर इतना बड़ा राष्ट्रीय शोक नहीं मनाया जाता। 1905 में लेनिन ने अपने एक कथन में इस बात पर काफी जोर दिया था कि धर्म के प्रति मार्क्सवादियों को कभी कठमुल्ला रुख नहीं अपनाना चाहिए। उन्होंने लिखा है, "हमारे लिए, धरती पर स्वर्ग के निर्माण के लिए उत्पीड़ित वर्ग के इस वास्तविक क्रान्तिकारी संघर्ष में एकता, स्वर्ग के सम्बन्ध में सर्वहारा के मत की एकता से ज्यादा जरूरी है।"[1] मदर टेरेसा की हमारी आलोचना का उद्देश्य दुनिया के कुछ गरीबों के कष्टों को कम करने में उनकी भूमिका को कम करके आंकना नहीं है। हम उनके कार्य की सीमाओं की बात करेंगे न कि उनकी ईश्वर-मीमांसा पर या धर्मशास्त्रीय मानकों से उनकी प्रभावकारिता पर। हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि किस प्रकार उनका काम बुर्जुआ अपराधबोध को बस थोड़ा कम करने के भूमण्डलीय उद्यम का एक अंग है, न कि उन शक्तियों के लिए एक गम्भीर चुनौती, जो कि गरीबी को पैदा करती हैं और उसे कायम रखती हैं।

मदर टेरेसा को लेकर हमारी समस्या उनका गुणगान करने वालों से शुरू होती है, जिन्होंने मदर टेरेसा को उनके जीवनकाल में ही इतिहास के दायरे से हटाकर, मिथक के दायरे में रख दिया। यह सब मैल्कम मगरिज के 1969 में बने वृत्तचित्र और 1971 में छपी किताब 'समथिंग ब्यूटीफुल फार गॉड' (Something Beautiful for God) से शुरू हुआ, जिसने एक स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ता को एक संत बना दिया। (हालांकि यह फिल्म कम रोशनी में बनने के कारण काफी खराब बनी थी लेकिन मगरिज दावा करता है कि मदर टेरेसा ने एक "चमत्कार" दिखाया और फिल्म में कई शानदार दृश्यों की सामग्री मुहैया करायी)[2] बहुत जल्दी ही मीडिया और पेशेवर भिखारियों की पूरी जमात कलकत्ता जा पहुंची और मदर टेरेसा को ऊंचा उठाने के लिए कलकत्ता को नीचा दिखाने में जुट गई। कलकत्ता दुख, संकट और विपत्ति का अनैतिहासिक प्रतीक बन गया।[3] शहर के औपनिवेशिक अतीत और वामपंथी वर्तमान का शहर के इस नये प्रस्तुतिकरण में कोई स्थान नहीं था। ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा ढाये गये कहर का कोई जिक्र तक नहीं था। बल्कि मीडिया में बहुत कम ही लोग ऐसे थे, जिन्होंने 1769-70 में, ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन में पड़े अकाल जिसमें बंगाल की एक तिहाई जनता मर गयी थी, और फिर 1943 में ब्रिटिश शासन में पड़े अकाल जिसमें 50 लाख लोग बलि चढ़ गये थे, के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश शासन की जिम्मेदारी पर सवाल उठाये। अकाल के ये उदाहरण तो साम्राज्यवाद के प्रभाव की ज्यादा स्पष्ट निशानियां भर हैं।[4] उन्हें पूर्वी पाकिस्तान ('71 के बाद बांग्लादेश) की घटनाओं में भी कोई रुचि नहीं थी जहां से एक करोड़ बीस लाख शरणार्थी भागकर पश्चिम बंगाल में आ बसे थे। मगरिज और उसकी तरह के लोग बंगाल में गरीबी के पैदा होने और कायम रहने पर बहुत कम ध्यान देते हैं। कलकत्ता की इस गरीबी पर मानव-विज्ञानी क्लॉड लेवी-स्त्रास ने टिप्पणी की थी कि "यह एक प्राकृतिक वातावरण जैसा है जिसकी किसी भी भारतीय शहर की तरक्की के लिए जरूरत होती है।"[5] उसके लिए भारत एक "शहीद महाद्वीप" है, जिसके निवासियों की गरीबी का कारण आबादी के सिवा और कुछ भी नहीं। लापियर और मगरिज की तरह लेवी-स्ट्रास "माल्थसवाद" ("अति-जनसंख्या") के सिद्धान्त पर आश्रित है, एक ऐसा सिद्धान्त जो क्षेत्र की ढांचागत समस्याओं को समझ नहीं सकता और जो निर्दयता के पक्ष में सस्ते नारे पेश करने के सिवा और कुछ नहीं करता। ये लेखक कलकत्ता को बुराइयों के गड्ढे में बदल डालते हैं जो अन्तरराष्ट्रीय पूंजी की शक्तियों द्वारा नहीं बल्कि अपनी बेतहाशा बढ़ती आबादी के कारण शोषित और उत्पीड़ित है; इस शहर का उद्धार पूंजीवाद-विरोधी आंदोलनों से नहीं बल्कि संत-महात्माओं के हस्तक्षेप से ही हो सकता है।

मगरिज की कलकत्ता यात्रा के दौरान मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) और बांग्ला कांग्रेस ने संयुक्त मोर्चा बनाकर एक नया प्रयोग किया। उन्होंने न केवल एक संकटग्रस्त राज्य में सरकार चलाने के लिए, बल्कि किसानों और सर्वहारा को संगठित करने तथा सत्ता उनके हाथों में देने के लिए, लोगों को "शासित और लामबंद" करने की प्रतिबद्धता जाहिर की। इन प्रयोगों के दौरान कांग्रेस और उसके 'सहयोगियों ने कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के खिलाफ आतंक का राज चलाया। संयुक्त मोर्चे का काम बार-बार बाधित होता रहा और पुलिस ने कई हजार नौजवानों की, आजादी और बराबरी में विश्वास रखने के कारण, हत्या कर दी। 1977 में वाम मोर्चे (सी.पी.आई.-सी.पी.एम. व उसके दूसरे सहयोगी दलों) ने लगातार पांच चुनावी जीतों में से पहली जीत हासिल की। (वे लगातार बीस सालों से वहां शासन कर रहे हैं।) वाम मोर्चे के नेतृत्व में वहां "भूमि-संघर्ष हुए और निर्धनतम वर्ग के लोगों में अपनी आर्थिक मांगों के लिए एक सामूहिक लामबंदी हुई। उसके कारण वहां राजनीतिक चेतना बढ़ी है। इसीलिए वहां के गरीब लोग बंगाल के स्थानीय धनियों के आश्रित नहीं बल्कि स्थानीय लोकतंत्र के आग्रही और सचेत भागीदार बन चुके थे।"[7] इन परिवर्तनों की उपेक्षा करके संत-महात्माओं पर ध्यान केन्द्रित करना कम्युनिस्ट विरोधी 'पण्डितों' के लिए ज्यादा अनुकूल था। एक बार वामपंथ वहां से पूरी तरह मिट जाये तो गरीबों के लिए सिर्फ एक आशा दिखेगी – मदर टेरेसा। इस तरह उनके अपने इतिहास (उनके अतीत और वर्तमान) को तेजी से पीछे छोड़ उनका मिथक हावी हो गया। भारत सरकार द्वारा उन्हें "मिरैक्युलस लोटस" पुरस्कार, 1971 में वेटिकन द्वारा शांति के लिए जान तेईसवां पुरस्कार, अमेरिका द्वारा "गुड समैरिटन" पुरस्कार और "जे.एफ. केनेडी" पुरस्कार और 1973 में ब्रिटेन द्वारा "टेम्पलटन पुरस्कार" दिये जाने के बाद तो यह स्थिति और पुख्ता हो गई। 1975 में संयुक्त राष्ट्र ने उनके नाम का पदक जारी किया और सोने पे सुहागा तब हुआ जब 1979 में उन्हें शांति के लिए नोबल पुरस्कार मिला।

मदर टेरेसा को इतिहास में लौटा लाने का अर्थ है; उनके असली नाम और जन्मस्थान से शुरुआत करना। उनका असली नाम एग्नेस बोयाज्यू

और उनका जन्मस्थान अल्बानिया (1910) कुछ ही लोग जानते हैं। एग्नेस बोयाज्यू एक कम उम्र लड़की, जिसने इंस्टीच्यूट आफ दि ब्लेस्ड वर्जिन मैरी (दि सिस्टर्स आफ लोरेटो) में दाखिला लिया और लोरेटो द्वारा अभिजात वर्ग की लड़कियों के लिए संचालित कई स्कूलों में से एक में पढ़ाने के लिए 1929 में भारत आयी। लोरेटो आर्डर की स्थापना 1609 में एक अंग्रेज मैरी वार्ड (1585-1645) ने की थी। जिसने 'सोसाइटी आफ जीसस' के समानान्तर ही एक संगठन बनाना चाहा था, लेकिन चर्च के आदेश के अंतर्गत उन्हें विश्व भर में अभिजात वर्ग के लोगों को शिक्षित करने से ही संतुष्ट होना पड़ा था।[8] एग्नेस ने लगभग दो दशकों तक कलकत्ता के लोरेटो स्कूलों में पढ़ाने के बाद 1950 में "गरीबों और बेचारों के लिए यीशु के सरोकार को जारी रखने के लिए" (जैसा कि मिशनरीज आफ चैरिटी के 120 पेज के संविधान में कहा गया है।) 'मिशनरीज आफ चैरिटी' की स्थापना की।

मिशनरीज ने मरते हुए बेघर लोगों के लिए आश्रयस्थल बनाये, कोढ़ियों के लिए एक गांव और एक बाल गृह स्थापित किया। निश्चित रूप से उनके कारण तमाम लोगों को राहत मिली, चिकित्सीय दृष्टि से नहीं, बल्कि उनके द्वारा मिले प्यार और स्नेह से। मदर टेरेसा की सिस्टर्स ने बीमारों और मरते हुए लोगों के कष्टों को प्यार के मलहम से ठीक करने की कोशिश की क्योंकि ज्यादातर को चिकित्सा का केवल आरम्भिक ज्ञान था। मदर ने 1948 में कुछ माह स्वयं को एक मेडिकल मिशनरी के रूप में प्रशिक्षित करने के लिए पटना में 'मेडिकल मिशनरीज सिस्टर्स' (मदर अन्ना देंगेल (1892-1980) द्वारा 1925 में अमेरिका में स्थापित) के साथ बिताये लेकिन उनकी सिस्टर्स को मेडिकल शिक्षा प्राप्त नहीं थी। 1994 में राबिन फाक्स ने कलकत्ता की यात्रा की और पाया कि मिशनरीज आफ चैरिटी की सिस्टर्स आधुनिक तकनीक का उपयोग नहीं कर रही हैं (विशेषकर मलेरिया जैसी बीमारियों में खून की जांच आदि)। सिस्टर्स साध्य रोगियों और असाध्य रोगियों की पहचान करने के लिए कोई प्रक्रिया नहीं अपनाती थीं। "ऐसे व्यवस्थित दृष्टिकोण मदर टेरेसा के आश्रम के तौर-तरीकों से मेल नहीं खाते। मदर टेरेसा योजना बनाने के बजाय ईश्वर पर ज्यादा भरोसा रखती हैं; उनके नियम भौतिकवाद की तरफ बहकने से रोकने के लिए बनाये गये हैं।" मर रहे व्यक्ति को कष्ट से राहत दिलाने के मामले में सिस्टर्स कुछ नहीं करती थीं। फाक्स ने लिखा था : "मैं यह तय नहीं कर पाया कि उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण में कितनी शक्ति है, लेकिन मैं यह जानकर काफी परेशान हुआ कि उनके नुस्खों में किसी प्रकार की कड़ी दर्द निवारक का स्थान नहीं है।"[9] क्रिस्टोफर हिचेन्स ने मदर टेरेसा के निष्पक्ष मूल्यांकन में कहा है, "सवाल ईमानदारी से पीड़ितों को राहत देने का नहीं, बल्कि मृत्यु और पीड़ा और अधीनता पर आधारित एक 'कल्ट' की शुरुआत करने का है।" आगे वे कहते हैं, "असहाय बच्चे, परित्यक्त लोग, कोढ़ी और मरणासन्न लोग करुणा के प्रदर्शन के लिए कच्चे माल हैं। वे किसी तरह की शिकायत करने की स्थिति में नहीं होते और उनकी सहनशीलता तथा घोर अधोगति में भी जी लेने की क्षमता को एक शानदार गुण माना जाता है।"[10] यह कम्युनिस्ट प्रयोगों से एक दूर की बात है।

संत मैथ्यू का गॉस्पेल (सुसमाचार) कहता है, "गरीबों की आत्मा पर ईश्वर की कृपादृष्टि है क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।" "संत धर्मात्माओं के उदय के लिए गरीबी पूर्वशर्त है" यह विचार मदर टेरेसा की ईसाइयत और महात्मा गांधी के सम्प्रदायेतर महात्मावाद दोनों में समान रूप से मौजूद है। दोनों ने ही गरीबों को अनुग्रहीत लोगों के रूप में देखा। दोनों ने ही गरीबी को मिटाने की जरूरत नहीं समझी, बल्कि यह बताया कि खुशी गरीबों के बीच ही पाई जा सकती है। गांधी ने "गरीबी के गौरव" पर काफी विस्तार से लिखा है, और गरीबी के आनंद को पहचानने के लिए लोगों को आह्वान किया है। 1931 में लंदन में उन्होंने लिखा था कि जो गरीबी की आदर्श स्थिति में हैं "वे दुनिया के सारे खजाने के मालिक होते हैं। दूसरे शब्दों में वह सब कुछ, जिसकी तुम्हें जरूरत है, तुम पाओगे। अगर तुम्हें खाने की जरूरत है, खाना तुम्हारे पास आयेगा।"[11] इन पंक्तियों के समानान्तर मदर टेरेसा ने कहा कि गरीबी "खूबसूरत" है। और तब गरीबी एक ऐसी चीज नहीं रह जाती है जो खराब हो बल्कि ऐसी चीज बन जाती है जिस पर जश्न मनाया जाये। गरीबों को इस रूप में देखा जा सकता है, जो अपने प्रति दिखायी गयी अनुकम्पा और दीनवत्सलता को स्वीकार करके इस दुनिया का उद्धार कर सकते हैं। यह दृष्टिकोण गरीबी के कारणों में और चैरिटी उद्योग द्वारा गरीबों को अपने आश्रय में रखने के तकाजे में कोई दिलचस्पी नहीं रखता। मदर टेरेसा की मृत्यु के बाद उनकी उत्तराधिकारी सिस्टर निर्मला ने कहा, "गरीबी हमेशा बनी रहेगी। हम चाहते हैं कि गरीब, गरीबी को सही नजर से देखें–उसे स्वीकार करें, और विश्वास करें कि ईश्वर उनकी जरूरतें पूरी करेगा।"[12] मिशरनीज आफ चैरिटी अधीनता और भाग्यवाद की शिक्षा देती है, जो गरीबों में एक गम्भीर सामाजिक बदलाव के प्रति राजनीतिकरण की किसी भी आशा को बाधित करती है। सौभाग्य से कैथोलिक सम्प्रदाय के भीतर यही एकमात्र विचार नहीं है, अनेक व्यापक दृष्टिकोण भी मौजूद हैं।

15 मई 1961 को पोप जॉन तेईसवें ने एक महत्वपूर्ण पोप परिपत्र कैथोलिक समाज के लिए प्रस्तावित किया था ("Matter et magistra") उन्होंने चर्च से "मनुष्य की दैनिक समस्याओं से, उसकी आजीविका और शिक्षा से और उसके सामान्य, सांसारिक कल्याण और सम्पत्ति से सरोकार रखने की अपील की।" पोप ने 1891 के पोप लिओ तेरहवें (1878-1905) के ऐतिहासिक परिपत्र का हवाला दिया जो "मजदूरों द्वारा अपने संघ बनाने के प्राकृतिक अधिकार का पक्ष लेता है" (पैरा 22)। आगे उन्होंने लिओ तेरहवें द्वारा पूंजीवाद की समालोचना करते हुए उसे अनैतिक कहे जाने की चर्चा की। जॉन तेईसवें ने लिखा है "वृहत धन सम्पत्ति कुछ ही के हाथ में केन्द्रित है, जबकि अधिकांश मजदूर अपने आप को लगातर बढ़ती हुई विपत्तियों, कष्टों, दुखों में ही पाते हैं। उनकी तनख्वाहें, भुखमरी के स्तर पर भी जीवित रहने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। कभी-कभी काम करने की परिस्थितियां इतनी बदतर होती हैं कि उसमें काम करने से मजदूर का स्वास्थ्य तो खराब होता ही है, साथ ही उसकी नैतिकता और धार्मिक भावनाओं का भी ह्रास होता है।" (पैरा 13)। कुछ अन्य के साथ इस दस्तावेज ने दूसरी वेटिकन काउंसिल (1962-65) का आधार तैयार किया जिसने जान तेइसवें के पूर्वाधिकारियों के अनुदारवाद को पलट दिया। मदर टेरेसा ने लगातार वेटिकन द्वितीय और जान तेइसवें का विरोध किया। मदर टेरेसा ने पोप जॉन पॉल द्वितीय (1978 से अब तक) के आगमन का स्वागत किया जिनका कट्टरपंथ उनके अपने खास किस्म के कैथोलिकवाद से बहुत मेल खाता था। मदर टेरेसा ने पोप जॉन पॉल द्वितीय का पूरा साथ दिया जिन्होंने न केवल गर्भपात और औरतों के पौरोहित्य में प्रवेश का विरोध किया वरन "लिबरेशन थियोलोजी" के रैडिकल तेवर के भी पक्ष में नहीं थे।[13] डायना स्पेन्सर और मदर टेरेसा पर काथा पोलित ने सही ही टिप्पणी की है, "वे उन श्रेणीबद्ध, सामन्ती, मूलत: पुरुषवादी संस्थाओं के सजावटी फूल हैं, जिनमें खुद उनके पास कोई ढांचागत शक्ति नहीं है, लेकिन वे उन्हीं संस्थाओं की सत्तावादी प्रकृति को छिपाती हैं।"[14] उनके पीछे एक अटूट प्रभुत्ववाद छिपा हुआ है जिसे संत डायना और संत टेरेसा मधुर बनाने का प्रयास करती हैं।

बहुत से लोग विश्वास करते हैं कि वेटिकन द्वितीय ने सामाजिक न्याय और गरीबों के पक्ष में रैडिकल कार्रवाई के आधार पर कैथोलिकवाद को पुनर्स्थापित किया। लेकिन जॉन तेइसवें ने गरीबी के कारणों से टकराने की बात नहीं की, बल्कि उन्होंने अपने अनुयायियों को उत्पादन के साधनों (जिन्हें वह "सम्पत्ति" कहते थे) को अपने हाथों में रखने के बड़ी पूंजी के अधिकार की रक्षा करने का निर्देश दिया। जॉन तेइसवें ने "ईसाईयत और कम्युनिज्म के बीच" भेद किये जाने पर बल दिया

क्योंकि समाजवाद "मानव समाज के एक ऐसे सिद्धान्त पर आधारित है जो समय से बंधा हुआ है और भौतिक कल्याण के अलावा किसी भी अन्य लक्ष्य को ध्यान में नहीं रखता है।" (पैरा 34) समाजवाद का यह विद्रूप पेश करके पोप ने अपने अनुयायियों को वामपंथ से दूरी बनाये रखने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि चर्च को संघर्ष से दूर करने के लिए काम करना होगा और उन अतिवादी सिद्धान्तों का समर्थन करने की व्यापक प्रवृत्ति को रोकना होगा जिनका प्रभाव उन बुराइयों से भी ज्यादा खराब है जिनको मिटाने का ये दावा करते हैं।" (पैरा 14) हालांकि तमाम कैथोलिक वेटिकन की मंजूरी के बगैर ही, बल्कि पोप की "प्रत्यक्ष असहमति" के बावजूद काम करते हैं।[15] इनमें 'लिबरेशन थियोलोजी' का रास्ता अपनाने वाले लोग हैं। 'कैथोलिक वर्कर' की डोरोथी डे का अनुसरण करने वाले कुछ लोग हैं, ईसा द्वारा गरीबी के कारणों से किये गये संघर्ष से प्रोत्साहित होकर इस युग में पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ने वाले रैडिकल तत्व भी हैं। इस परम्परा में अल सल्वाडोर में मार दिये गये आर्कबिशप आस्कर रोमेरो शामिल हैं जिन्होंने दुखों और परेशानियों के ढांचागत कारणों से संघर्ष किया और पीड़ा को महिमामंडित नहीं किया। इसमें डान बेरीगन एस.जे. (अमेरिका) का नाम भी आता है जिन्होंने 1962 में लिखा था "हत्या करना, शांति भंग करना है। जीवंतता, सौम्यता, एकता, निःस्वार्थता ही वह जीने का तरीका है जिसे हमें मान्यता देनी चाहिए। इस जीने के तरीके के लिए हम अपनी आजादी खतरे में डालते हैं। वह समय बीत चुका है जब सज्जन लोग खामोश रह सकते हैं, जब आज्ञाकारिता, लोगों को सार्वजनिक खतरे से अलग कर सकती है, जब गरीब असहाय स्थिति में मर सकते हैं।[16] "इस परम्परा में लातिन अमेरिका के कैथोलिक भी शामिल हैं जिनके बारे में ग्वाटेमाला की सेना ने लिखा था "कैथोलिकों और कम्युनिस्ट विद्रोहियों में कोई अन्तर नहीं है।"[17] मदर टेरेसा के प्रति पक्षपात न करते हुए यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि जब लातिन अमेरिका में गरीबी की जड़ों को न समझ पाने पर उनकी आलोचना हुई तो उन्होंने कहा था "अगर ढांचे को बदलने को लोग अपना कर्तव्य समझते हैं तो उन्हें यही करना चाहिए।"18 हालांकि यह कथन किसी का पक्ष नहीं लेता है, लेकिन यह गरीबी के सम्बन्ध में मदर टेरेसा की असंगत स्थिति को ही प्रस्तुत करता है। यानी अगर गरीबी "खूबसूरत" है और अगर यह अपरिहार्य है तो फिर गरीबी पैदा करने वाले ढांचे को पहचानने और उससे संघर्ष करने का क्या अर्थ है?

शायद मदर टेरेसा के बारे में सबसे अधिक खटकने वाली चीज है उन लोगों का साथ, जो मदर टेरेसा ने सम्भवतः अपने काम के लिए पैसा उगाहने के लिए लिया। इस मामले में निश्चित रूप से वे अकेली नहीं हैं, क्योंकि तमाम गैर सरकारी संस्थाएं (एन. जी.ओ.) धनपतियों के आगे-पीछे लगी रहती हैं, जिनसे वे पैसा उगाहती हैं। यह एन. जी. ओ. परिघटना लोकतंत्र और संघर्ष के स्थल के रूप में राज्य के परित्याग (यानी, सामाजिक अन्याय को दूर करने के उपकरण के रूप में राज्य के परित्याग) की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े करती है। सामाजिक न्याय के लिए हस्तक्षेप करने के मामले से राज्य के पीछे हटने के साथ, विशेषकर 1967-73 के आर्थिक ह्रास के बाद से, एन.जी.ओ. ने इन खाली किये गये क्षेत्रों (जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण आदि) में प्रवेश किया। राबर्ट मैकनामारा के अंतर्गत विश्वबैंक ने राज्य के विकल्प के रूप में एन.जी. ओ. को समर्थन दिया, जिससे कि सत्ता और उत्पादन के भूमण्डलीय सम्बन्ध ज्यों के त्यों बने रहें।[19] मैकनामारा ने गैर सरकारी संस्थाओं के बारे में अपने प्रसिद्ध वक्तव्य 1973 में, नैरोबी में विश्व बैंक के बोर्ड आफ गवर्नर्स की वार्षिक मीटिंग में दिये। यह वह समय था जब वित्तवादियों ने मिल्टन फ्रीडमैन और एफ.ए. हैथक के नेतृत्व में कीन्सवादियों को अपदस्थ करके राज्य की जिम्मेदारियों में विश्वास समाप्त करने (और राज्य को सम्पत्ति के रखवाले की अपनी भूमिका में लौट जाने) का आधार प्रस्तुत किया था।

राजकीय हस्तक्षेप पर वित्तवादी हमले ने गैर सरकारी संस्थाओं को निजी रूप से वित्तपोषित, विकास के अ-राजकीय उपकरण के रूप में सामने आने का मौका दिया। इस तरह, गैरसरकारी संस्थाओं ने राज्य को टैक्स घटाने, और सामाजिक समानता के निर्माण के लक्ष्य को परित्यागने का मौका दिया। अब सर्वहारा और किसानों को एक लोकतांत्रिक राज्य से सुधार की मांग करने के बजाय धनपतियों और गैर सरकारी संस्थाओं के धर्मार्थ परोपकार पर निर्भर रहना था। गैर सरकारी संस्थाएं अपने आर्थिक पोषण के लिए न केवल गणना योग्य स्रोतों (राज्य कोष) पर भरोसा करती हैं, बल्कि निजी चंदों पर भी भरोसा करती हैं (उदाहरण के लिए संस्थाओं और व्यक्तियों से चंदा)। संस्थाओं और व्यक्तियों के लिए ऐसे चंदे के पीछे ढेरों प्रयोजन हैं, जिनमें से केवल एक चैरिटी है। दूसरा प्रयोजन जो शायद प्रधान सूत्र है, उन लोगों के कामों पर लगाम डालने की कोशिश करता है जो गरीबों को जमी-जमाई सत्ता के साथ अवश्यम्भावी मुकाबले के लिए राजनीतिक रूप से संगठित कर रहे हैं।[20] जरा उन लोगों के बारे में सोचिए जिनके साथ अक्सर मदर टेरेसा की तस्वीरें खींची जाती हैं, डायना स्पेंसर, मिशेल दुवालियर, (कुख्यात बेबी डाक दुवालियर की पत्नी), नैन्सी रीगन, हिलैरी क्लिंटन, राबर्ट मैक्सवेल और अंत में चार्ल्स कीटिंग। यह चैरिटी उद्योग की ख्यातिप्राप्त हस्तियां हैं।

चार्ल्स कीटिंग को 'सेविंग्स एंड लोन्स' मामले में हुई भंयकर गड़बड़ी के प्रतीक के रूप में याद किया जाता है जिसमें उसकी खुद की कम्पनी लिंकन सेविंग्स एंड लोन एसोसियेशन लोगों के धन का स्वच्छन्दता से अपव्यय करने के बाद अमेरिकी सरकार द्वारा दी गई दो अरब डालर की जमानत के सहारे बच पाई थी। 1992 में कीटिंग पर ठगी और धोखे के 70 अभियोग दर्ज हुए, और तकनीकी आधार पर बरी किये जाने के पहले, 10 वर्ष की सजा का एक हिस्सा उस जेल में काटना पड़ा। कीटिंग ने न केवल अमरीकी कामगारों से करोड़ों डालर ठग लिये बल्कि पांच सीनेट सदस्यों ('कीटिंग फाइव' के नाम से प्रसिद्ध) को अपनी सजा रुकवाने के लिए भारी रिश्वत दी। अपने "स्वर्णकाल" के दौरान, रीगनवाद की झूठी आशा के प्रभाव में, उसने 12.5 लाख डालर का चंदा मिशनरीज आफ चैरिटी को दिया और मदर टेरेसा को उनके दौरों के लिए अपना निजी विमान दिया। इसी समय उसने अपने दोस्त जेरी फालवेल की बीमार ए.एम.आई. को 85 लाख डालर का ऋण दिया (जेरी फालवेल - कीटिंग का उस समय का दोस्त, जब निक्सन द्वारा नियुक्त अश्लीलता विरोधी कमीशन में कीटिंग ने काम किया था)। जब कीटिंग पर मुकदमे की 1992 में सुनवाई होने वाली थी, तो मदर टेरेसा ने 18 जनवरी 1992 को अपने इस मित्र के पक्ष में जज को एक पत्र लिखा।[21] इसका पहला ही वाक्य पाखण्डपूर्ण विनम्रता से भरा हुआ था। "हम व्यापार, राजनीति या अदालत के कामकाज में घालमेल नहीं करना चाहते हैं।" लेकिन यह पत्र ठीक यही काम करने की कोशिश करता है। मदर टेरेसा ने पत्र में लिखा, "श्रीमान कीटिंग ने गरीबों के लिए बहुत कुछ किया है, इसीलिए आज मैं उनके पक्ष में पत्र लिख रही हूं।" उसके बाद रीगन के अंदाज में मदर टेरेसा कीटिंग के पक्ष में बोलने को सही ठहराने के लिए उसके कामों के प्रति अनभिज्ञता को बहाने के रूप में इस्तेमाल करती हैं, "मैं श्रीमान चार्ल्स कीटिंग के काम और व्यापार या उन मामलों जिन पर आप उनसे व्यवहार कर रहे हैं, के बारे में कुछ भी नहीं जानती, मैं तो सिर्फ इतना जानती हूं कि वे गरीबों के लिए हमेशा से दयावान और स्नेही रहे हैं और जहां जरूरत हो मदद पहुंचाने के लिए तत्पर रहे हैं।" वह जज इटो से अपने हृदय में झांकने, प्रार्थना करने और यीशु के उदाहरणों का अनुकरण करने को कहती हैं। या तो यह मदर टेरेसा का भोलापन है, जिसकी सम्भावना कम है, या मदर टेरेसा कीटिंग के पैसा बनाने के तरीकों से कोई सरोकार नहीं दिखाना चाहती हैं, जिस पैसे का एक बड़ा ही तुच्छ भाग मदर टेरेसा के नाम की प्रतिष्ठा अपने लिये हासिल करने के लिए चैरिटी के रूप में दिया गया था।

दूसरी गैर-राजनीतिक सेवी संस्थाओं की ही तरह, मदर टेरेसा भी अंततोगत्वा अपने हितकारियों

के लिए अपने सिद्धान्तों से समझौता करती हैं। 1995 में आयरलैण्ड में तलाक और पुनर्विवाह पर संविधानिक रोक हटाने के लिए जनमत-संग्रह के दौरान मदर टेरेसा ने पूरे क्षेत्र में घूम-घूमकर नारीवादियों के विरुद्ध प्रचार किया, जिनके लिए यह एक महत्वपूर्ण संघर्ष था (वे एक मामूली अंतर से जीतीं, उन्होंने 49.7 प्रतिशत वोट के खिलाफ, 24 नवम्बर 1995 को 50.3 प्रतिशत वोट प्राप्त किये)। ठीक इसी समय चार्ल्स और डायना ने तलाक लेने का फैसला किया (20 नवम्बर को डायना ने बीबीसी को दिये एक साक्षात्कार में यह कहा)। मदर टेरेसा ने 'लेडीज होम जरनल' को एक साक्षात्कार में इस विवाह पर टिप्पणी करते हुए कहा, "कोई भी खुश नहीं था।"[22] उनके लिए जिनके हाथ में शक्ति है, उनके एक सिद्धान्त हैं और जो शक्तिहीन हैं उनके लिए दूसरे। इस तरह के सिद्धान्तों के अंतर के ढेरों उदाहरण हैं।

2-3 दिसम्बर 1984 की रात को यूनियन कार्बाइड फैक्टरी से मेथिल आइसोसाइनाइट गैस लीक होने से हजारों लोग मारे गये थे। यूनियन कार्बाइड द्वारा भोपाल का सामूहिक हत्याकाण्ड, किसी भी बहुराष्ट्रीय कारपोरेशन द्वारा अपने मुनाफे के लिए मानव जीवन की उपेक्षा का सबसे घिनौना उदाहरण है। 1983 में यूनियन कार्बाइड की बिक्री 9 अरब डालर तक पहुंच गयी, और उसकी परिसम्पत्ति 10 अरब डालर आंकी गयी। इस सम्पत्ति का एक भाग सुरक्षा के साधनों की उपेक्षा करने से आया था। यूनियन कार्बाइड ने केवल भारत ही नहीं बल्कि अपने वर्जीनिया प्लांट में भी सुरक्षा के उचित उपाय नहीं किये हैं। इस काण्ड के बाद मदर टेरेसा भोपाल गयीं और दो सरकारी कारों में सरकारी अमले के साथ जाकर उन्होंने भोपाल त्रासदी के शिकार लोगों को सेन्ट मैरी के अल्युमिनियम के मेडल बांटे। इस त्रासदी में जीवित बचे लोगों से मदर टेरेसा ने कहा, "यह एक दुर्घटना हो सकती है, जैसे कहीं भी आग लग सकती है। इसलिए क्षमा कर देना जरूरी है। माफी दे देने से दिल हल्का हो जाता है और माफ कर देने के बाद लोग हजार गुना बेहतर महसूस करते हैं।" पोप जॉन पॉल द्वितीय ने भी मदर टेरेसा का समर्थन करते हुए यह विश्लेषण प्रस्तुत किया कि यह एक "त्रासद घटना है जो "आदमी के विकास करने के प्रयासों से हुई है"[23] दिल दहला देने वाले ये दोनों कथन पूंजीवादी लालच के एक घिनौने उदाहरण पर पर्दा डालने के प्रयास हैं।

बंगाल के सर्वहारा और किसान हर दिन राजनीतिकरण की प्रक्रिया के बीचोबीच होते हैं। राहत पाने के लिए कुछ मदर टेरेसा की शरण में चले जाते हैं (ठीक वैसे ही जैसे वे रामकृष्ण मिशन की शरण में जाते हैं जो यूरो-अमेरिकन मीडिया को कम नजर आता है) और कुछ अन्य उनकी निरंतर गतिविधियों को देखकर धोखा खा जाते हैं। बुर्जुआओं से अलग, मदर टेरेसा हमेशा साधारण कपड़े पहनती थीं और स्वयंस्वीकृत कभी खत्म न होने वाले रास्ते पर हमेशा विनम्र भाव में चलती रहती थीं। मदर टेरेसा का वास्तव में निरर्थक श्रम, सर्वहारा वर्ग, किसानों और बेरोजगारों को सार्थक लगता है जिसकी रोशनी में वे अपने श्रम को देखते हैं। जैसे-जैसे समाज में विभाजक रेखा स्पष्ट होती जायेगी और जैसे-जैसे कम्युनिस्ट गरीबी के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों की वास्तविकता साफ करते जायेंगे, लोगों की श्रद्धा घटती जायेगी। लेकिन यह मदर टेरेसा के बारे में एक निबन्ध नहीं है। इस लेख का प्रयास चैरिटी उद्योग के प्रति एक सही नजर बनाना है, जो कि बुर्जुआ अपराध बोध के लिए एक परनाले का काम करता है। निश्चित रूप से बुर्जुआ अपराधबोध को छिपाने के लिए भविष्य में ऐसी तमाम मदर टेरेसा पैदा होंगी; वह अपराध बोध जो स्वयं पूंजीवादी शासन के अंतर्गत असमाधेय है।

टिप्पणियां

1. वी.आई. लेनिन, 3 दिसम्बर, 1905 संकलित रचनाएं, खण्ड- 10 पृ.- 86-87 (अंग्रेजी संस्करण)

2. मैल्कम मगरिज, समथिंग ब्यूटीफूल फार गॉड : मदर टेरेसा आफ कलकत्ता, हार्पर एण्ड रोड, न्यूयार्क, 1971

3. निस्संदेह, डोमनिक-लापियर की 'बेस्टसेलर' किताब द सिटी आफ जॉय (गार्डन सिटी डबलडे, 1985) और इस पर आधारित हालीवुड फिल्म ने इस छवि को बढ़ाया। जान हटनिक की द रबूमर आफ कलकत्ता : टूरिज्म, चैरिटी एण्ड द पावर्टी आफ रिप्रेसेन्टेशन, जेड, लंदन, 1996 भी

4. 1943 के अकाल पर, देखें - ए.के. सेन फेमाइन मार्टेलिटी: ए स्टडी आफ बंगाल फेमाइन आफ 1943' पीजेंट इन हिस्ट्री : एस्सेयस इ आनर आफ डेनियल थार्नर, ई.जी. हाब्सबॉम (एडिटेड) समीक्षा ट्रस्ट और आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1980।

5. क्लाड लेवी-स्ट्रास, ट्रिस्टेस टापिक्वेस पेंगिवन, हारमण्डसवर्थ, 1992, पृष्ठ 133-134

6. अधिकांश लोग डेनियल पी. मोयनिहान के 1979 के इस रहस्योद्घाटन से अनभिज्ञ हैं : "हमने दो बार, लेकिन सिर्फ दो बार भारतीय राजनीतिक पार्टियों को पूंजी उपलब्ध कराने के विस्तार तक भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप किया था। दोनों बार यह राज्य चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी की संभावित विजय की स्थिति में हुआ, एक बार केरल में और एक बार पश्चिमी बंगाल में, जहां कलकत्ता स्थित है।" ए डेन्जरस प्लेस सेकर एण्ड वारबर्ग, लंदन, 1979, पृष्ठ 41। "दो बार" की संस्था से असहमति व्यक्त की जा सकती है।

7. सुनील सेनगुप्ता और हैरिस गजदार 'एग्रेरियन पालिटिक्स एण्ड रूरल डेवलपमेण्ट इन वेस्ट बंगाल' इण्डियन डेवलपमेण्ट : सलेक्टेड रीजनल पर्सपेक्टिव्स, जीन ड्रेज और अमर्त्यासेन (सम्पादक) आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 159। यही मत जी.के. लाइटेन का भी है (कान्टिन्यूटी एण्ड चेंज इन रूरल वेस्ट बंगाल, सेज, दिल्ली, 1992) और नील वेब्स्टर का भी पंचायती राज एण्ड दि डीसेन्ट्रलाइजेशन आफ डेवलपमेण्ट प्लानिन्ग इन वेस्ट बंगाल, (के.पी. बागची, कलकत्ता, 1992) में यही मत है।

8. हेनरिटे पीटर्स, मैरी वार्ड : ए वर्ल्ड इन कान्टेम्प्लेशन, लियोमिन्स्टर : ग्रेसविंग, 1994।

9. द लैंसेट, 17 सितम्बर, 1994

10. क्रिस्टोफर हिचेन्स, द मिशनरी पोसशिन : मदर टेरेसा इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस वर्सो, लंदन, 1995, पृष्ठ 41 और 50।

11. एम.के. गांधी, सोशलिज्म आफ माई कन्सेप्शन, नवजीवन, अहमदाबाद, 1966, पृष्ठ 52।

12. बारबरा क्रोसेट, 'पाप्प पुशेज द पूअरेस्ट फ्राम मदर टेरेसा' ज लासट राइट्स न्यूयार्क टाइम्स, 14 सितम्बर, 1997, पृष्ठ - 14।

13. इस सम्बन्ध में मदर टेरेसा के 5 फरवरी, 1994 को वाशिंगटन डी.सी. में राष्ट्रीय प्रार्थना सभा में असाधारण भाषण में दिये गये, को देखा जा सकता है, जिसमें उन्होंने घोषणा की 'शान्ति का सबसे बड़ा विध्वंसक आज गर्भपात है।"

14. काथा पोलित, थौरोली मॉडर्न डाई, द नेशन 29 सितम्बर, 1997, पृष्ठ 9 ।

15. अचिन वैनाएक, 'नो सेंस आफ प्रपोर्शन', द हिन्दू, 12 सितम्बर, 1997, पृष्ठ -12।

16. हावर्ड जिन, ए पीपल्स हिस्ट्री आफ द युनाइटेड स्टेट्स, हार्पर, न्यूयार्क, 1990, पृष्ठ 479।

17. जेम्स डन्करले, पावर इन द इस्थमस : पोलिटिकल हिस्ट्री आफ मार्डन सेन्ट्रल अमेरिका, वर्सो, लंदन, 1988, पृष्ठ 494।

18. ईलीन एम ईगन, "ब्लेस्ड आर द मर्सीफुल' : मदर टेरेसा (1910-1997), अमेरिका, 20 सितम्बर, 1997, पृष्ठ 19। उनके इसके पहले के, और विस्तृत अध्ययन, को देखा जा सकता है जो हालांकि इनमें से किसी भी कठिन मुद्दे को नहीं समेटता, सच ए विजन आफ द स्ट्रीट : मदर टेरेसा, द स्पिरिट एण्ड द वर्क, एन.जी. डबलडे, गार्डेन सिटी, 1985।

19. द वर्ल्ड बैंक्स पार्टनरशिप विद नॉनगवर्नमेन्टल आर्गनाइजेशनस, वर्ल्ड बैंक, 1996

20. प्रकाश कारत, फारेन फण्डिंग एण्ड दि फिलासफी आफ वालन्टरी आर्गनाइजेशनस्, नेशनल बुक सेन्टर, न्यू दिल्ली, 1988 और इकोनामिक डेवलपमेण्ट एण्ड ग्रास रूट आर्गनाइजेशनस् कैन दे वर्क टुगेदर?" के शीर्षक से प्रसिद्ध थर्ड फोर्स (मार्च-अप्रैल 1997) के मुद्दे पर तमाम योगदान।

21. हिचेन्स के, द मिशनरी पोजीशन से उद्धृत, पृष्ठ 64-71; उनकी चैनल फोर के लिए डाक्यूमेन्ट्री हेलस एन्जेलस (1994) जरूर देखिये।

22. क्रिस्टोफर हिचेन्स, थ्रोन एण्ड आल्टर, द नेशन, 29 सितम्बर 1997 पृष्ठ 7।

23. तारा जोन्स, कार्पोरेट किलिंग : भोपालस विल हैपेन, फ्री एसोसियेशन बुक्स, लंदन, 1988, पृष्ठ 32 और 298।

अनुवाद : अभिनव सिन्हा

('इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली' से साभार)

भाजपा गठबंधन का सत्तारोहण : पूंजीवादी राजनीति-अर्थनीति का एक नया मोड़बिन्दु

पूंजीवादी व्यवस्था का संकट : निरंकुश दमनतंत्र की आहटें

○ सत्यम वर्मा

भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले 18 दली गठबंधन की सरकार के तीन माह के भीतर ही इस सरकार के कामकाज की आम दिशा सामने आ गई है। निश्चित तौर पर, जैसा कि संसद में बैठे तमाम सामाजिक जनवादी भी ठीक कह रहे हैं, यह कुछ अर्थों में संसदीय राजनीति का एक मोड़बिन्दु है। पर ऐसा सिर्फ इसलिए नहीं है कि पिछले तकरीबन बारह वर्षों में हिन्दू कट्टरपंथ का भगवा झण्डा लहराते हुए भाजपा ने अपने सांसदों की संख्या दो से बढ़ाकर 192 कर ली और सत्ता में आ गई। वह भाजपा जिसके पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसा फासिस्ट संगठन खड़ा है, वही आर.एस.एस. जिसकी 1925 में स्थापना से लेकर पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन में कोई भूमिका नहीं रही और जिसके फासिस्ट चरित्र के बारे में कुछ कहना दोहराव ही होगा।

भाजपा का केन्द्र की सत्ता में आना, इस रूप में ज्यादा मोड़बिन्दु है कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों की 10 वर्षों की पृष्ठभूमि (1980-90), राव-मनमोहन के पांच वर्ष के शासनकाल में इन नीतियों के अमल के साथ जो प्रक्रिया शुरू हुई थी उसका यह एक खास पड़ाव है। उदारीकरण-निजीकरण -भूमण्डलीकरण की नीतियों पर अमल के दौरान ही गहरे आर्थिक संकट और राजनीतिक अस्थिरता की शुरुआत हो गई थी, जिसके बाद अरबों के खर्च से हुए चुनावोपरांत 'लटक' संसद और तेरह दिनी भाजपा सरकार तथा तेरह मुखी संयुक्त मोर्चा सरकार के प्रयोग सामने आये और फिर एक खर्चीले चुनाव तथा 'लटक' संसद के बाद भाजपा के नेतृत्व में अठारह छोटी-बड़ी पार्टियों का गठजोड़ सत्तारूढ़ हुआ।

इस राजनीतिक अस्थिरता के पीछे जो गहरी और दूरगामी तौर पर अधिक खतरनाक आर्थिक और सामाजिक अस्थिरता और संकट रहा है, भाजपा का सत्तारूढ़ होना, उस संकट के एक खास मुकाम पर पहुंच जाने का द्योतक है।

बड़े पूंजीपति वर्ग ने जिन स्थितियों में इस विकल्प को चुना है और केन्द्र में सत्तासीन होने का अवसर दिया है, वह भारतीय अर्थनीति ही नहीं, पूरे भारतीय समाज के संकट के एक खास फैसलाकुन मुकाम पर पहुंच जाने का द्योतक है।

इस स्थिति के कुछ गहरे निहितार्थ होंगे और सभी प्रगतिशील सच्चे वामपंथियों व क्रान्तिकारी शक्तियों को इन स्थितियों का गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिए जिससे एक कारगर रणनीति बनाई जा सके।

यहां भाजपा के सत्ता में आने की पृष्ठभूमि पर एक सरसरी निगाह डाल लेना जरूरी है।

संयुक्त मोर्चा सरकार से समर्थन वापस लेकर भाजपा के सत्तारोहण की तात्कालिक परिस्थिति तैयार करने के पीछे कांग्रेस अध्यक्ष सीताराम केसरी की निजी महत्वाकांक्षा ही नहीं, अपने रहे-सहे जनाधार को भी खोते जाने से रोकने की कांग्रेस की राजनीतिक विवशता भी थी। कांग्रेस आधी सदी से भारत के बड़े पूंजीपति वर्ग की विश्वसनीय पार्टी रही है। यह वर्ग उस पर इसलिए भी विश्वास करता रहा है कि राजकाज चलाने का इसका अनुभव ज्यादा रहा है। लेकिन पिछले एक दशक का घटनाक्रम कांग्रेस के वोटबैंक के निरंतर सिकुड़ते जाने और पार्टी के बिखराव का साक्षी रहा है। इसके लिए कांग्रेस नेतृत्व की चुनावी रणनीतिगत चूकें तो जिम्मेदार रही ही हैं, एक प्रमुख कारक यह भी रहा है कि लाइसेंस-कोटा राज या सार्वजनिक क्षेत्र पर आधारित पूंजीवाद के दौर में तो कांग्रेस कुशलतापूर्वक पूंजीपति वर्ग की सेवा करती रही, पर नये दौर में की राजनीति व अर्थनीति के संचालन में महारत हासिल करने में उसे कुछ समय लगना ही था। यही वह दौर था, जब उसके प्रबल प्रतिद्वंद्वी के रूप में भारतीय जनता पार्टी कंधा रगड़ने लगी थी।

हिटलर की प्रशंसा करने वाले और राष्ट्रीय आन्दोलन में कोई भूमिका न निभाने वाले आर.एस.एस. के चुनावी राजनीति के विंग के रूप में भारतीय जनसंघ 1952 के आम चुनाव से ही एक धुर दक्षिणपंथी पूंजीवादी शक्ति के रूप में मौजूद रहा है। शुरू से ही यह पार्टी निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की बात करती रही है और पश्चिम की ओर खुला झुकाव प्रदर्शित करती रही है। चूंकि आजादी के बाद समाजवादी मुखौटाधारी सार्वजनिक क्षेत्र की नीतियां पूंजीपति वर्ग की भी जरूरत थीं, इसलिए नेहरू से लेकर इंदिरा गांधी तक कांग्रेस का वोट बैंक सुनिश्चित रहा। जनसंघ का आधार मुख्यत: बड़े व्यापारियों और शहरी मध्यवर्ग के अधिक अनुदार (कंजरवेटिव) हिस्से तक सिमटा रहा।

सारी दुनिया में आर्थिक कट्टरपंथ का जो दौर चला, उसी के सहगामी के तौर पर राजनीतिक कट्टरपंथ का भी तेजी से फलना-फूलना अनायास ही नहीं था। भारत की परिस्थितियों में धार्मिक कट्टरपंथी नारे देकर राजनीतिक कट्टरपंथ की राजनीति करने वाली भाजपा जैसी पार्टी के लिए यह स्थिति सर्वथा अनुकूल थी। पिछले लगभग बारह वर्षों के भीतर जहां तमाम धार्मिक व अंधराष्ट्रवादी हथकण्डे इस्तेमाल कर इसने अपना जनाधार बढ़ाया वहीं साम्राज्यवादी देशों व देशी बड़े पूंजीपति वर्ग की आशंकाओं को दूर कर उन्हें यह विश्वास दिलाने में सफल रही कि वह नये दौर की नयी आर्थिक नीतियों को व्यावहारिक ढंग से लागू कर सकती है।

अमेरिकी अर्थशास्त्री **लेस्टर थरो**, अमेरिका के पूर्व श्रम मंत्री **राबर्ट रीच**, फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **जॉक अत्ताली** और हंगरी के अर्थशास्त्री **जार्ज सोरेस** जैसे बुर्जुआ विचारकों को मानना है, और दुनिया के अनेक मुल्कों में उदारीकरण-निजीकरण भूमण्डलीकरण की नीतियों के अमल का उदाहरण भी यही बताता है कि ये नीतियां किसी भी देश में, ऐसे राजनीतिक फ्रेमवर्क के भीतर ही पूरी तरह लागू हो सकती हैं जो सर्वसत्तावादी और निरंकुश किस्म का हो—चाहे लातिनी अमेरिकी देशों की सैनिक जुन्ताओं का शासन हो, या साम्राज्यवाद प्रायोजित चुनाव के बाद सत्तारूढ़ हुई फूजीमोरी (पेरू), रामोस (फिलिप्पीन्स) या सुहार्तो (इण्डोनेशिया) की सरकारें हों। इस रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय जनता पार्टी का सत्तासीन होना महज संसदीय राजनीति का संकट या संसदीय राजनीति के चरित्र में आने वाला बदलाव मात्र नहीं है। सन् '47 में विकास का पूंजीवादी रास्ता अख्तियार करने के बाद पूरे भारतीय समाज के आर्थिक-सामाजिक ढांचे के विकास की जो प्रक्रिया आम तौर पर पिछले 50

वर्षों से जारी थी, और खासतौर पर राव-मनमोहन-चिदम्बरम की नीतियों ने जिससे तेज किया, यह उसी की तार्किक परिणति है। पूर्व राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण ने करीब पांच वर्ष पूर्व ही कहा था कि नई आर्थिक नीतियां केवल एक निरंकुश ढंग के शासन तंत्र के भीतर ही लागू की जा सकती हैं। यह अनायास नहीं है कि आज श्री वेंकटरमण भाजपा के काफी करीब हैं।

आर्थिक कट्टरपंथ की नीतियों का लागू करने के लिए राजनीतिक सर्वसत्तावादी शासन कायम करना शासक वर्ग की मजबूरी है, अपने दूरगामी हितों के मद्देनजर वह इसे चाहे या न चाहे। पूंजीपति वर्ग यदि पूंजीवादी जनवाद को बरकरार रखना भी चाहे तो भी इन नीतियों के साथ उसका तालमेल ज्यादा दिन नहीं चल सकता। उदारीकरण-निजीकरण-भूमण्डलीकरण की नीतियों को खुलकर और जमकर लागू करने के लिए एक सर्वसत्तावादी व निरंकुश शासन की जरूरत पड़ेगी, यह तय है। यह धार्मिक कट्टरपंथी भाजपा के शासन के रूप में भी हो सकता है, और कांग्रेस के उस किस्म के शासन के रूप में भी जिसकी छोटी सी बानगी आपातकाल के दौरान जनता देख चुकी है।

इस पृष्ठभूमि में भारतीय जनता पार्टी की कथनी और करनी को समझा जा सकता है।

स्वदेशी के संघ परिवार के नारे के दो पहलू रहे हैं। एक तो यह लोकलुभावन नारे के रूप में था जो भाजपा को विपक्ष में बैठकर राव-मनमोहन-चिदम्बरम की नीतियों की आलोचना करने का अवसर प्रदान करता था। दूसरे यह भाजपा जैसी पार्टियों के अंधराष्ट्रवादी तेवर (जैसे भाजपा/संघ का 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद') से भी मेल खाता है। राष्ट्रीय गौरव की बहाली के नाम पर ऐसे नारे मध्यवर्ग के बहुत बड़े हिस्से को अपील करते हैं।

लेकिन भाजपा की दुविधा यह थी कि उसे इसके साथ ही देशी-विदेशी पूंजीपतियों को भी यह विश्वास दिलाना था कि वह उनके हितों की रखवाली कर सकती है। अटल-आडवाणी-जोशी आदि नियमित रूप से अमेरिका-यूरोप-जापान की यात्राएं करके उन्हें यकीन दिलाने में लगे रहते थे कि उनका स्वदेशी भूमण्डलीकरण का सीधा विरोध नहीं करता बल्कि महज देशी पूंजीपतियों के हितों का ध्यान रखने की बात करता है। भाजपा के नेता स्वदेशी की दो व्याख्याएं देते रहे हैं। फिक्की, सी.आई.आई., एसोचैम जैसी पूंजीपतियों की संस्थाओं के मंचों पर वे स्वदेशी का यह अर्थ समझाते हैं कि वे देशी बाजार में विदेशी कम्पनियों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए देशी पूंजीपतियों को "बराबरी का अवसर" मुहैया करना चाहते हैं। विदेशी पूंजी के मुनाफे में से देशी बड़ी पूंजी को थोड़ा और अधिक हिस्सा दिलाना चाहते हैं। इसमें जनता, जनहित, राष्ट्रहित जैसी बातें गायब रहती हैं। लेकिन जब इसी स्वदेशी का अर्थ जनसभाओं के मंचों से समझाया जाता है तो उसमें तरह-तरह के लोकलुभावन जुमलों-फिकरों की छौंक-बघार लगा दी जाती है।

लेकिन आज ऐसी ताकतों की विडम्बना यह है कि आर्थिक-राजनीतिक विवशताएं इनके दोहरेपन को सत्ता में आने के साथ ही उजागर कर दे रही हैं। सत्ता में आने के साथ ही वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा ने अमेरिका की दौड़ लगाई और विदेशी पूंजी को न्यौता देने के लिए भाजपा के 'स्वदेशी' की एक अद्भुत व्याख्या प्रस्तुत कर डाली। भारत में फिक्की और सी.आई.आई. के मंचों पर वित्तमंत्री और प्रधानमंत्री ने देशी पूंजीपतियों को आश्वस्त किया कि सरकार वैसे ही चलेगी, जैसे वे चाहेंगे। चंद हफ्तों के शासन में ही भाजपा सरकार ने जिस ढंग के निर्णय लिये हैं और जो बयान आये हैं, वह स्वदेशी तथा आर्थिक नीतियों के मुद्दे पर उसके दोहरेपन का पर्दाफाश करने के लिए काफी हैं।

जिन नई आर्थिक नीतियों के पिछले सात-आठ वर्षों के अमल के परिणामस्वरूप देश में विस्फोटक हालात बन रहे हैं, तय है कि भाजपा उन नीतियों को और तेजी से लागू करेगी। इस समय बेरोजगारों की तादाद बीस करोड़ तक पहुंच चुकी है और सदी के अन्त तक इसके दोगुना हो जाने की आशंका व्यक्त की जा रही है। बाजार की अंधी शक्तियों की मार से किसान अपनी जगह-जमीन से उजड़ रहे हैं। खेतिहर मजदूर बनने को बाध्य हो रही भारी ग्रामीण आबादी की खपत पंजाब-हरियाणा के खेतों में भी नहीं हो पा रही है। कानपुर, बम्बई, अहमदाबाद जैसे परम्परागत औद्योगिक केन्द्रों में तो पहले से ही छंटनीशुदा मजदूरों की भारी फौज मौजूद है, आधुनिक औद्योगिक केन्द्रों में भी मजदूरों की खपत नहीं हो रही है। विशालकाय बांधों और निर्माण परियोजनाओं से उजड़ी भारी आबादी बेघर-बेदर होकर सड़कों पर भटक रही है। करीब एक करोड़ आबादी को रोजगार मुहैया कराने वाला हथकरघा उद्योग तबाह हो रहा है और करीब आधे करघे बंद पड़े हैं। संगठित क्षेत्र में निजीकरण-छंटनी-तालाबंदी का सिलसिला तेज हो रहा है। रेलवे के कर्मचारियों की तादाद 18 लाख से घटते-घटते 13 लाख पहुंच चुकी है और अगले कुछ सालों में इसे तेजी से कम करके नौ लाख पर लाया जाना है। रेल, सड़क, बिजली आदि के टुकड़े-टुकड़े में निजीकरण की प्रक्रिया और तेज होगी। श्रम कानूनों को और उदार (यानी श्रम विरोधी) बनाने की प्रक्रिया और जोर पकड़ेगी। जिन बुनियादी क्षेत्रों में पूंजी लगाने के लिए भाजपा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दावत दे रही है, उनमें भारी पूंजी निवेश के लिए इन कम्पनियों तथा साम्राज्यवादी देशों की पहली शर्त रही है कि श्रम कानूनों को "उदार" बनाया जाये यानी मजदूरों को मर्जी के मुताबिक हटाने और वेतन एवं सेवाशर्तों के मामले में उन्हें पूरी छूट दी जाये। तमाम देशी पूंजीपति यह मांग रख रहे हैं कि ऐसे 'एक्सपोर्ट जोन' बनाये जायें जहां श्रम कानून लागू ही न हों। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि बुनियादी सुविधाओं का तेजी से निजीकरण हो रहा है जिससे आम आबादी की पहुंच से ये दूर होती जा रही हैं। देशभर में लगातार छोटे-बड़े जनआन्दोलनों के फूटने का सिलसिला जारी है।

यह स्थिति अकेले भारत में नहीं, तीसरी दुनिया के उन तमाम देशों में है जहां निजीकरण-उदारीकरण-भूमण्डलीकरण की नीतियां लागू होती रही हैं। दुनिया भर के बुर्जुआ अर्थशास्त्री एक ओर इस स्थिति को लेकर चिन्तित हैं, दूसरी ओर वे ढलान पर इस लुढ़काव को रोक भी नहीं सकते हैं। यह उनकी इच्छा से स्वतंत्र है। पूंजी की गति पूंजीपति वर्ग की इच्छा से नहीं चलती, बल्कि पूंजीपति वर्ग ही पूंजी का गुलाम होता है। उनकी चिन्ताएं वास्तविक हैं लेकिन उनके द्वारा सुझाए जा रहे उपाय नहीं।

हमारा भी मानना है कि लातिनी अमेरिकी देशों तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से भी ज्यादा विस्फोटक स्थिति भारत सहित पूरे उपमहाद्वीप में पैदा होने वाली है। ऐसे में यहां भी वही होगा जो तीसरी दुनिया के कई देशों में हो चुका है। किसी भी तरह के विरोध को कुचलने के लिए निरंकुश सत्ता खुले फासिस्ट शासन का भी रूप ले सकती है। भाजपा का जो चाल, चेहरा, चरित्र और चिन्तन है, उसके हिसाब से यह सर्वाधिक अनुकूल ढंग से इस काम को कर सकती है। लेकिन स्थितियों के गर्भ में एक और सम्भावना भी छिपी है। यदि शासक वर्गों की आपसी खींचातानी में तथा विभिन्न राजनीतिक हितों के टकराव में सरकार को बीच में ही जाना पड़ा तो ऐसी स्थिति का फायदा उठाने के लिए कांग्रेस भी उदारीकरण के दौर के नये अवतार के रूप में अपने को पेश करने के वास्ते पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों का विश्वास फिर से पाने के प्रयास में लगी हुई है। संकटकाल में दमन का पाटा चलाने की जिम्मेदारी इसे भी सौंपी जा सकती है, आखिर देशी-विदेशी लुटेरों से इसका पुराना साथ रहा है।

भाजपा ने आने वाले समय की तैयारियां शुरू कर दी हैं। मीडिया, सूचना तंत्र, शिक्षा संस्थानों और सांस्कृतिक संस्थाओं से लेकर तमाम तथाकथित स्वायत्त संस्थाओं में "अपने" लोग बैठाये जा रहे हैं। नौकरशाही के ढांचे का अनुकूलन किया जा रहा है। दमन तंत्र को ज्यादा चाक-चौबन्द किया जा रहा है। संविधान की समीक्षा की बातें

का जनता के लिए केवल इतना अर्थ है कि पूंजीवादी संविधान प्रदत्त रहे-सहे अधिकारों को भी खत्म करके संकटकाल से निपटने के लिए उसके प्रावधानों को और चाक-चौबंद कर दिया जाये। राष्ट्रपति प्रणाली लागू करने का माहौल भी इसी उद्देश्य से बनाया जा रहा है। फासिस्ट हमेशा ही ऐसा करते हैं। यह अनायास नहीं है कि सेना और पुलिस के अधिकारियों को बड़ी तादाद में भाजपा में शामिल किया गया है। अपराधियों और माफिया सरगनाओं की भाजपा में बढ़ती संख्या से जिन लोगों को यह भ्रम हो कि भाजपा का ''संघी'' चरित्र कमजोर हुआ है, उन्हें हम बस इतना याद दिलाना चाहेंगे कि हिटलर के नेतृत्व में नात्सी पार्टी जब सत्ता पाने के करीब पहुंच रही थी तो उसने तेजी से अपराधी तत्वों की भरती शुरू कर दी थी।

मध्यमार्गी शक्तियों और सामाजिक जनवादी पूंजीवाद की दूसरी सुरक्षा पंक्ति के रूप में अपनी भूमिका निभा चुके हैं। यह दौर संसदीय वामपंथ के दोगले चरित्र के पर्दाफाश का भी दौर है। यह इस कदर निर्वीर्य हो चुका है कि संसद में हवाई गोले भी ठीक से नहीं छोड़ पा रहा है। इनकी समस्या यह है कि नई आर्थिक नीतियों पर सहमति के बावजूद अपने वोट बैंक को बचाये रखने और लाल झण्डे के नाम पर गरीबों, मजदूरों, निम्न मध्यवर्ग के बीच बचे-खुचे अपने आधार को कायम रखने के लिए उनके हित की कुछ बातों को लेकर इन्हें चिल्लाते रहना होगा। अपनी गिरती हालत में भी इन्हें निरंकुश पूंजीवादी राजनीति के स्वांग को ज्यादा विश्वसनीय बनाने में अपनी भूमिका निभाते रहना है।

इस मध्यमार्गी राजनीति के साथ ही साथ दलितों के बीच से ''सरकारी ब्राह्मण'' बन चुके मध्यवर्गीय/उच्च मध्यवर्गीय तबकों से ताकत लेकर सामने आया तथाकथित दलित उभार की बढ़त का दौर भी अब खत्म हो चुका है। इसकी मुख्य प्रतिनिधि बहुजन समाज पार्टी तथा कांग्रेस के पुछल्ले के रूप में फिर से उभरी रिपब्लिकन पार्टी जैसी पार्टियों का पूरा चरित्र और ढांचा ही घोर गैर जनतांत्रिक और फासिस्ट किस्म का है। इनके पास न तो कोई आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम है और न ही इन्हें अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए किसी से भी हाथ मिला लेने में कोई गुरेज रहा है। व्यापक दलित आबादी की मुक्ति से इनका कोई लेना-देना नहीं है। इनकी राजनीति भी अब एक जगह आकर ठहर चुकी है जहां से यह राजनीतिक ब्लैकमेलिंग करने लायक ताकत भले बने रहें पर इनके आगे जाने की कोई संभावना नहीं है।

इतिहास के इस मोड़ पर पहुंचकर भाकपा-माकपा-भाकपा (माले) सरीखे संसदीय वामपंथियों का भी पूरी तरह पर्दाफाश हो चुका है। हमेशा की तरह फिर इस बार इनके पास ''खोने के लिए संसदीय राजनीति की सुविधाओं के सिवा कुछ भी नहीं है और पाने के लिए संसद की पूरी दुनिया'' है। बेशर्मी से हंसिया-हथौड़ा लिए भंडुवों-मीरासियों की यह पूरी जमात बुर्जुआ व्यवस्था की हिफाजत के लिए मुस्तैद रही है और खुली बुर्जुआ पार्टियों के असफल हो जाने की स्थिति में इस व्यवस्था की दूसरी रक्षापंक्ति बनने का मौका पाने को तत्पर रही है। सोमनाथ चटर्जी या इंद्रजीत गुप्त की चिंता इस बात की नहीं है कि मेहनतकश जनता पर कैसा कहर बरपा हो रहा है। उनकी चिंता इस बात की है कि भाजपा जैसी ताकतें बुर्जुआ संसदीय परंपराओं को छिन्न-भिन्न कर दे रही हैं। बसपा जैसी पार्टियां संसदीय खेल के नियमों का ठीक से पालन नहीं कर रही हैं। फिर इसमें क्या आश्चर्य कि इन लाल झंडी वाले बात-बहादुरों को उसी बुर्जुआ संसद में सर्वश्रेष्ठ सांसद का पुरस्कार मिला है जिसे लेनिन ने ''सुअरबाड़ा'' कहा था। इनकी सारी चिंता बुर्जुआ संसदीय व्यवस्था की इज्जत लुटने से बचाने की रही है। संसदीय सुअरबाड़े में जब धींगा-मुश्ती मचती है तो सोमनाथ चटर्जी और इंद्रजीत गुप्त भी उतना ही विधवा-विलाप करते हैं जितना कि चंद्रशेखर। ये संसदीय मुर्गे किसी भी तरह अवाम को गोलबंद करके फासिस्ट ताकतों का मुकाबला नहीं कर सकते।

बुनियादी आर्थिक नीतियों के सवाल पर इन ''वामपंथियों'' सहित सारी चुनावी पार्टियां एक हैं। ऐसे में स्वाभाविक है कि इन नीतियों को लागू करने के लिए जिस तरह के निरंकुश ढांचे वाली पार्टियों की जरूरत शासक वर्ग को है उसमें अव्वल नंबर भाजपा का और फिर कांग्रेस का है। ऐसी स्थिति में ये नकली वामपंथी सिर्फ अवाम में पराजय बोध भरते हैं और अपने आचरण से साबित करते हैं कि ये नीतियां तो अपरिहार्य हैं।

भाजपा की छतरी तले जुटी या फिलहाल संयुक्त मोर्चा से सटी तमाम क्षेत्रीय पार्टियों के चरित्र में ज्यादा अन्तर नहीं है। क्षेत्रीय पूंजीपति वर्ग और पूंजीवादी भूस्वामियों के वर्गचरित्र के ही अनुरूप इनका चरित्र घोर निरंकुश और जनविरोधी है। ये शासक वर्ग के जिस धड़े का प्रतिनिधित्व करती हैं, उसका हित साधने के लिए ये किसी भी ओर पलटी खा सकती हैं। चंद्रबाबू नायडू की ते.दे.पा. कोई अपवाद नहीं है।

आने वाले दिनों में व्यवस्था का जो गहराता हुआ संकट है, वह इस ढांचे के भीतर हल होने वाला नहीं है और जाहिरा तौर पर लम्बे समय तक इसी रूप में चलने वाला भी नहीं है। व्यवस्था के इस संकट को एक क्रान्तिकारी संकट में रूपान्तरित होना ही है। आने वाला समय स्वतःस्फूर्त उभारों-आन्दोलनों का दौर होगा।

प्रश्न यह है कि क्रान्ति की मनोगत शक्तियां इन स्थितियों का कितना अधिक वस्तुपरक व वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करती है। इसी पर निर्भर करता है कि किसी देशव्यापी जनउभार को सामाजिक क्रान्ति में बदला जा सकता है या नहीं अथवा सामाजिक क्रान्ति की श्रृंखला की कड़ी बनाया जा सकता है या नहीं।

यह एक सकारात्मक बात है कि आर्थिक कट्टरपंथ की नीतियों पर अमल के पिछले सात-आठ वर्षों ने सामाजिक-जनवादियों की अर्थवादी-अवसरवाद की ट्रेडयूनियन राजनीति को भी अप्रासंगिक बना दिया है। गांवों में वर्गीय संरचना भी इतनी स्पष्ट हुई है कि गांव के गरीबों की गोलबंदी की नई आवश्यकता दिखाई देने लगी है।

क्रान्तिकारी विकल्प की राजनीति की ओर पहले हमेशा से अधिक उद्विग्नता के साथ जनता की निगाहें मुड़ रही हैं। नये दौर की नयी क्रान्ति की परिस्थितियों को यदि क्रान्तिकारी शक्तियां समझती हैं, तीन दशकों से जारी गतिरोध से मुक्त होकर नयी समाजवादी क्रान्ति की नयी रणनीति व रणकौशल विकसित करती हैं और क्रान्ति की हिरावल शक्तियां व्यापक आधारों पर उठ खड़ी होती हैं तो भविष्य की दिशा बदली जा सकती है।

भाजपा गठबंधन का ''राष्ट्रीय एजेंडा''

भाजपा गठबंधन का राष्ट्रीय एजेंडा 'नाग' (National Agenda for Governance-NAG) बड़े जोर-शोर से घोषणा करता है कि सबको शिक्षा, सबको भोजन, सबको रोजगार, सबको पेयजल वगैरह-वगैरह दिया जायेगा, लेकिन कैसे दिया जायेगा, इस पर चुप लगा जाता है। 'नाग' की भाषा और लोकसभा में घोषणाएं करते अटल बिहारी बाजपेयी की भाषा सन 1960 के पहले के नेहरू की याद दिलाती हैं। आज भाजपा जो वायदे कर रही है, ये वही वायदे हैं जो संविधान के नीति-निर्देशकों में जनता से किये गये थे और जिन्हें नेहरू दोहराते रहते थे। यह भी दिलचस्प है कि भाजपा जब सत्ता में नहीं थी तो 2000 साल पीछे जाती थी, और जब सत्ता में आ गई है तो महज 30-40 साल पीछे अटक गई है। नेहरू का दौर पब्लिक सेक्टर नामधारी समाजवाद के सपनों का दौर था जब जनता को बुर्जुआ राजनीति व अर्थनीति से अभी उम्मीदें थीं, समाज में राष्ट्रीय

आंदोलन की गर्मी अभी शेष थी। पर आज खस्ताहाल अर्थव्यवस्था, चौतरफा आर्थिक संकट, बढ़ती देशी-विदेशी लूट, हवाला, घोटाला, जयललिता और सुखराम के दौर में जब ये बातें कोई करता है तो पारसी थियेटर के डायलाग से ज्यादा उसका कोई मतलब नहीं होता। सच तो यह है कि आज की दुनिया में किसी भी 'विकासशील' देश के शासक वर्ग के पास कोई ऐसी जादू की छड़ी नहीं है जिसको घुमाकर वह आम जनता की दिनोंरात बढ़ती बदहाली को दूर कर सके। जिन देशों ने साम्राज्यवाद से रैडिकल संघर्ष के बाद पूंजीवादी विकास का रास्ता पकड़ा वहां भी सारे प्रयोग असफल हो चुके हैं, भारतीय शासक वर्ग तो शुरू से ही साम्राज्यवाद की टेक लगाकर आगे बढ़ता रहा है। इसलिए सारे लोकरंजक नारे अवाम की आंखों में धूल झोंकने के लिए की जा रही बकवास के सिवा कुछ भी नहीं हैं। साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद किये बिना आज देश के आर्थिक संकट का और आम जनता के दुख-तकलीफों का समाधान किया ही नहीं जा सकता।

कुछ लोगों को लग सकता है कि स्वदेशी की बात करने वाली भाजपा साम्राज्यवादी दबाव का मुकाबला करेगी। लेकिन भाजपा की स्वदेशी राग न केवल विचित्र है बल्कि इसके सुर भी सत्ता से दूरी या नजदीकी के मुताबिक बदलते रहते हैं। पहले भाजपा का कहना था कि वह आलू चिप्स, कोल्ड ड्रिंक्स आदि उपभोक्ता सामग्रियों के क्षेत्र में विदेशी पूंजी का विरोध करती है। वह चाहती है कि 'कोर सेक्टर' में, यानी स्टील, बिजली, ऊर्जा, परिवहन, रेल, संचार, कम्प्यूटर जैसे बुनियादी क्षेत्रों में विदेशी पूंजी और विदेशी तकनोलाजी लायी जाये। यह एक विडम्बना है कि आज पढ़े लिखे लोगों को भी यह बताने की जरूरत है कि दरअसल भाजपा इस पूरे मामले को सिर के बल खड़ा करती रही है। थोड़ा भी आर्थिक 'कामन सेंस' रखने वाला व्यक्ति यह समझ सकता है कि अर्थव्यवस्था के बुनियादी क्षेत्र विदेशी पूंजी के हाथों में होना ज्यादा खतरनाक है, या उपभोक्ता सामग्रियों का क्षेत्र। जब बिजली, सड़क, रेल, दूरसंचार जैसे बुनियादी क्षेत्र विदेशी पूंजी के नियंत्रण में होंगे तो अन्य क्षेत्रों में भी दबाव डालने की ताकत उसके हाथों में होगी। पेप्सी और भुजिया बेचकर अन्तरराष्ट्रीय बाजार में अपनी शर्तें नहीं थोपी जा सकतीं, लेकिन अर्थव्यवस्था की धड़कन को कब्जे में करने के बाद असमान शर्तें मानने के लिए मजबूर किया जा सकता है और दुनिया के अनेक मुल्क इस नियति तक पहुंच चुके हैं। राजनीतिक अर्थशास्त्र का साधारण जानकार भी इस बात को समझ सकता है किसी भी देश की राजनीतिक व आर्थिक आजादी पर खतरा उपभोक्ता सामग्रियों में विदेशी पूंजी निवेश से कई गुना ज्यादा आधारभूत क्षेत्रों में विदेशी पूंजी की पकड़ से होता है। ऊर्जा, संचार, परिवहन जैसे बुनियादी उद्योग विदेशी पूंजी के शिकंजे में होंगे तो देश की अर्थव्यवस्था की नब्ज उसके हाथों में होगी जिससे साम्राज्यवादी ताकतें दूरगामी तौर पर भारत पर अपना नियंत्रण मजबूत कर सकती हैं।

बहरहाल, सता में आने के साथ ही भाजपा ने स्वदेशी की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करनी शुरू की और ऐसे-ऐसे पैंतरे बदले कि सर्कस के नट भी शर्मा जाएं। लंदन और न्यूयार्क, वाशिंगटन की यात्रा करके यशवंत सिन्हा ने विदेशी निवेशकों को बार-बार यकीन दिलाया कि भारत की पूर्व सरकारें जो प्रतिबद्धता और वादा कर चुकी हैं, उसे आगे भी पूरा किया जायेगा। इनमें से प्रमुख विदेशी निवेशकों को भारत की ओर आकर्षित करने के लिए हर तरह की सुविधाएं मुहैया कराना है। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में विनिवेश कार्यक्रम जारी है और उनकी सरकार इसे तेजी से लागू करना चाहती है। स्वदेशी को उन्होंने महज एक "मानसिकता" बताया जो आपसी व्यापार में लाभ के लिए दोनों पक्षों में सामंजस्य बैठाने का कार्यक्रम है। उन्होंने कहा कि वह एक वर्ष में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को दोगुना करना चाहते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि गैर प्राथमिकता वाले क्षेत्रों और उपभोक्ता उद्योगों में भी प्रत्यक्ष निवेश का स्वागत होगा।

बैंक और बीमा क्षेत्र को विदेशी पूंजी के लिए खोलने के मामले में राष्ट्रीय एजेंडा ने शातिराना ढंग से चुप्पी साध रखी है। बीमा क्षेत्र को विदेशी पूंजी के लिए क्रमशः खोलने के सम्बन्ध में पिछले वर्ष संसद में सरकार की ओर से एक विधेयक पेश किया गया था। उस वक्त कुछ पार्टियों के विरोध के चलते इसे पास नहीं किया गया पर मध्य दिसम्बर में बिना संसद को विश्वास में लिए विश्व व्यापार संगठन के तहत वित्तीय सेवाओं के उदारीकरण के सम्बन्ध में एक अन्तरराष्ट्रीय समझौते पर वित्त मंत्री चिदम्बरम ने हस्ताक्षर कर दिये। भाजपा सरकार इस बारे में चुप है। जाहिर है, इस मामले में मनमोहन सिंह ने जो प्रक्रिया शुरू की थी, और जिसे चिदंबरम ने तेज किया, वही प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। भाजपा के वित्तमंत्री महोदय ने लंदन में फरमाया कि वित्तीय क्षेत्र में सुधार लाकर वह इसे "विश्व मानदंडों के अनुरूप" लाना चाहते हैं। इसका मतलब आसानी से समझा जा सकता है। उन्होंने कहा कि घरेलू बीमा क्षेत्र की पहुंच से बाहर काफी क्षेत्र छूटा रहेगा। ऐसे मामलों में विदेशी साझेदारों के साथ संयुक्त उद्यम स्थापित करने का अच्छा आधार है।

जनता को बार-बार कड़े कदम उठाने की चेतावनी देने वाले वित्तमंत्री जब फिक्की और सी.आई.आई. जैसे उद्योगपतियों के संगठनों के मंच पर पहुंचे तो उनके स्वर बड़े बदले हुए और लुभावने हो गये थे। उन्होंने फरमाया कि हम इंस्पेक्टर राज वाली व्यवस्था खत्म कर ऐसा माहौल बनाना चाहते हैं जिसमें आप आकर हमसे कहें कि क्या होना चाहिए और कैसे होना चाहिए।

जनता के लिए कड़े कदमों का क्या मतलब है इसकी झलक नरसिम्हन समिति की रिपोर्ट, बिजली दरें तय करने के लिए आयोग गठित करने के निर्णय और चीनी को लाइसेंस मुक्त करने जैसे निर्णयों से मिल रही है।

यह अनायास ही नहीं है कि 'नाग' मजदूरों के बारे में कुछ भी नहीं बोलता, क्योंकि मेहनतकश अवाम को ही तो डसने पूरी तैयारी है।

कृषि के सवाल पर भी 'नाग' (NAG) पूरी तरह खामोश है। सत्ता से बाहर रहने के दिनों में भाजपा ने कहा था कि वह सत्ता में आई तो डंकल प्रस्ताव के तहत हुए विश्व व्यापार संगठन में शामिल होने के असमान समझौते को रद्द कर देगी। अब उसे वह बातें भूल गई हैं। राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए परमाणु बम बनाने की ताल ठोंकने वाली भाजपा निहायत अपमानजनक शर्तें लादने वाले और भारतीय किसानों पर बर्बादी थोपने वाले विश्व व्यापार संगठन के समझौते को रद्द करने की हिम्मत क्यों नहीं जुटा पा रही है? दरअसल कृषि के विकास के लिए भी भाजपा की नीति पिछली सरकारों से भिन्न नहीं है। खाद-बीज-कीटनाशकों की विदेशी बड़ी कम्पनियों को छूट देने तथा पूरी खेती को बाजार की अंधी शक्तियों के हवाले कर देने की नीतियों के चलते पिछले आठ वर्षों से छोटे व मझोले किसानों के अपनी जगह-जमीन से उजड़ने की जो प्रक्रिया चल रही है वह आने वाले दिनों में और तेजी से आगे बढ़ेगी।

इसके बावजूद बाजपेयी जी ने सबको शिक्षा, सबको रोजगार, सबको भोजन, सबको पेयजल आदि के जो वादे जनता के सामने परोसे हैं, निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के चलते हुए और भारत जैसे देश की परिस्थितियों में, उन्हें पूरा करने के लिए यदि अलादीन के चिराग वाले जिन्न से भी कह दिया जाये तो वह गश खाकर गिर जायेगा।

पढ़िए, पढ़ाइए, प्रचारित कीजिए

मजदूर आंदोलन में क्रान्तिकारी विचारों का वाहक

बिगुल

मेहनतकशों का इंकलाबी अखबार

एक प्रति : दो रुपए वार्षिक : 24 रुपए

संपादकीय पता : द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ

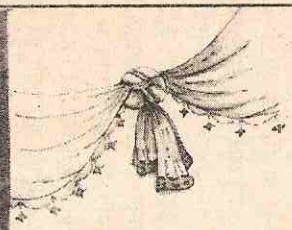

... FOR AN OCCASION JUST ONCE IN A LIFE TIME

CENTURION WITH MORE SAFETY

Extra thick 1.25 mm CRCA steel with multi-bend construction adds more strength and rigidity to the Centurion. Moreover, a secret compartment in the Centurion (so secret, our salesman will reveal its identity only after your purchase!) gives you more room for valuable, confidential documents. And of course, more peace of mind.

CENTURION WITH MORE SECURITY

The Centurion is fitted with a special 3-way secure bolting device which interlocks with the body, both at the top and the bottom, plus a 6-lever Godrej lock-- a combination that offers a level of security not available in conventional wooden and steel cupboards.

CENTURION WITH MORE ROOM

An all new telescopic hanging arrangement for clothes and specially designed tie racks make optimum use of space.. So you not only have more room, you can be more organised. (There's even a bangle box for your personal valuables!)

CENTURION WITH MORE STYLE

The new look Centurion has a sleek, streamlined appearance with a redesigned side profile giving it a long lasting finish. New, attractive colour options and a brass handle on the outside make the Centurion a design marvel.

GODREJ & Boyce Mfg. Co. Ltd.
Jeewan Bhawan, 43- Hazratganj,
Lucknow- 226 001 Ph.: 275908, 213968

Godrej
CENTURION

OUR AUTHORISED DEALERS : LUCKNOW : Fairdeal Agencies, Hazratganj Ph.: 214060 ; New Popular Furnishers, Faizabad Road Ph.: 388319 ; Decor Technics, Park Road Ph.: 238584 ; Kantawala Agencies, G.B.Marg Ph.: 226186 ; VARANASI : Soma Co., Bans Phatak Ph.: 353734 , Panchvati Co., Bhel Pura Ph.: 313088 ; Nalanda & Co., Bans Phatak Ph.: 320488 ; GORAKHPUR : Universal Trading Co., Golghar Ph.: 333741 ALLAHABAD : Jamuna Marketing (Pvt.) Ltd., M.G.Marg Ph.: 623891 ; B.N. Rama & CO., Sardar Patel Marg Ph.: 603153 ; PRATAPGARH : Pritam Singh & Sons, Allahabad Road Ph.: 20623 ; SITAPUR : Dammooji Agencies, Civil Lines Ph.: 43169 ; LAKHEEMPUR : VeeKay Agencies, Hospital Road Ph.: 52727 ; RAE BAREILLY : Garg & Co., Kachehri Road Ph.: 202944 ; FAIZABAD : Garg & Co., Moti Bagh Ph.: 812304

वाणी प्रकाशन की तीन नई श्रृंखलाएं

आजादी की 50वीं वर्षगांठ पर
'वाणी प्रकाशन' की ओर से 'स्वर्ण जयंती' संस्था का शुभारम्भ

1857 से 1947 तक के बलिदानी संघर्षों का दस्तावेजी साक्ष्य

रामप्रसाद बिस्मिल रचनावली-भाग 1	सं. दिनेश शर्मा	200/.
खूने-लाजपत ('महारथी' का जब्तशुदा अंक)	सं. रामचन्द्र शर्मा महारथी	125/.
हिन्दू-पंच का 'बलिदानी अंक'	सं. कमलादत्त पाण्डेय	225/.
हिन्दू पंच का 'कांग्रेस अंक'	सं. बाबू मुकुन्दलाल शर्मा	200/.
विप्लव का 'आजाद अंक'	सं. यशपाल	150/.
चांद का 'फांसी अंक'	सं. आचार्य चतुरसेन शास्त्री	210/.
आजादी के दस्तावेज-I	अध्यापक ज़हूर बख़्श	
(भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद)	सं. ख़्वाज़ा हसन निज़ामी	425/.
आजादी के दस्तावेज-II	नेताजी सुभाषचंद्र बोस, रणधीर सिंह	
(भारतीय स्वाधीनता आंदोलन)	कैलाशचन्द्र जैन, अजय घोष	425/.
जयहिन्द	आज़ाद हिन्द फौज की एक महिला सिपाही	150/.
बहादुरशाह का मुकदमा	ख़्वाज़ा हसन निज़ामी	150/.
मुस्लिम महिला रत्न	अध्यापक ज़हूर बख़्श	95/.
बेचारे अंग्रेजों की विपदा व उनके पत्र	ख़्वाज़ा हसन निज़ामी	95/.
तरुण के स्वप्न	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	75/.
ग़दर पार्टी के इन्क़लाबी	रणधीर सिंह	50/.
सरदार भगतसिंह व उनके साथी	अजय कुमार घोष	35/.
भारत के किसान विद्रोह (1850-1900 तक)	एल.नटराजन	50/.
अगस्त क्रान्ति के विद्रोही नेता	कैलाशचन्द्र जैन 'पुष्प'	50/.
बेगमात् के आंसू	ख़्वाज़ा हसन निज़ामी	95/.

फ़िराक़ जन्मशती पर—फ़िराक़ को गहराई से जानने के लिए फ़िराक़ की हिन्दी में पहली बार प्रकाशित पुस्तकें

उर्दू की इश्किया शायरी
मूल्य 95/.

रूह-ए-कायनात
(कविता संग्रह) मूल्य 50/.

उर्दू कविता पर बातचीत
मूल्य 95/.

शबनमिस्तां
(शायरी) मूल्य 125/.

गुफ्तगू
(फिराक के साथ लम्बी बातचीत)
मूल्य 150/.

आदमी
(प्रख्यात जर्मन नाटक का फ़िराक़ द्वारा किया अनुवाद) मूल्य 75/-

मैंने फ़िराक़ को देखा था
(फ़िराक़ के अज़ीज़ दोस्त रमेशचंद्र द्विवेदी द्वारा लिखी जीवनी)
मूल्य 200/.

वाणी प्रकाशन
मानक प्रकाशनों का विश्वसनीय केन्द्र
21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3273167,3275710
फैक्स : 011-3275710

उर्दू शायरी के महान फनकारों को महान शायर निदा फ़ाज़ली की नज़र से उनकी लम्बी भूमिका सहित पढ़ें

मुहम्मद अलवी : शब्दों का चित्रकार	95/.
बशीर बद्र : नई ग़ज़ल का एक नाम	95/.
दाग़ देहलवी : ग़ज़ल का एक स्कूल	95/.
जॉनिसार अख्तर: एक जवान मौत	95/.
जिगर मुरादाबादी : मोहब्बतों का शायर	95/.

राहुल फाउण्डेशन के महत्वपूर्ण प्रकाशन

चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान युवा कार्यकर्ताओं व आम लोगों की शिक्षा के लिए तैयार की गई मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की विश्व-प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुस्तक

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त

खण्ड-एक

कि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ पालिटिकल इकॉनमी

पृष्ठ : 208, मूल्य : 60 रुपये (पेपरबैक),
125 रुपये (सजिल्द)
(दूसरा खण्ड शीघ्र प्रकाश्य)

अन्य प्रकाशन

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं	– *दीपायन बोस*	*(अप्राप्य)*
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	– *शशिप्रकाश*	रु. 12.00
क्यों माओवाद	– *शशिप्रकाश*	रु. 10.00
कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा	– *लेनिन*	रु. 5.00

आगामी प्रकाशन

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (खण्ड-दो)
माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण
Quotations from Chairman Mao Tse-Tung
महान बहस ● The Great Debate
Selected Readings from Chairman Mao Tse-Tung
(हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में)
महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज
Students' Marx – *by Edward Aveling*

परिकल्पना प्रकाशन की बेहतरीन पुस्तकें

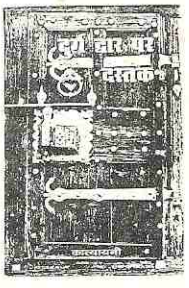

दुर्ग द्वार पर दस्तक

कात्यायनी

पृष्ठ : 152, मूल्य : रु. 50 (पेपरबैक, फ्लैप सहित), रु. 120 (सजिल्द)

पाश की प्रतिनिधि कविताएं

संपादक : चमनलाल व कात्यायनी

मूल्य : रु. 75, (पेपरबैक, फ्लैप सहित), रु. 150 (सजिल्द)

बर्तोल्त ब्रेख्त के जन्मशती वर्ष में
विशेष भेंट

इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां

मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल

(ब्रेख्त के दुर्लभ चित्रों व कैरिकेचर्स से सज्जित)
पृष्ठ : 152, मूल्य : रु. 60 (पेपरबैक, फ्लैप सहित), रु. 125 (सजिल्द)

विचारों की सान पर

शहीदेआजम भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए लेख, पत्र और दस्तावेज
मूल्य : 20 रुपये

क्रान्ति का विज्ञान

लेनी वुल्फ
मूल्य : 10 रुपये

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

शहीदेआज़म की जेल नोटबुक
(भगतसिंह की जेल नोटबुक)
इतिहास की एक दुर्लभ धरोहर!
हिन्दी में पहली बार
●

उर्दू की प्रतिनिधि प्रगतिशील कहानियां
(भारत और पाकिस्तान में लिखी करीब पैंतीस कहानियों का संकलन)
संपादन व अनुवाद : *शकील सिद्दीकी*

समर तो शेष है...
(इप्टा के दौर से लेकर अब तक के चुनिन्दा क्रान्तिकारी गीतों का अनन्य संकलन)

माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य : *रेमण्ड लोट्टा*

राहुल फाउण्डेशन एवं परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक :
जनचेतना, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226010
(व्यक्तिगत प्रतियों के लिए रु. 10 रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या धनादेश भेजें)